Postal Reg. No. M.P./Bhopal/4-340/2017-19
R.N.I.No. 51966/1989,ISSN 2455-2399
Date of Publication 15th August 2019
Date of posting 15th & 20th August 2019
Total Page 124

जुलाई- अगस्त (संयुक्तांक) 2019 वर्ष 31 अंक 07-08 मूल्य ₹ 80

इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए

इलेक्ट्रॉनिक्स, कम्प्यूटर विज्ञान एवं नई तकनीक की पत्रिका

RNI No. 51966/1989
ISSN 2455-2399
www.electroniki.com
जुलाई–अगस्त (संयुक्तांक) 2019
वर्ष 31
अंक 7-8

इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए

इलेक्ट्रॉनिक्स, कम्प्यूटर विज्ञान एवं नई तकनीक की पत्रिका

राष्ट्रीय राजभाषा शील्ड सम्मान, रामेश्वर गुरु पुरस्कार, भारतेन्दु पुरस्कार तथा सारस्वत सम्मान से सम्मानित

विज्ञान संस्कृति का एक हिस्सा है। संस्कृति केवल कला एवं संगीत और साहित्य ही नहीं है, बल्कि यह तो एक समझ है कि आखिरकार यह संसार किस चीज से बना और यह कार्य कैसे करता है

– मैक्स एफ पैरुट्ज

इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए 300-301
इलेक्ट्रॉनिक्स, कम्प्यूटर विज्ञान एवं नई तकनीक की पत्रिका

क्रम

पत्र व्यवहार का पता

इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए

आईसेक्ट लिमिटेड, स्कोप कैम्पस, एन.एच.–12, होशंगाबाद रोड, मिसरोद, भोपाल–462047

फोन : 0755-2700466 (डेस्क), 2700400 (रिसेप्शन)

e-mail : electroniki@electroniki.com, website : www.electroniki.com वार्षिक शुल्क : 480/- प्रति अंक : 40/- यह अंक 80/-

'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार संबंधित लेखक के हैं। उनसे संपादक की सहमति होना आवश्यक नहीं है।

सभी विवादों का निबटारा भोपाल अदालत में किया जायेगा।

स्वामी, आईसेक्ट लिमिटेड के लिये प्रकाशक व मुद्रक सिद्धार्थ चतुर्वेदी द्वारा आईसेक्ट पब्लिकेशन्स, 25 ए, प्रेस कॉम्प्लेक्स, जोन-1, एम.पी.नगर, भोपाल (म.प्र.) से मुद्रित व आईसेक्ट लिमिटेड, स्कोप कैम्पस एन.एच.-12 होशंगाबाद रोड, मिसरोद, भोपाल (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक- संतोष चौबे।

मौलिकता और नवीन सृजन का उद्देश्य

'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' इलेक्ट्रॉनिकी, कम्प्यूटर विज्ञान एवं नई तकनीक पर प्रकाशित होने वाली प्रथम हिन्दी मासिक पत्रिका है। यह 1988 से निरंतर प्रकाशित हो रही है। इसका पहला अंक मेरे द्वारा ही तैयार किया गया था। कालान्तर में पढ़ने-लिखने वाले दोनों ही इससे जुड़ते गये और आज यह पत्रिका अपने 300 वें अंक में है।

वर्ष 1987-88 में आईसेक्ट को स्कूलों में कम्प्यूटर शिक्षा देने के लिये 'क्लास' परियोजना का दायित्व मिला था। इसके कुछ समय पूर्व ही मैंने 'कम्प्यूटर एक परिचय' पुस्तक लिखी जो कम्प्यूटर पर हिन्दी में प्रकाशित पहली कृति थी। इस पुस्तक की दो लाख प्रतियाँ हाथों हाथ बिकीं। क्लास परियोजना के दौरान छात्रों में कम्प्यूटर के विषय में और जानने की ललक बढ़ी, वहीं जनसामान्य भी हिन्दी में कम्प्यूटर पर और जानकारी चाहता था। लोगों की हमसे अपेक्षाएँ काफी बढ़ गईं। चूंकि निरंतर नई पुस्तकों का सृजन संभव नहीं था इसलिये एक पत्रिका शुरू करने का विचार आया और यही पत्रिका अब 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' के स्वरूप में हमारे सामने है।

आरंभिक दिनों में यह पत्रिका त्रैमासिक थी। इसका मूल कारण था कि उस समय हिन्दी में कम्प्यूटर व इलेक्ट्रॉनिक विषयों पर लिखने वाले लेखक गिने चुने थे, जो कुछ नामचीन लेखक थे वे नई पत्रिका के लिये समय दे पाने में असमर्थ थे। साथ ही उस समय आज की तरह उन्नत, सस्ती व सुलभ डीटीपी व्यवस्था भी नहीं थी। आरंभ में पत्रिका सामान्य हिन्दी टाइपराईटर द्वारा तैयार की जाती थी तदुपरांत टाइपसेटिंग का कार्य होता था।

पत्रिका में मौलिकता व नवीन सृजन को बढ़ावा देने के उद्देश्य से अनेक लोगों को इससे जोड़ा गया साथ ही विज्ञान लिखना भी सिखाया गया। हमने विज्ञान संचार और लेखन की कार्यशालाएं कीं। इनसे जो बातें सामने आयीं उसमें प्रमुख थी कि उनके अनुसार लिखने की भाषा ऐसी होनी चाहिये कि वह व्यक्ति भी आसानी से समझ ले जो कि उस विषय के बारे में कुछ भी न जानता हो। इस पत्रिका की सफलता में भाषा के प्रति हमारे मूलमंत्र, सरल व जन सामान्य की भाषा में लिखना का बड़ा योगदान रहा है।

पत्रिका के आरंभिक दिनों में संतोष शुक्ला, संदीप वर्मा, अनुराग सीठा नियमित रूप से लिखते थे, तब पत्रिका में सिर्फ लेख होते थे, बाद में इसमें अनेक कॉलम शुरू किये गये। इनमें बच्चों के लिये कई स्तम्भ विशेष रूप से प्रारंभ किये गये। अनेकों बच्चों के उत्साहपूर्वक पत्र व्यवहार की जिम्मेदारी विनीता चौबे ने ले रखी थी। पत्रिका भी त्रैमासिक से द्वि-मासिक हुई और फिर इसकी लोकप्रियता व मांग को देखते हुये इसे मासिक कर दिया गया। आज इसकी प्रसार संख्या 40,000 से अधिक है जो कि देश की अन्य प्रसिद्ध विज्ञान पत्रिकाओं से कहीं अधिक है। यह भी इसकी लोकप्रियता का प्रमाण है। पत्रिका की कार्यकारी संपादक श्रीमती विनीता चौबे आज भी अपना दायित्व निभा रही हैं।

पत्रिका के समय-समय पर कई विशेषांक निकाले गये हैं। पत्रिका के अंतर्राष्ट्रीय भौतिकी वर्ष के तहत महान भौतिकीविद् अल्बर्ट आइंस्टाइन पर केंद्रित विशेषांक के साथ ग्रामीण विकास में आई.टी., महिलायें एवं आई.टी., पर्यावरण एवं आई.टी. हार्डवेयर, मल्टीमीडिया, स्वास्थ एवं आईटी, अपराध एवं आई.टी., सॉफ्टवेयर, अंतरिक्ष, ई-गवर्नेंस, सूचना प्रौद्योगिकी, ई-प्रकाशन, रोजगार एवं कम्प्यूटर पाठ्यक्रम, आई.टी. और हिन्दी, पर्यावरण तथा कॅरियर विशेषांक, क्लाउड कम्प्यूटिंग, आर्टिफिशियल इंटेलिजेन्स, अक्षय ऊर्जा, ई-वेस्ट प्रबंधन, वैकल्पिक ऊर्जा, जैव विविधता, नैनो टेक्नॉलॉजी, जीन एडिटिंग, वर्टिकल फारेस्ट, पर्यावरण और प्रदूषण, स्टीफन हॉकिंग, भारतीय

विज्ञान परंपरा बायोप्लाटिक, उद्यमशीलता और नवोन्मेष भारतीय विज्ञान परंपरा, स्टीफन हॉकिंग्स विशेषांक आदि-आदि प्रकाशित हो चुके हैं।

पत्रिका के पिछले अंकों में प्रकाशित हुए कुछ महत्वपूर्ण लेख है आइंस्टाइन : विज्ञान से शांतिवाद तक, सापेक्षता का सिद्धांत, विज्ञान के प्रति घटती रुचि, क्या है वी.ओ.आई.पी., सुनामी ने खोली पोल, फिशिंग साइबर ठगी का तरीका, आई.टी. में बढ़ा हिन्दी का महत्व, विकास के लिए विज्ञान, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के नवोन्मेष, हाईटेक होती हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता, संभावनाओं का खुला आसमां, तप रही धरती, आ रहे हैं एन्ड्रोइड्स, बदलती दुनिया में हिन्दुस्तान, कैसी होंगी भविष्य की अंतरिक्ष यात्राएं, सूचना प्रौद्योगिकी का सामाजिक प्रभाव, विकिरण से भागे कैंसर, सूचना बनी शक्ति, सेल्युलर तकनीकों के मानक, खुले ब्रह्माण्ड के राज, दूरियां दूर हुईं, सूचना क्रांति का आगाज, ई-कॉमर्स विश्व व्यापार की नई संभावनायें, खिलौनों का बदलता स्वरूप, सूचना और संचार, भारत और ब्रॉडबैंड, भूकंप के कारणों का वैज्ञानिक विवेचन, बच्चों तक पहुंची आई.टी. शिक्षा, क्लोनिंग के मसीहा हुए शर्मसार, इन्सेट का लंबा सफर, सौर ऊर्जा पर जमी निगाह, विश्व की प्रथम महिला अंतरिक्ष यात्री अनोसेह अंसारी, विज्ञान से ग्रामीण विकास, ग्लोबल वार्मिंग से बढ़ता खतरा, नैनो प्रौद्योगिकी एक पहलू यह भी, टेली चिकित्सा और सूचना प्रौद्योगिकी, स्पूतनिक प्रमोचन की स्वर्ण जयंती, ब्लैक होल की पहली छवि, दूसरे ग्रहों के पर्वत, पीएसएलवी-45 मिशन द्वारा 29 उपग्रहों का प्रमोचन, एक दुर्लभ रोग : न्यूरोएंडोक्राइन ट्यूमर, आंखों में भी होता है कैंसर, 5G जी कितना जरूरी, द ग्रेट पेसिफिक गारबेज पैच, 'स्वर्ण'-उत्पत्ति का रहस्य : चौथी गुरुत्वीय तरंग, जीन एडिटिंग : जन्म से पहले बीमारी का उपचार, अकिर्तित भारतीय वैज्ञानिक सितारे : येल्लाप्रागदा सुब्बाराव, इलेक्ट्रॉनिकी की समूची तस्वीर को बदल देगा ग्रेफीन, प्रकाश से बने औजारों के आविष्कारकों को भौतिकी का नोबेल, हिमालय भी खतरे में, 75 वर्ष की हुई एंटीबॉयोटिक दवाएं, साइलेंट किलर : डायबिटीज, नीलाभ धुंध : वायु प्रदूषण का नया रूप, मोबाइल गेम एडिक्शन, एक चुनौतीपूर्ण रोग : पुरुषों में स्तन कैंसर, निपाह वायरस, डार्क स्काई रिजर्व क्षेत्र और प्रकाश प्रदूषण, न्यूट्रिनो आब्जर्वेटरी, बायोप्लास्टिक, ड्रोनवॉर, कैशलैस टेक्नॉलॉजी, 104 उपग्रहों का एक साथ सफल प्रक्षेपण, ब्लू व्हेल : जीवन से खेलता खेल, ग्रीन टेक्नॉलाजी में दुर्लभ धातुएं, भू-पुरातत्वीय इतिहास की खोज में 'ऑप्टिकली स्टिमुलेटेड लुमनेसन्स' आदि-आदि।

"विज्ञान की विजय साधारण नहीं, असाधारण है, आंगिक या देशिक नहीं, पूर्ण और अलौकिक है। वही विजय पूर्ण है, जो किसी जनपद विशेष पर ही अधिकार न दिलावे, वरंच उस विजित प्रदेश की संस्कृति, वहाँ के जीवन पर भी पूरा-पूरा प्रभाव डाल सके। आज दिन विज्ञान हमारे देश में ही, हमारे गृहों में ही नहीं, हमारे जीवन में भी धीरे-धीरे प्रविष्ट हो गया है। आश्चर्य यह है कि हम इस विजय को विजय-सी नहीं समझते। विज्ञान की विजय का यही सबसे बड़ा प्रमाण है। दियासलाई जलाते वक्त सिगरेट का धुँआ उड़ाते समय, सांध्य वेला में बिजली का बटन दबाने पर भला कितनों को यह ध्यान आता है कि उपर्युक्त वस्तुओं की आड़ में विज्ञान छिपा हँस रहा है? कितने यह समझते हैं कि उनके बहुत से कार्य सम्पूर्णतया विज्ञान के ही आश्रित है? विज्ञान का रूप प्रच्छन्न भी है और प्रकट भी, इसी कारण हमें विज्ञान के गुणों की पूरी अनुभूति नहीं होती। यदि ध्यानपूर्वक देखा जाये, हमारे ऊपर विज्ञान का ऐसा गहरा प्रभाव पड़ा है कि यदि क, किसी प्रलयंकारी आकस्मिक घटना, किसी विनाशकारी आपत्ति किंवा किसी अविज्ञात दैवी प्रकोप के कारण, धरा से विज्ञान और तदुद्भूत विभूतियाँ मिट जायें, बहुत सम्भव है, आज के नागरिक कल के उस विज्ञानविहीन संसार को पहचान ही न सकें, और उसे एक विलक्षण लोक देख उसे भूमण्डल के स्थान में किसी अन्य लोक की संज्ञा दें।

- सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

1 अंक

100 वाँ अंक

150 वाँ अंक

200 वाँ अंक

250 वाँ अंक

पत्रिका का 100 वां अंक

इलेक्ट्रॉनिकी के सफर में वर्ष 2002 में महत्वपूर्ण पड़ाव आया। इसके सौवें अंक का विमोचन देश के गणमान्य नागरिकों के बीच संपन्न हुआ। इस अवसर पर डॉ. अनुज सिन्हा निदेशक, राष्ट्रीय विज्ञान और प्रौद्योगिकी संचार परिषद्, भारत सरकार, शरद चंद्र बेहार, तत्कालीन महानिदेशक, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता विश्वविद्यालय, डॉ. ओम विकास, निदेशक, सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी मंत्रालय, भारत सरकार, विज्ञान लेखक गुणाकर मुले उपस्थित थे। देश के मशहूर विज्ञान लेखक भी इस समारोह में भागीदारी करने आए थे। डॉ. मनमोहन बाला, स्व. दिलीप साल्वी, डॉ. पी. के. मुखर्जी, डॉ. रघुवीर दत्त, संजय वर्मा, कपिल कुमार त्रिपाठी, डॉ. वी.डी. गर्दे इत्यादि। इस अवसर पर 'हिन्दी में विज्ञान लेखन' विषय पर सेमिनार भी आयोजित किया गया।

पत्रिका का 150 वां अंक

'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' के 150वें अंक का लोकार्पण 2006 में भोपाल के रवीन्द्र भवन सभागार में संस्कृति एवं खनिज संसाधन मंत्री लक्ष्मीकांत शर्मा के कर-कमलों से संपन्न हुआ। इस अवसर पर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग भारत सरकार के सलाहकार डॉ. अनुज सिन्हा, आरजीपीव्ही के डीन डॉ. एस.एन.

वर्मा एवं इंस्टीट्यूशन ऑफ इलेक्ट्रॉनिक्स एंड टेली कम्यूनिकेशन इंजीनियर्स नई दिल्ली के डॉ. मनमोहन बाला, पत्रिका के संपादक संतोष चौबे एवं प्रमुख उप-संपादक विनीता चौबे सहित देशभर से आये तकनीकी लेखक उपस्थित थे। लोकार्पण समारोह के बाद तकनीकी सत्र का आयोजन किया गया। इसकी अध्यक्षता आरजीपीव्ही भोपाल के डीन डॉ. एस.एन. वर्मा ने की। इस अवसर पर हिन्दी ब्लाग्स के लिए माइक्रोसॉफ्ट द्वारा पुरस्कृत रविशंकर श्रीवास्तव ने 'हिन्दी में कम्प्यूटिंग' विषय तथा भोपाल संचार निगम लिमिटेड भोपाल के महाप्रबंधक राजेश गुप्ता ने 'इंटरनेट के 15 वर्ष' पर विचार व्यक्त किए। समारोह के दूसरे दिन 'हिन्दी में तकनीकी लेखन की संभावनाएं एवं चुनौतियां' विषय पर माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता विश्वविद्यालय के साथ कार्यशाला का आयोजन किया गया।

''किसी भी देश की प्रगति मुख्यतः उसकी जनता की शिक्षा पर निर्भर करती है शिक्षा के अभाव में हमारा राष्ट्र महज बच्चों की फौज है। जन्म और सामाजिक स्थिति के अतिरिक्त, दो व्यक्तियों में अंतर उनके द्वारा अर्जित सामान्य एवं व्यावहारिक ज्ञान की सीमा से निर्धारित होता है। हम सहज अनुमान लगा सकते हैं कि एक निश्चित सीमा के अंदर सभी देशों में लोग समान स्तरीय बुद्धिमत्ता के साथ जीवन का आरंभ करते हैं। एक सभ्य राष्ट्र और असभ्य राष्ट्र में अंतर उनके द्वारा अर्जित बुद्धिमत्ता और कौशल पर निर्भर करता है।''

- मोक्षमुंडम् विश्वेश्वरैया

पत्रिका का 200वें अंक

200वें अंक का लोकार्पण 14 फरवरी 2011 को स्कोप इंजीनियरिंग कॉलेज के सभागार में आयोजित किया गया। समारोह की अध्यक्षता डॉ. ए.एस. झाड़गांवकर कुलपति, डॉ. सीवी रमन वि.वि. छत्तीसगढ़ ने की। मुख्य अतिथि के रूप में प्रो. अखिलेश पांडे अध्यक्ष, मध्यप्रदेश निजी नियामक आयोग, भोपाल ने व विशिष्ट अतिथि के रूप में डॉ. मनोज पटेरिया, निदेशक एनसीएसटीसी, नई दिल्ली, डॉ. के. एस. तिवारी, क्षेत्रीय निदेशक, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्व विद्यालय, भोपाल, श्री पुष्पेन्द्र पाल सिंह, विभागाध्यक्ष, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता वि.वि., भोपाल उपस्थित थे। समारोह में देशभर से आए विज्ञान व तकनीकी विषयों के लेखकों का सम्मान पत्रिका द्वारा किया गया। 200वें अंक की विषय वस्तु और भविष्य को लेकर विज्ञान लेखकों द्वारा अपने लेखों में दिए दृष्टिकोण को सभी अतिथियों ने सराहा। सभी अतिथियों ने कहा कि दुनिया का आने वाला भविष्य जो कल हमारा वर्तमान होगा, को लेकर विज्ञान लेखकों द्वारा अपनी सोच, तर्कों तथा तथ्यों के माध्यम से भविष्य की जो सैर हमें वर्तमान में कराई है वह वास्तव में रोमांचित करने वाली है।

पत्रिका का 250 वां अंक

'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' के 250वें अंक प्रकाशित होने के साथ ही इसकी संपादन-यात्रा के अट्ठाइस वर्ष पूर्ण हो जाते हैं। पहला अंक जुलाई 1988 में छपा था। 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' 250वें अंक का विमोचन समारोह आईसेक्ट विवि भोपाल में संपन्न हुआ जो कि विज्ञान-विमर्श का जरिया बना। इस अवसर पर देश भर के विज्ञान लेखक, विज्ञान संचारक और विज्ञानप्रेमी उपस्थित हुए। समारोह में चार विभिन्न गतिविधियाँ सम्पन्न हुईं जिसमें पत्रिका का विमोचन, नाटक 'गैलिलियो' का मंचन, विज्ञान फिल्म प्रदर्शन तथा दो विचार सत्रों में विज्ञान परिचर्चाएं की गईं। पत्रिका का विमोचन मनोज पटेरिया, शरदचंद्र बेहार, इं.अनुज सिन्हा, डॉ.वि.दी. गर्दे, मनमोहन बाला, संतोष चौबे और विनीता चौबे द्वारा किया गया। विमोचन के दौरान संपादक संतोष चौबे ने 250वे अंक तक की इलेक्ट्रॉनिकी प्रकाशन यात्रा पर प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि आरंभ के वर्षों में ही हमने यह महसूस कर लिया था कि सिर्फ सरकारी सहयोग पर निर्भर रहकर कोई पत्रिका सतत रूप से नहीं निकाली जा सकती है। दूसरे इलेक्ट्रॉनिक्स, कम्प्यूटर और दूरसंसार जैसे विषयों पर लिखने वाले लोगों को देश में उँगलियों पर गिना जा सकता था और उनमें से अधिकतर दिल्ली जैसे बड़े शहरों में व्यस्त थे और बहुत व्यस्थ थे। इसलिए लेखकों के साथ हमें नए लेखकों को पैदा भी करना था। हमने इस दिशा में काम करते हुए अपना नेटवर्क तैयार किया। आरंभ के कुछ वर्षों में राष्ट्रीय विज्ञान और प्रौद्योगिकी संचार परिषद का सहयोग प्राप्त हुआ, बाद के वर्षों से अब तक इसका प्रसार-प्रचार हमारे नेटवर्क द्वारा हुआ। फलस्वरूप पत्रिका की पाठकीय संख्या तीस हजार हो गई। कभी-कभी प्रकाशन का आँकडा 50 हजार तक पहुँचा। इस अवसर पर मनोज पटेरिया, शरद चंद्र बेहार ने पत्रिका के प्रकाशन के संदर्भ में अपना अनुभव साझा किए।

पुरस्कार

- राष्ट्रीय राजभाषा शील्ड सम्मान : छत्तीसगढ़ के राज्यपाल महामहिम श्री ई.एस.एल नरसिम्हन द्वारा अक्टूबर 2009 में राष्ट्रीय राजभाषा शील्ड सम्मान प्रदान किया गया।
- राष्ट्रीय राजभाषा शील्ड सम्मान : पांडिचेरी के ले. गवर्नर श्री इकबाल सिंह द्वारा अक्टूबर 2009 में राष्ट्रीय राजभाषा शील्ड सम्मान प्रदान किया गया।
- भारतेन्दु पुरस्कार : पत्रिका को दुष्यंत कुमार स्मारक पाण्डुलिपि संग्रहालय द्वारा भारतेन्दु पुरस्कार से सम्मानित किया गया।
- रामेश्वर गुरु पुरस्कार : पत्रिका को माधव राव स्मृति समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान द्वारा 21 अप्रेल 2008 में रामेश्वर गुरु पुरस्कार से सम्मानित किया गया।
- सारस्वत सम्मान : 16 अप्रैल 2015 में पत्रिका को विज्ञान परिषद प्रयाग, इलाहाबाद द्वारा सारस्वत सम्मान से सम्मानित किया।

भागीदारी

पत्रिका ने समय-समय पर कई प्रदर्शनियों का निर्माण व पुस्तक मेलों में भागीदारी की है। कुछ प्रमुख प्रदर्शनियां हैं-

- शिक्षा में सूचना प्रौद्योगिकी
- कम्प्यूटर की कहानी, ग्रामीण विकास में सूचना प्रौद्योगिकी
- मनोरंजन और सूचना प्रौद्योगिकी
- दूरसंचार की कहानी

पत्रिका दिल्ली में आयोजित होने वाले विश्व पुस्तक मेले में भी भागीदारी करती है। इसके अलावा राज्य स्तरीय, जिला स्तरीय पुस्तक मेलों में भी पत्रिका भागीदारी करती हैं पुस्तक मेले के जरिये बच्चों के बीच पत्रिका विज्ञान और प्रौद्योगिकी का प्रचार प्रसार करती है। छात्रों और सामान्य जन के बीच पत्रिका कम्प्यूटर, इलेक्ट्रॉनिक्स एवं नई नकनीक का प्रचार बखूबी कर रही है। पत्रिका का प्रत्येक अंक संग्रहणीय होता है।

वेबसाइट

पत्रिका की हिन्दी वेबसाइट भी उपलब्ध (www.electroniki.com) है। यहाँ गौरतलब है कि बहुत कम हिन्दी पत्रिकाओं की वेबसाइट का निर्माण किया गया है। इलेक्ट्रॉनिकी ने शुरूआत में ही अपनी हिन्दी वेबसाइट बना ली थी। वेबसाइट पर पत्रिका के हर अंक को अपलोड किया जाता है।

योगदान

इस पत्रिका की सफलता में अनेक लेखकों व सहयोगियों का हाथ रहा है। **सलाहकार मण्डल** : शरदचंद्र बेहार, डॉ. वि.दि. गर्दे, देवेन्द्र मेवाड़ी, डॉ. मनोज कुमार पटेरिया, डॉ. संध्या चतुर्वेदी, प्रो. विजयकांत वर्मा, डॉ. रविप्रकाश दुबे, डॉ. अशोक कुमार ग्वाल, डॉ. आर.एन.यादव, डॉ. सुनील कुमार श्रीवास्तव, प्रो. राकेश कुमार पाण्डेय, प्रो. अमिताभ सक्सेना। **संपादक** : संतोष चौबे। **कार्यकारी संपादक** : विनीता चौबे। **उप-संपादक** : पुष्पा असिवाल : **सह-संपादक** : मोहन सगोरिया, रवीन्द्र जैन, मनीष श्रीवास्तव। **संस्थागत सहयोग** : गौरव शुक्ला, डॉ. डी.एस.राघव, डॉ. विजय सिंह, डॉ. सीतेश सिन्हा, रवि चतुर्वेदी, डॉ. मुनीष गोविंद, डॉ. अनुराग सीठा, डॉ. सत्येन्द्र खरे, संतोष शुक्ला। **राज्य प्रसार समन्वयक** : शशिकांत वर्मा, लातूर सिंह वर्मा, लियाक़त अली खोखर, राजेश शुक्ला, दर्शन व्यास, शलभ नेपालिया, अंबरीष कुमार, ए.के.सिंह, निशांत श्रीवास्तव, रजत चतुर्वेदी, एम. किरण कुमार, बिनीस कुमार, आबिद हुसैन भट्ट, दलजीत सिंह, अजीत चतुर्वेदी, अमिताभ गांगुली, नरेन्द्र कुमार, इंद्रनील मुखर्जी, अनूप श्रीवास्तव, शैलेष बंसल, सुशांत चक्रवर्ती। **क्षेत्रीय प्रसार समन्वयक** : राजीव चौबे, जितेन्द्र पांडे, लुकमान मसूद, आर.के. भारद्वाज, प्रवीण तिवारी, अरुण साहू, अभिषेक अवस्थी, विजय श्रीवास्तव, के.आई. जावेद, अमृतेष कुमार, योगेश मिश्रा, मनीष खरे, सचिन जैन, रूपेश देवांगन, राहुल चतुर्वेदी, संतोष उपाध्याय, असीम सरकार, निकुंज शाह, भुवनेश्वर प्रसाद द्विवेदी, राजेश कुमार गुप्ता, सौरभ त्रिपाठी, दीपक पाटीदार, भारत चतुर्वेदी, रक्षि मसूद, वेद प्रकाश परोहा, शैलेन्द्र कुमार शर्मा, अशोक कुमार बारी। समन्वयक प्रचार एवं विज्ञापन : राजेश पंडा। **आवरण एवं डिजाइन** : वंदना श्रीवास्तव, अमित सोनी सम्मिलित है, जो इसे आकर्षक बनाने व नवीनतम जानकारी आप सब तक पहुँचाने में तत्पर रहते हैं।

'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' के अंक देखता रहा हूँ, पढ़ता भी हूँ। हिन्दी में, इस तरह की विज्ञान पत्रिकाओं का अभाव ही है। विज्ञान ही क्यों, मानविकी में भी हमारे पास ऐसी पत्रिकाएँ कहाँ हैं जो सामान्य पाठकों से सीधे संवाद के लिए उत्सुक दिखाई दें? अकादेमिक जगत के दुहराव से भरे बोझिल शोध पत्रों की बात ही निराली है। कट-पेस्ट की अनंत कला की बहार है। विज्ञान, जीवन के महाप्रवाह में स्थित कोई मरकत द्वीप नहीं है। वह इसी अजस्र प्रवाह का हिस्सा है। निरंतर गतिशील और प्रवहमान, ठीक जीवन की ही तरह। आप उसे इसी तरह पहचानते हैं, यह बात हम जैसे पाठकों को उत्साह से भर देती है। अपनी ही भाषा में विज्ञान का जिक्र आते ही प्रो. सत्येन्द्र नाथ बोस जैसे ऋषि का ध्यान बरबस चला आता है। 'हिग्स-बोसोन पार्टिकल' की अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के बावजूद उन्होंने अपना बड़ा समय और श्रम भौतिकी की पाठ्य पुस्तकों को बांग्ला भाषा में तैयार करने (अनुवाद नहीं) में लगाया था। सत्येन्द्र नाथ बोस, जगदीश चंद्र बसु, डॉ. होमी भाभा, विक्रम साराभाई, जयंत विष्णु नार्लीकर, विश्वेश्वरैय्या, रमन, रामानुजम ये सभी जीवन को पूरी तरह जीने में विश्वास रखते हैं। और इनकी एक लम्बी उदाहरण योग्य कतार है। आप इसी कतार में दिखाई देते रहें, मेरी यही कामना है। हिन्दी में मौलिक विज्ञान कथाओं का अभाव सा ही है। निकट अतीत में ही सोवियत संघ के लेखक संगठन ने इस तरह का एक प्रोजेक्ट हाथ में लिया था। भले ही सोवियत संघ अब अतीत है और ऐसे प्रोजेक्ट से लेखकों के प्रति साम्यवादी तानाशाही (?) झलकती हो, परिणाम और परिमाण, दोनों ही दृष्टि से उसकी कुछ सफलताएँ हैं। क्या हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं में ऐसा कोई प्रोजेक्ट नहीं हो सकता?

राजेंद्र शर्मा, भोपाल

दूरसंचार से सूचना संचार तक

गुणाकर मुळे

जल्दी-जल्दी, तेजी से, तुरंत...। इन शब्दों का अब हम अधिकाधिक उपयोग करने लगे हैं। ये शब्द संचार व्यवस्था में हो रहे क्रांतिकारी परिवर्तन को सूचित करते हैं। यह परिवर्तन पिछले करीब पांच दशकों के अल्पकाल में हुआ है, भारत के आजाद होने के समय से हुआ है। दूर-संचार के साधनों में जितना विकास मानव सभ्यता के पांच हजार वर्षों के लंबे दौर में हुआ उससे कई गुना अधिक पिछले पचास वर्षों में हुआ, मेरे देखते-देखते हुआ।

करीब पचास साल पहले की बात है। महाराष्ट्र के अमरावती जिले का सिंदी बुजरूक गांव। मेरा बचपन इसी गांव में गुजरा। गांव में उस समय चौथे दर्जे तक की पाठशाला थी। मिडिल की पढ़ाई के लिए हम छह-सात लड़कों ने तीन किलोमीटर दूर के काकड़ा नामक गांव में जाना आरंभ किया। सुबह नौ बजे अपने गांव से निकलते और सायंकाल को वापस लौटते। रास्ता खेतों में से था और बीच में दो पहाड़ी नाले पार करने पड़ते थे। मन में जंगली जानवरों का थोड़ा भय भी बना रहता था। मगर सुबह जाते समय अक्सर हमें अब्दुल्ला का साथ मिल जाता था।

अब्दुल्ला सुबह करीब सात बजे काकड़ा से चलता। उसके कंधे पर बोरे जैसी एक थैली होती और हाथ में होता लंबे डंडेवाला भाला। भाले के साथ घुंघरुओं का एक गुच्छा बंधा हुआ था। अब्दुल्ला की दौड़ चाल के साथ उसके भाले के घुंघरू लगातार बजते रहते और उसके आगमन की सूचना देते थे। अब्दुल्ला हरकारा था, डाकिया था।

अब्दुल्ला हमारे गांव के पोस्ट ऑफिस पहुंचता। वहां से वह एक और थैली उठाता और करीब एक किलोमीटर दूर के रेलवे स्टेशन पहुंचता। अब्दुल्ला अपने पास की दो थैलियां स्टेशन मास्टर को सौंप देता और वहां से दो नई थैलियां प्राप्त करता। उनमें से एक थैली वह हमारे गांव के पोस्ट ऑफिस में छोड़ता और दूसरी थैली काकड़ा गांव ले जाता। इस तरह सुबह काकड़ा के मिडिल स्कूल जाने में अब्दुल्ला हमारा प्रायः प्रतिदिन का साथी होता था, संरक्षक होता था।

आज से पचास साल पहले, अब्दुल्ला द्वारा ढोई जाने वाली थैलियों की डाक ही हमारे गाँव को देश के दूसरे गाँवों व शहरों से जोड़ती थी। दो-तीन साल में एकाध बार गाँव के किसी व्यक्ति के नाम टेलीग्राम आता, तो पहले वह एक किलोमीटर दूर के रेलवे स्टेशन मास्टर के पास पहुँचता मोर्स कोड के जरिए। वहाँ से किसी रेलवे कर्मचारी के हाथ उसे गाँव में पहुँचाया जाता।

उन दिनों, आज से पचास साल पहले, अब्दुल्ला द्वारा ढोई जाने वाली थैलियों की डाक ही हमारे गांव को देश के दूसरे गांवों व शहरों से जोड़ती थी। दो-तीन साल में एकाध बार गांव के किसी व्यक्ति के नाम टेलीग्राम आता, तो पहले वह एक किलोमीटर दूर के रेलवे स्टेशन मास्टर के पास पहुंचता मोर्स कोड के जरिए। वहां से किसी रेलवे कर्मचारी के हाथ उसे गांव में पहुंचाया जाता।

मेरे बचपन में गांव में, बस, यही थे दूर-संचार व्यवस्था के साधन। हमारे देश में डाक सेवा की शुरुआत 1837 ई. से हुई। पहला डाक टिकट कराची (अब पाकिस्तान) में 1852 ई. में जारी हुआ। भारत में डाक सेवा की बाकायदा 19 वीं सदी के मध्यकाल से हुई। मेरे गांव में डाक सेवा की शुरुआत नजदीक से छोटी रेल लाइन गुजरने पर वर्तमान सदी के आरंभ में हुई। मेरे बचपन में मेरे गांव में न बिजली थी, न ही किसी के घर रेडियो या टेलीफोन। किसी को भी पता नहीं था कि टेलीविजन क्या चीज है।

आज मेरे गांव में बिजली है। सौ से भी अधिक घरों में टी.वी. है, करीब दो दर्जन घरों में रंगीन टी.वी. भी! केबल टी.वी. भी आ गया है! पचास से अधिक लोगों के पास अपने टेलीफोन हैं। पचास से अधिक लोग टेलीफोन की 'वेटिंग लिस्ट' में हैं। गांव में ही अब टेलीफोन एक्सचेंज की व्यवस्था की गई है। एस.टी.डी. (सबस्क्राइबर ट्रंक डायलिंग) और आई.एस.डी. (इंटरनेशनल सबस्क्राइबर डायलिंग) की सेवाएं भी शुरू होने में अब ज्यादा देर नहीं है।

मेरे गांव में अभी तक कोई कम्प्यूटर तो नहीं लगा है, मगर गांव के कुछ विद्यार्थी शहरों में जाकर कम्प्यूटर शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। अतः गांव में कम्प्यूटर के पहुंचने में और उसके देशव्यापी नेटवर्कों से या विश्वव्यापी इंटरनेट से जुड़ने में अब बहुत अधिक समय नहीं लगेगा। मेरा गांव नए दूर संचार माध्यमों के जरिए अब पूरे देश से ही नहीं, सारी दुनिया से जुड़ गया है। लगता है, दूर-संचार के साधनों से समूचा संसार एक छोटे कस्बे के रूप में सिमट गया है।

इशारों और आवाज से संदेश प्रसारण

निकट भविष्य में संचार के कई नए शक्तिशाली साधन उपलब्ध होने वाले हैं। आज के और भविष्य के इन उन्नत संचार साधनों के महत्व को ठीक से समझने के लिए अतीत के संचार साधनों की जानकारी काफी सहायक सिद्ध हो सकती है। संचार साधनों की कहानी एक प्रकार से मानव के विकास की कहानी है। सूचनाओं या समाचारों को जल्दी से जल्दी भेजने या प्राप्त करने के लिए मनुष्य पुरातन काल से ही साधन खोजता आ रहा है। आरंभ में आदि मानव गूंगे जैसी अस्पष्ट बोली और हाथों की हलचलों से अपने मनोभाव व्यक्त करता रहा। फिर धीरे-धीरे बोली या भाषा का जन्म हुआ। तब भी आवाज के जरिए कुछ सौ मीटर तक ही मनुष्य अपनी बात पहुंचा सकता था। हाथों के इशारों से भी वहां तक संदेश प्रेषित किए जाने लगे जहां तक देखा जा सकता है।

सूचनाओं या समाचारों को जल्दी से जल्दी भेजने या प्राप्त करने के लिए मनुष्य पुरातन काल से ही साधन खोजता आ रहा है। आरंभ में आदि मानव गूंगे जैसी अस्पष्ट बोली और हाथों की हलचलों से अपने मनोभाव व्यक्त करता रहा। फिर धीरे-धीरे बोली या भाषा का जन्म हुआ। तब भी आवाज के जरिए कुछ सौ मीटर तक ही मनुष्य अपनी बात पहुँचा सकता था। हाथों के इशारों से भी वहाँ तक संदेश ेषित किए जाने लगे जहाँ तक देखा जा सकता है।

प्राचीन फारस (ईरान) के शासक द्वारा (500 ई.पू.) ने राजकीय संदेश दूर-दूर तक भेजने के लिए एक नया तरीका खोजा। उपयुक्त अंतराल पर ऊंची मीनारें खड़ी करवा के उन पर दूर तक आवाज लगा सकने वाले गुलाम तैनात कर दिए गए। गुलाम संदेशों को जोर-जोर से बोलकर काफी दूर तक पहुंचा देते थे। रणक्षेत्र के समाचारों को भी प्राचीन काल में कुछ इसी तरह की व्यवस्था के जरिए राजधानी तक पहुंचाया जाता था। कुरूक्षेत्र के मैदान से कौरव-पांडव युद्ध के समाचार कुछ इसी तरह की चौकी दौड़ व्यवस्था के माध्यम से हस्तिनापुर में पहले संजय तक पहुंचते होंगे और फिर उन्हें धृतराष्ट्र को सुनाया जाता होगा। रोमन शासक जूलियस सीजर (102-44 ई.पू.) गॉल लोगों के साथ हुए युद्धों की जानकारी देते हुए लिखता है कि वे लोग किसी महत्वपूर्ण संदेश को एक-दूसरे की ओर जोर-जोर से चिल्लाकर काफी दूर पहुंचा देते थे।

प्राचीन चीन में संदेश भेजने के लिए घड़ियालों या घंटों का इस्तेमाल किया जाता था। घड़ियाल बजाकर बीते पहरों की सूचना देने की प्रथा हमारे देश में भी प्रचलित रही है। अफ्रीका और अमेरिका के आदिवासी अभी हाल तक दूर-संचार के लिए ढोलों का उपयोग करते रहे हैं। ये ढोल पेड़ों के खोखले तनों से बनाए जाते थे और विभिन्न स्वरमान की ध्वनियां पैदा करने के लिए इनमें अलग-अलग आकार के छिद्र बनाए जाते थे। इन ढोलों की लंबाई कभी-कभी चार मीटर तक होती थी। इन्हें हाथ डंडे द्वारा कभी जोर से तो कभी धीमें से पीटकर तरह-तरह की संदेश वाहक ध्वनियां पैदा की जाती थी। इस तरह के 'ढोल टेलीग्राफ' से अफ्रीका में एक कबीले से दूसरे कबीले को या एक गांव से दूसरे गांव को संदेश भेजने की प्रथा सदियों से प्रचलित रही है। उन्नीसवीं सदी के मध्य में दक्षिणी व मध्य अफ्रीका का अन्वेषण करने पहुंचा था, तो उसने ऐसे अनेक ढोल संदेश सुने थे। लिविंगस्टन की खोज में गए अमेरिकी पत्रकार हेनरी मोर्टन स्टेन्ली ने भी इस तरह के कई ढोल संदेश सुने थे। सींग, शंख, तुरही, भोंपू आदि साधनों से विशिष्ट ध्वनियां पैदा करके संदेश प्रसारित करने की व्यवस्थाएं कई देशों में प्रचलित रही हैं।

घंटों से संदेश प्रसारण

मगर ध्वनि के माध्यम से संदेश भेजने की अपनी एक सीमा है। ध्वनि की तुलना में प्रकाश की गति बहुत ज्यादा है। वायुमंडल में ध्वनि की गति 332 मीटर (एक तिहाई किलोमीटर) प्रति सेकंड है, जबकि निर्वात में प्रकाश का वेग लगभग तीन लाख किलोमीटर प्रति सेकंड है। जितनी दूरी से हम ध्वनि को सुन सकते हैं उससे कहीं अधिक गुना दूरी से प्रकाश को देख सकते हैं। दर्पण से परावर्तित प्रकाश पुंज को 25-30 किलोमीटर की दूरी तक देखा जा सकता है। प्रकाश के जरिए करीब दस लाख गुना अधिक तेजी से संदेश भेजे जा सकते हैं। इसलिए प्रकाश के माध्यम से संदेश भेजने के कुछ तरीके प्राचीन काल में ही अस्तित्व में आ गए थे। रात में आग जलाकर और दिन में धुंआ पैदा करके

संदेश भेजने की प्रथाएं बहुत पुरानी हैं। अमेरिकी 'इंडियन' भी इस संचार प्रणाली का प्रयोग करते थे। ग्रीस के दुःखांत नाटककार ऐश्चिलुस (525-456 ई.पू.) के आगामेम्नोन नाटक की कथा संभाव्य जान पड़ती है। राजा आगामेम्नोन की यूनानी सेना एशिया माइनर के ट्रॉय नगर पर हमला करने के लिए रवाना हुई। उस समय राजा ने रानी क्लितेम्नेस्त्राा से कहा 'ट्रॉय पर विजय प्राप्त करने और युद्ध समाप्त होने की सूचना मैं फौरन सबसे पहले तुम्हें भेजूंगा।'

ट्रॉय का पतन रात्रि के समय हुआ। रानी को इसकी सूचना भेजने के लिए राजा ने पहले से ही तैयारी कर रखी थी। एशिया माइनर और ग्रीस के बीच के द्वीपों में जो पहाड़ियां थीं उनमें से सबसे ऊंची आठ चोटियों पर राजा ने अग्नि जलाकर संदेश भेजने वालों को तैनात कर रखा था। ट्रॉय पर विजय के बाद वहां से उसी रात भेजा गया अग्नि संदेश एक-एक पहाड़ी से आगे बढ़ता हुआ रात्रि के अंतिम प्रहर में ग्रीस की राजधानी माइसीने के नजदीक की पहाड़ी पर आकर प्रकट हुआ। माइसीने के राजमहल की छत पर तैनात पहरेदार ने उस अग्नि संदेश को देखा और उसके आगमन की सूचना रानी को दी इस इस तरह ट्राय पर विजय का समाचार करीब 550 किलोमीटर का फासला पार करके उस रात चंद घंटों बाद रानी तक पहुंच गया। कथा का दुःखांत यह है कि रानी को सबसे पहले मिली उस सूचना का उपयोग करके उसने राजा की हत्या का षड्यंत्र रचा। विजेता राजा अपनी राजधानी में लौटा, तो रानी ने क्रूरता से उसकी हत्या कर दी।

आज से करीब चौबीस सौ साल पहले सिकंदरिया निवासी क्लेओक्सेनेस व देमोक्लेइतोस नामक दो यूनानियों ने एक प्रकार के 'मशाल टेलीग्राफ' का आविष्कार किया था। उन्होंने ग्रीक वर्णमाला के 24 अक्षरों को 5 पंक्तियों और 5 स्तंभों को एक वर्ग में स्थापित किया। फिर दो दीवारों में पांच-पांच जलती मशालें रखने की व्यवस्था की। इस तरह जलती मशालों के संयोजन से एक-एक ग्रीक अक्षर को एक स्टेशन से दूसरे स्टेशन तक प्रेषित करने की व्यवस्था की गई। यह संभवतः इतिहास का पहला टेलीग्राफ कोड था। मगर इस 'मशाल टेलीग्राफ' को रात के वक्त और मौसम साफ होने पर ही प्रयोग में लाया जा सकता था, इसलिए इसका प्रचार नहीं हो सका।

अग्नि संदेश भले ही तेजी से भेजे जा सकते हों, मगर इनकी अपनी सीमाएं थीं। इनके माध्यम से पहले से तय की गई बातों के बारे में केवल हां या नहीं जैसे संदेश ही भेजे जा सकते थे अथवा मशाल टेलीग्राफ जैसी योजना से चंद शब्द प्रेषित किए जा सकते थे। इनके जरिए शत्रु के आगमन के बारे में सूचना भेजना तो संभव था, परन्तु शत्रु सेना की संख्या और उसके द्वारा प्रयुक्त हथियारों के बारे में जानकारी देना संभव नहीं था। ऐसी जानकारी संदेश वाहकों द्वारा ही भेजी जा सकती थी।

अभी करीब दो सौ साल पहले तक संदेश भेजने के लिए धावकों और घुड़सवारों का कई देशों में व्यापक उपयोग हुआ है। हमारे देश में मौर्यकाल से इन साधनों का इस्तेमाल होता आ रहा है। मुगलों और मराठों के संदेश वाहक घुड़सवारों के बारे में कई रोमांचक कथाएं पढ़ने-सुनने को मिलती हैं। फारस में घुड़सवारों के जरिए डाक भेजने की व्यवस्था कई सदियों तक चलती रही है। भारत में तुगलक शासनकाल (ईसा की चौदहवीं सदी) में डाक व्यवस्था की जो स्थिति रही है उसकी जानकारी हमें इस्लामी पर्यटक इब्न बतूता के विवरण से मिलती है। वह बताता है कि डाक व्यवस्था दो प्रकार की थी। एक, घोड़ों के जरिए डाक भेजी जाती थी। इसके लिए प्रति चार कोस की दूरी पर सुलतान के घोड़े तैनात रहते थे। दूसरी थी, धावकों की व्यवस्था। एक कोस दूरी को तीन हिस्सों में बांटकर इनमें से प्रत्येक स्थान पर, प्रायः किसी देहात के बाहर, तीन तंबू स्थापित करके वहां धावकों को तैनात किया जाता था। ये धावक अपनी धोती को कसकर बांधते थे और इनके हाथ में करीब एक गज लंबा एक कोड़ा होता था; इस कोड़े के सिरे पर घुंघरू बंधे होते थे। जब धारक अपने डेरे से चलता, तो उसके एक हाथ में चिट्ठी होती थी और दूसरे हाथ में घुँघरूओं वाला कोड़ा, वह अपनी पूरी ताकत के साथ दौड़ता था। जब दूसरे डेरे के धावक घुँघरूओं की आवाज सुनते, तो उसके स्वागत की तैयारी में जुट जाते। जब वह डेरे के पास पहुंचता तो वहां एक धावक उससे चिट्ठी लेकर कोड़ा बजाते हुए आगे तेजी से दौड़ पड़ता। इस तरह चिट्ठी अंततः अपने गंतव्य स्थान पर पहुंच जाती। मगर हमें ध्यान में रखना चाहिए कि यह व्यवस्था सरकारी आदेशों को त्वरित भेजने के लिए ही थी, जनसाधारण के उपयोग के लिए नहीं थी। भारत में अपना शासन शुरू करने के बाद अंग्रेजों ने भी यहां घुड़सवारों और धावकों की पुरानी प्रथाओं को अपनाया। टेलीग्राफ की शुरुआत के पहले सरकार धावकों के जरिए ही दूर तक डाक भेजती थी। इन धावकों के पास चिट्ठियां रखने के लिए एक छोटी थैली होती थी। संचार व्यवस्था

खोखले ढोलों से संदेश प्रसारण

मगर ध्वनि के माध्यम से संदेश भेजने की अपनी एक सीमा है। ध्वनि की तुलना में प्रकाश की गति बहुत ज्यादा है। वायुमंडल में ध्वनि की गति 332 मीटर (एक तिहाई किलोमीटर) प्रति सेकंड है, जबकि निर्वात में प्रकाश का वेग लगभग तीन लाख किलोमीटर प्रति सेकंड है। जितनी दूरी से हम ध्वनि को सुन सकते हैं उससे कहीं अधिक गुना दूरी से प्रकाश को देख सकते हैं। दर्पण से परावर्तित प्रकाश पुंज को 25-30 किलोमीटर की दूरी तक देखा जा सकता है। प्रकाश के जरिए करीब दस लाख गुना अधिक तेजी से संदेश भेजे जा सकते हैं।

	1	2	3	4	5
1	A	B	Γ	Δ	E
2	Z	H	Θ	I	K
3	Λ	M	N	Ξ	O
4	Π	P	Σ	T	Υ
5	Φ	X	Ψ	Ω	

इशारों और आवाज से संदेश प्रसारण

में बिजली के उपयोग के पहले संचार के एक और महत्वपूर्ण साधन का आविष्कार हुआ। यह था सेमाफोर! बालचर (स्काउट्स) इस शब्द से परिचित है। सेमाफोर का अर्थ है झंडियों द्वारा संदेश भेजने की प्रणाली। इसका विचार सबसे पहले आंग्ल वैज्ञानिक रॉबर्ट हुक (1635-1703 ई.) ने प्रस्तुत किया था। उन्होंने कहा कि ऊंचे मचानों पर अक्षरों की द्योतक आकृतियों का प्रदर्शन किया जाए और उन्हें दूरबीन से देखा जाए, तो संदेशों को काफी तेजी से दूर तक भेजा जा सकता है। उस समय तक दूरबीन का आविष्कार (1609 ई.) हो चुका था। मगर हुक के प्रस्ताव का उपयोग सीमित रूप में ही हो सका।

'मशाल टेलीग्राफ' यहाँ बाई ओर की एक मशाल पहली पंक्ति और दाई ओर की तीन मशालें तीसरे स्तंभ को सूचित करती हैं। अतः यहां 'गामा' अक्षर प्रेषित किया जा रहा है

सेमाफोर को एक व्यावहारिक व्यवस्था का रूप प्रदान किया फ्रांसीसी इंजीनियर क्लाउद शापे ने, अठारहवीं सदी के अंतिम दशक में। इस व्यवस्था में एक टॉवर की छत पर ऊंचा खंबा खड़ा किया जाता था। फिर उसके सिरे पर एक आड़ा डंडा जोड़कर झंडियों की तरह के दो और छोटे डंडे जोड़े जाते थे। आज के एरियलों जैसी इस व्यवस्था से रोमन वर्णमाला के अक्षरों को सूचित किया जाता था। आड़े लंबे डंडे को चार स्थितियों में रखा जा सकता था : क्षैतिज, खड़ा, दायीं ओर या बायीं ओर 45 डिग्रियों में झुका हुआ। इस बड़े डंडे के सिरे पर जोड़े गए प्रत्येक छोटे डंडे को 8 स्थितियों में रखा जा सकता था। इस प्रकार, कुल 4,88,256 स्थितियों या संकेतों को व्यक्त किया जा सकता था। शापे ने इनमें से सबसे अनुकूल परिस्थितियों का चुनाव करके उनसे संदेश भेजने की व्यवस्था की। सेमाफोर के हत्थे से अक्षरों को सूचित करने के लिए कोड निर्धारित किया जाता था। शापे के इस आविष्कार को उनके एक सहयोगी ने पहली बार सन् 1793 में 'टेलीग्राफ' का नाम दिया था।

संचार व्यवस्था में बिजली के उपयोग के पहले संचार के एक और महत्वपूर्ण साधन का आविष्कार हुआ। यह था सेमाफोर! बालचर (स्काउट्स) इस शब्द से परिचित है। सेमाफोर का अर्थ है झंडियों द्वारा संदेश भेजने की प्रणाली। इसका विचार सबसे पहले आंग्ल वैज्ञानिक रॉबर्ट हुक (1635-1703 ई.) ने प्रस्तुत किया था। उन्होंने कहा कि ऊंचे मचानों पर अक्षरों की द्योतक आकृतियों का प्रदर्शन किया जाए और उन्हें दूरबीन से देखा जाए, तो संदेशों को काफी तेजी से दूर तक भेजा जा सकता है। उस समय तक दूरबीन का आविष्कार (1609 ई.) हो चुका था। मगर हुक के प्रस्ताव का उपयोग सीमित रूप में ही हो सका।

संसार की पहली सेमाफोर टेलीग्राफ प्रणाली फ्रांस में पेरिस से लिली नगर तक सन् 1794 में शुरू हुई। कुल 230 किलोमीटर के फासले पर स्थित इन दो नगरों के बीच 22 सेमाफोर टॉवर खड़े किए गए थे। उस साल 15 अगस्त को आधे घंटे के भीतर इन दो शहरों के बीच संदेश प्रेषित किया गया था।

इस सेमाफोर प्रणाली को, फ्रांस का अनुकरण करते हुए, यूरोप के कई देशों ने अपनाया। स्वीडेन ने सन् 1795 में और डेनमार्क ने 1802 में इसे अपनाया। उसके बाद स्पेन, इटली, अल्जेरिया और मिस्र ने भी इसे अपनाया। कुछ भिन्न रूप में सन् 1796 में इसे इंग्लैंड में अपनाया गया। भारत भी इससे वंचित नहीं रहा। अंग्रेजों ने सन् 1802 में सेमाफोर प्रणाली के जरिए कलकत्ता को झारखंड क्षेत्र से जोड़ दिया।

अमेरिका में सन् 1800 में बोस्टन और मार्था वाहनयार्ड आइलैंड को (अंतर 104 किलोमीटर) सेमाफोर प्रणाली से जोड़ दिया गया था। सन् 1852 तक फ्रांस में 550 सेमाफोर टॉवरों का नेटवर्क स्थापित हो चुका था। कुल 4800 किलोमीटर दूरी तक फैला यह नेटवर्क पेरिस को फ्रांस के 28 महत्वपूर्ण नगरों से जोड़ता था।

मगर सेमाफोर संचार प्रणाली की भी अपनी कई सीमाएं थीं। बारिश, कुहरे आदि में इसमें बाधाएं पैदा होती थीं। यूरोप के देशों का तेजी से औद्योगिक विकास शुरू हो गया था। रेलमार्ग स्थापित हो रहे थे। इसलिए तेज गति वाले और कम से कम बाधा उपस्थित करने वाले संचार माध्यम की तलाश जारी थी। दरअसल, 18वीं सदी के उत्तरार्ध से ही प्रयोगशालाओं में बिजली पर आधारित नई संचार प्रणाली की खोज शुरू हो गई थी।

सेमाफोर के इस्तेमाल से कई तरह की भ्रांतियां पैदा होती थीं। एक बार की बात है कि इंग्लैंड का सेनापति वेलिंगटन फ्रांस में लड़ाई लड़ रहा था। सेमाफोर से लंदन समाचार पहुंचा कि 'वेलिंगटन डिफीटेड' यानी वेलिंगटन हार गया'। लोगों में शोक छा गया। मगर वास्तविकता यह थी कि कुहरे के कारण समाचार के अंतिम दो शब्द 'द फ्रेंच' दिखाई नहीं दिए थे। ये शब्द कुछ समय बाद लंदन पहुंचे तभी उन्हें सही समाचार मिला कि 'वेलिंगटन ने फ्रांसीसियों को हरा दिया है'। कुहरे के कारण समाचार का अभिप्राय एकदम उलट ही गया था!

तार के द्वारा बिजली बहुत दूर तक भेजी जा सकती है, इसकी जानकारी अठारहवीं सदी के पूर्वार्ध में मिली। उसके साथ नए-नए उपयोगी आविष्कारों की बाढ़ सी आ गई। बिजली पर आधारित संचार के नए तीव्रगामी साधनों की तलाश भी शुरू हो गई। डेनमार्क के वैज्ञानिक आयर्स्टड (1775-1815) ने सन् 1819 में पता लगाया कि तार में बहती बिजली की धारा कुतुबनुमा (कंपास) की सुई को विचलित करती है। फ्रांसीसी वैज्ञानिक ऐम्पीयर (1775-1836) ने जाना कि तार

घुड़सवार डाकिए

सेमाफोर टॉवर

सेमाफोर संचार प्रणाली की भी अपनी कई सीमाएँ थीं। बारिश, कुहरे आदि में इसमें बाधाएं पैदा होती थीं। यूरोप के देशों का तेज़ी से औद्योगिक विकास शुरू हो गया था। रेलमार्ग स्थापित हो रहे थे। इसलिए तेज गति वाले और कम से कम बाधा उपस्थित करने वाले संचार माध्यम की तलाश जारी थी।

सेमाफोर से संदेश प्रसारण

की कुंडली में से बिजली की धारा को गुजारा जाए, तो वह एक चुंबक की तरह काम करती है। उन्होंने यह भी सुझाया कि आयर्स्टड के प्रयोग का उपयोग करके समाचारों को दूर.दूर तक भेजना संभव हो सकता है। इंग्लैंड के वैज्ञानिक हम्फ्री डेवी (1778-1829) ने पता लगाया कि लोहे के किसी टुकड़े के चारों ओर बिजली का तार लपेटा जाए, तो यह विद्युत चुंबक बन जाता है। विद्युत चुंबक से बनाए गए विद्युत रिले उपकरण बिजली के तारों के जरिए दूर तक संदेश भेजने में बड़े उपयोगी सिद्ध हुए। यूरोप व अमेरिका के कई वैज्ञानिक विद्युत टेलीग्राफ के विकास में जुट गए। टेलीग्राफ के आरंभिक विकास में रूसी इंजीनियर बैरन फोन शिलिंग का महत्वपूर्ण योगदान रहा। उन्होंने तागे से चुंबक की सुई लटकाई। सुई के साथ कागज का एक गोल टुकड़ा लगा हुआ था जो एक ओर काला और दूसरी ओर सफेद था। तार में बिजली की धारा भेजने पर सुई घूमती थी। काले और सफेद के अंतर के आधार पर संकेत बना लिए गए थे।

टेलीग्राफ की पहली सफल योजना चार्ल्स व्हीटस्टन और उनके सहयोगी विलियम कूक ने तैयार की थी। इन्होंने 20 जुलाई, 1835 को पहली बार तार से समाचार भेजने में सफलता प्राप्त की। उस समय लंदन और बर्मिघंम के बीच रेलवे लाइन खोली जा रही थी। मगर आश्चर्य की बात यह है कि रेलवे अधिकारी व्हीटस्टन और कूक के तार टेलीग्राफ संबंधी प्रयोग से बिलकुल प्रभावित नहीं हुए। उन्होंने इन दोनों अन्वेषकों को अपने तार उखाड़ लेने को कहा!

ग्रेट वेस्टर्न रेल्वे के अधिकारी कुछ अधिक उदार थे। उन्होंने व्हीटस्टन और कूक को 13 मील की दूरी तक तार लगवाने की अनुमति दे दी। प्रयोग सफल रहा। फिर भी तार टेलीग्राफ के प्रति लोगों की रुचि में विशेष वृद्धि नहीं हुई। मगर उसी समय तक ऐसी घटना घटी जिससे तार टेलीग्राफ को एकाएक बहुत महत्व मिल गया। सन् 1844 में स्लफ के नजदीक सॉल्टहिल में एक महिला की हत्या की गई। स्लफ की पुलिस ने लंदन को तार से फौरन समाचार भेजा, सॉल्टहिल में एक महिला की हत्या की गई। स्लफ की पुलिस ने लंदन को तार से फौरन समाचार भेजा, 'सॉल्टहिल में एक हत्या अभी हुई है। संदिग्ध हत्याकारी व्यक्ति ने लंदन के लिए पहले दर्जे की टिकट खरीदी है और वह उस ट्रेन से जो 7:42 सायं को चलती है स्लफ स्टेशन पर सवार हुआ है। उसकी पोशाक क्वेकर की है, ऊपर से भूरे रंग का लबादा पहने है जो पैरों तक आता है।'

वह संदिग्ध व्यक्ति, जॉन टैनवेल, लंदन पहुंचा तो वहां की पुलिस ने उसका पीछा किया और वह पकड़ा गया। बाद में उसको फांसी हुई। इस घटना से तार से भेजे जाने वाले समाचारों को बड़ा महत्व मिला। मगर तार टेलीग्राफ में अभी काफी सुधार करना आवश्यक था। इसमें सफलता मिली एक ऐसे व्यक्ति को जो खुद वैज्ञानिक नहीं था।

सन् 1832 की बात है। यूरोप से अमेरिका जा रहा एक जहाज अटलांटिक महासागर को पार कर रहा था। उस पर सवार यात्रियों में थे एक अमेरिकी डाक्टर, जो अपने सहयात्रियों को विद्युत चुंबक से संबंधित तरह-तरह के प्रयोग दिखाकर उनका मनोरंजन कर रहे थे। उन यात्रियों में थे करीब चालीस साल के एक चित्रकार सेमुअल मोर्स (1791-1872)। तरूण पत्नी का निधन होने के बाद वे काफी लंबे समय के लिए यूरोप की यात्रा पर गए थे और अब स्वदेश लौट रहे थे। जहाज पर दिखाए गए विद्युत चुंबक से संबंधित प्रयोगों ने मोर्स को बड़ा प्रभावित किया। उन प्रयोगों को देखकर मोर्स को यकीन हो गया कि बिजली के जरिए दूर-दूर तक संदेश भेजे जा सकते हैं।

अमेरिका पहुंचने पर मोर्स ने टेलीग्राफ मशीन के विकास का काम जोरशोर से शुरू कर दिया। इसमें उन्हें उनके विद्यार्थी अल्फ्रेड वाइल का काफी सहयोग मिला। विद्युत टेलीग्राफ द्वारा संदेश भेजने का पहला सफल प्रदर्शन न्यूयार्क में 4 सितंबर, 1837 को हुआ। मोर्स ने रोमन अक्षरों के लिए डॉट (.) और डैश (-) के मेल का एक नया कोड भी तैयार किया। इसके लिए उन्होंने गणना करके पता लगाया कि रोमन वर्णमाला के किन अक्षरों का इस्तेमाल अधिक होता है और किन का कम। जैसे, सबसे ज्यादा प्रयुक्त होने वाले रोमन के E तथा T अक्षरों के लिए उन्होंने क्रमशः एक डॉट (.) व एक डेश (-) के कोड निर्धारित किए। इस मोर्स कोड का प्रदर्शन पहली बार 24 जनवरी, 1938 को सम्पन्न हुआ।

मोर्स ने अपनी टेलीग्राफ संचार प्रणाली का पहला व्यावसायिक प्रदर्शन 24 मई, 1844 को वाल्टीमोर को वाशिंगटन से जोड़ने वाली लाइन पर किया। उसके बाद इस विद्युत टेलीग्राफ का खूब तेजी से प्रचार-प्रसार हुआ। आगे की एक दशक की अल्पावधि में ही एक शहर को दूसरे शहर से,

एक देश को दूसरे देश से और एक महाद्वीप को दूसरे महाद्वीप से जोड़ने वाली बेशुमार टेलीग्राफ लाइनें बिछ गईं। चंद घंटों के अंदर दूर.दूर तक संदेश व समाचार भेजना संभव हो गया। रेलवे और टेलीग्राफ का आगमन साथ-साथ हुआ, इसलिए आज हमें टेलीग्राफ लाइनें ज्यादातर रेलमार्गों के समांतर जाती हुई दिखाई देती हैं। टेलीग्राफ की उपयोगिता बढ़ी, तो समुद्री केबल बिछाना भी आवश्यक हो गया। इस तरह का पहला केबल सन् 1850 में इंग्लिश चैनल में डाला गया, तो इंग्लैंड और फ्रांस के बीच सीधे टेलीफोन संचार संबंध स्थापित हो गए। अटलांटिक महासागर में पहली बार 1858 ई. में केबिल डाला गया, परन्तु एक सुव्यवस्थित समुद्री केबिल संचार प्रणाली 1866 से ही शुरू हो सकी।

चार्ल्स व्हीटस्टन

भारत में इलाहाबाद और कलकत्ता के बीच पहली टेलीग्राफ लाइन पिछली सदी के छठे दशक के आरंभ में स्थापित हुई। जमीन के रास्ते कलकत्ता को लंदन से जोड़ने वाली टेलीग्राफ लाइन 1870 ई. में शुरू हुई। छठे दशक में जब मैं इलाहाबाद विश्वविद्यालय में पढ़ता था और कभी.कदा महाराष्ट्र के अपने गांव तार भेजता था, तो वह मोर्स कोड वाली टेलीग्राफ प्रणाली से ही गांव से एक किलोमीटर दूर के रेलवे स्टेशन तक पहुंचता था। टेलीग्राफ के तारों से दुनिया के देश एक दूसरे से जुड़ने लगे, तो उद्योग और व्यापार में भी तेजी से वृद्धि होने लगी। समाचार पत्रों को ताजी खबरें अब तेजी से मिलने लगी। समाचारों और सूचनाओं का प्रसारण बहुत अधिक लोगों तक होने लगा। टेलीग्राफ ने मानव जीवन को बेहद प्रभावित किया। टेलीग्राफ के करीब तीन दशक बाद टेलीफोन का आविष्कार हुआ। टेलीग्राफ की व्यवसायिक सफलता के बाद कई वैज्ञानिक एक ऐसी विद्युत प्रणाली की खोज में जुट गए जिसमें तांबे के यानी कॉपर तारों के माध्यम से वाणी के संकेत दूर तक भेजे जा सकें। इसमें सबसे पहले सफलता मिली अलेक्जेंडर ग्राह्म बेल (1847-1892) को। ब्रिटेन में पैदा हुए बेल अमेरिका में पहुंचकर वहां बोस्टन में बहरों के लिए एक स्कूल चला रहे थे। उनकी दिलचस्पी एक ऐसी विद्युत संचार प्रणाली की खोज करने में थी जिसके जरिए बोली के संकेत दूर तक भेजे जा सकें। अन्य शब्दों में, वह एक ऐसी दूरभाषा व्यवस्था की खोज में जुट गए जिसके वाणी के संकेतों को विद्युत संकेतों में बदला जा सके। अंततः इसमें सफलता मिल गई। विद्युत इंजीनियर थॉमस वाट्सन इस प्रयास में उनके सहयोगी थे।

टेलीग्राफ की पहली सफल योजना चार्ल्स व्हीटस्टन और उनके सहयोगी विलियम कूक ने तैयार की थी। इन्होंने 20 जुलाई, 1835 को पहली बार तार से समाचार भेजने में सफलता प्राप्त की। उस समय लंदन और बर्मिंघम के बीच रेलवे लाइन खोली जा रही थी। मगर आश्चर्य की बात यह है कि रेलवे अधिकारी व्हीटस्टन और कूक के तार टेलीग्राफ संबंधी प्रयोग से बिलकुल प्रभावित नहीं हुए। उन्होंने इन दोनों अन्वेषकों को अपने तार उखाड़ लेने को कहा!

वह 10 मार्च, 1876 का दिन था। बेल जिस मकान में रहते थे उसकी अटारी में उनकी प्रयोगशाला थी। प्रयोगशाला से 12 मीटर लंबा एक तार नीचे की मंजिल पर पहुंचाया गया। वाट्सन को नीचे खड़ा करके उस दिन बेल अटारी से अपने टेलीफोन यंत्र में बोले 'मिस्टर वाट्सन, प्लीज कम हियर, आई वांट यू' (श्रीमान वाट्सन, कृपया यहां आइए, मुझे आपकी जरूरत है) नीचे वाट्सन ने उस संदेश को सुना और वह ऊपर आए।

यह था टेलीफोन से भेजा गया पहला ऐतिहासिक संदेश। बेल ने अपने आविष्कार को पेटेंट किया। वे अपना यह आविष्कार अमेरिका की एक बड़ी टेलीग्राफ कंपनी को बेचना चाहते थे, मगर उस कंपनी को लगा कि टेलीफोन का ज्यादा प्रचार होने की कोई संभावना नहीं है, इसलिए उसने इस नए आविष्कार को खरीदने से इंकार कर दिया। तब बेल ने स्वयं अपने एक कंपनी स्थापित की। आज यह कंपनी एटी एंड टी के नाम से जानी जाती है और दूर-संचार के अपने साधनों के लिए दुनिया भर में मशहूर है। वर्तमान सदी में बेल प्रयोगशालाओं में बहुत महत्वपूर्ण अनुसंधान कार्य हुआ है, विशेषकर दूर-संचार के क्षेत्र में। सन् 1948 में ट्रांजिस्टर की खोज एक बेल प्रयोगशाला में ही हुई थी।

टेलीफोन के आविष्कार के बाद अमेरिका और जर्मनी में यह नया संचार साधन बहुत जल्दी लोकप्रिय हो गया। इंग्लैंड में इसे कुछ बाद में अपनाया गया। अमेरिका और जर्मनी में पहली बार हस्तचालित टेलीफोन एक्सचेंजों की स्थापना 1878 ई. में हुई। पहला स्वचालित एक्सचेंज 1892 ई. में कायम हुआ। आजकल सभी जगह इलेक्ट्रॉनिक एक्सचेंज स्थापित हो रहे हैं। इनका नियंत्रण कम्प्यूटर की स्मृति में संचित प्रोग्राम से होता है। बिल भी कम्प्यूटरों से तैयार होते हैं। टेलीफोन आधुनिक जीवन का एक महत्वपूर्ण और आवश्यक संचार-साधन बन गया है। इंग्लैंड के वैज्ञानिक जेम्स क्लार्क मैक्सवेल (1831-1869) ने 1865 ई. में विद्युत चुंबकीय तरंगों की वास्तविकता प्रतिपादित की थी। तब से कई देशों के वैज्ञानिक इन तरंगों के निर्माण और इनके प्रसारण के साधन खोजने में जुट गए। हेनरिख हर्टज (1857-1894) ने 1887 ई. में विद्युत चुंबकीय तरंगें पैदा करने वाला एक
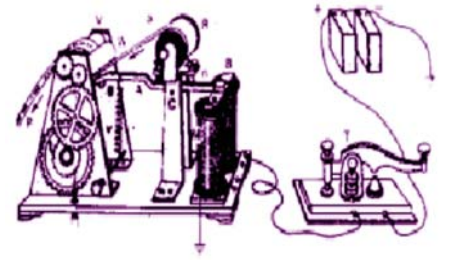
मोर्स का टेलीग्राफ उपकरण

अलेक्जेंडर ग्राहम बेल

जेनरेटर तैयार किया। फिर इन तरंगों को ग्रहण करने वाला उपकरण (रिसीवर) भी बनाया गया। पिछली सदी के अंतिम दशक में कई देशों के वैज्ञानिक इन तरंगों से, यानी 'बेतार के तार' से दूर तक संदेश भेजने और उन्हें ग्रहण करने संबंधी प्रयोगों में जुट गए। भारत में इस तरह के आरंभिक प्रयोग जगदीशचंद्र बसु (1858-1937 ई.) ने किए। उन्होंने बेतार के संदेश ग्रहण करने के लिए तार की कमानियों का एक अनुस्पंदक (कोहेरेर) तैयार किया था जो दूसरों के अनुस्पंदकों से बहुत बेहतर था। मगर बसु ने अपने आविष्कारों का पेटेंट नहीं लिया। उन्होंने अपने अनुसंधान कार्य को आगे नहीं बढ़ाया।

जिस समय भारत में आचार्य जगदीशचंद्र बसु अपने प्रयोग कर रहे थे, लगभग उसी समय इटली का एक तरुण युवक गुग्लीएल्मो मारकोनी (1874-1937 ई.) भी इसी प्रकार के प्रयोगों में लगा था। मारकोनी इटली से लंदन चला आया और अपने प्रयोगों में जुटा रहा। सन् 1898 में उसे इंग्लैंड के समुद्रतट से 19 किलीमीटर की दूरी पर स्थित एक जहाज के साथ रेडियो संपर्क स्थापित करने में सफलता मिली। हाल के अनुसंधानों से पता चला है कि मारकोनी ने अपने इन सफल प्रदर्शनों में आचार्य बसु द्वारा विकसित कोहेरेर का उपयोग किया था।

सन् 1899 में मारकोनी 97 किलोमीटर दूर के जहाज तक बेतार संदेश भेजने में सफल हुए। 12 दिसंबर, 1901 मारकोनी के जीवन में चिरस्मरणीय दिन साबित हुआ। उस दिन अटलांटिक महासागर के आरपार पहली बार 'बेतार के तार' से समाचार भेजने में सफलता मिली। उस दिन तीन छोटे डॉटों (...) वाला संदेश, जो मोर्स कोड में ए का द्योतक है, महासागर को पार करके आया। इस सफलता के बाद जहाजों और समुद्रतटों के साथ 'बेतार के तार' का सम्पर्क स्थापित करने के लिए मारकोनी ने अपनी एक वायरलेस संचार कंपनी स्थापित की। सन् 1909 में मारकोनी को भौतिकी का नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया। आरंभ में समुद्र में स्थित जहाजों के साथ संपर्क स्थापित करने के लिए संदेश मोर्स कोड में भेजे जाते थे। सन् 1912 की बात है। टाइटेनिक नामक शानदार यात्री जहाज अटलांटिक महासागर को पार कर रहा था। यह उसकी पहली यात्रा थी और उस पर 1500 यात्री सवार थे। जहाज एक हिमशैल से टकराकर डूब गया। अधिकांश यात्रियों को जहाज के साथ ही जलसमाधि मिली। एक अन्य जहाज को बेतार का संदेश मिला, तो चंद यात्रियों को बचाना संभव हुआ। तब से प्रत्येक जहाज पर बेतार की संचार प्रणाली की स्थापना को अनिवार्य बना दिया गया। सन् 1906 में विशिष्ट प्रकार की रेडियो तरंगों से पहली बार शब्दों को प्रसारित करके उन्हें ग्रहण करना संभव हुआ। रेडियो प्रसारण का युग शुरू हो गया। प्रथम महायुद्ध (1914-1918) के दौरान इस क्षेत्र में काफी खोजबीन हुई। मगर जनता के लिए रेडियो प्रसारण महायुद्ध के बाद ही संभव हुआ। भारत में व्यावसायिक रेडियो प्रसारण की शुरुआत 1926 ई. में हुई। सन् 1931 में ऑल इंडिया रेडियो (जिसे अब 'आकाशवाणी' कहा जाता है) की स्थापना हुई।

वर्तमान सदी के आरंभ में इलेक्ट्रॉनिकी नामक एक नए विज्ञान का विकास शुरू हुआ। इलेक्ट्रॉनिकी के साधनों से रेडियो प्रसारण को बेहतर बनाना और रेडियो सेटों को लघु आकार प्रदान करना संभव हुआ। मगर इलेक्ट्रॉनिकी की सबसे महत्वपूर्ण देन है टेलीविजन। जैसा कि आज सभी जानते हैं, टेलीविजन एक ऐसा संचार साधन है जिसके जरिए चलचित्रों को दूर-दूर तक प्रेषित करके वहां उन्हें ग्रहण किया जाता है। टेलीविजन उपकरणों के विकास में अमेरिका और यूरोप के कई वैज्ञानिकों का योगदान रहा है। परन्तु टेलीविजन चित्र को प्रसारित करने में पहली बार सफलता मिली इंग्लैंड के जॉन लागी बेयर्ड (1888-1943) को। घटना 2 अक्तूबर, 1925 की है। लंदन के जिस मकान में वेयर्ड की प्रयोगशाला थी उसके निचले तल्ले में एक फर्म का ऑफिस था। वेयर्ड ने वहां काम करने वाले एक बच्चे को ऊपर बुलाया। उसे उन्होंने अपने टेलीविजन उपकरण के सामने खड़ा कर दिया। वेयर्ड उस दिन उस बच्चे के चित्र को बगल के कमरे तक प्रेषित कर देने में सफल हुए।

वेयर्ड के उस प्रथम प्रदर्शन के बाद टेलीविजन उपकरणों का बड़ी तेजी से विकास हुआ। जोरीकिन ने सन् 1928 में एक नए किस्म का टेलीविजन कैमरा (आइकोनोस्कोप) बनाया। पहले नियमित टेलीविजन प्रोग्राम का प्रसारण लंदन के अलेक्जेंड्रा पैलेस से 2 नवंबर, 1936 को हुआ। मगर टेलीविजन का तेजी से प्रचार.प्रसार दूसरे महायुद्ध की समाप्ति के बाद ही हो सका। रंगीन टेलीविजन की शुरुआत वर्तमान सदी के छठे दशक में हुई। आज टेलीविजन प्रसारण की जो स्थिति है उसे सभी जानते हैं। संचार उपग्रहों ने टेलीविजन को दुनिया के कोने-कोने तक पहुंचा दिया है। टेलीविजन आज संचार का सबसे शक्तिशाली साधन बन गया है।

संसार का पहला कृत्रिम उपग्रह पृथ्वी की कक्षा में सन् 1957 में स्थापित किया गया था। उसके कुछ समय बाद अमेरिका और सोवियत रूस ने अपने संचार उपग्रहों को कक्षाओं में स्थापित करना आरंभ कर दिया। अधिक ऊंची कक्षा में स्थापित उपग्रह धरातल के अधिक क्षेत्र के साथ संचार संबंध स्थापित कर सकता है। यदि उपग्रह को भूमध्यरेखा के करीब 36,000 किलोमीटर ऊपर की वृत्ताकार कक्षा में स्थापित किया जाए, तो वह 24 घंटों में पृथ्वी का एक चक्कर लगाता रहेगा। पृथ्वी भी इतने ही समय में अपनी धुरी पर एक चक्कर लगााती है । इसलिए ऐसा उपग्रह पृथ्वी के एक स्थान से आकाश

बेल के टेलीफोन का ट्रांसमीटर (बाएं) और रिसीवर (दाएं) (सन 1877)

में हमेशा स्थिर दिखाई देगा। छत्तीस हजार किलोमीटर ऊपर की कक्षा को भूस्थिर या समकालिक कक्षा का नाम दिया गया है। भूस्थिर कक्षा में स्थापित उपग्रह 36,000 किलोमीटर ऊंचे एक माइक्रोवेव टॉवर का काम करता है। उतनी ऊंचाई से समूचे धरातल के लगभग एक तिहाई भाग के साथ संचार संबंध स्थापित किया जा सकता है। भूस्थिर कक्षा में समान अंतर पर तीन उपग्रह स्थापित कर दिए जाएं, तो लगभग समूचे भूमंडल को संचार संबंधों में जोड़ा जा सकता है।

संसार के कई देशों ने अपने संचार उपग्रह भूस्थिर कक्षा में स्थापित किए है। भारत के एप्पल नामक पहले संचार उपग्रह को सन् 1981 में भूस्थिर कक्षा में स्थापित किया गया था। उसके बाद इन्सैट शृंखला के कई भारतीय उपग्रह 36,000 किलोमीटर ऊपर की भूस्थिर कक्षा में स्थापित किए गए। हमारे इन्सैट उपग्रह रेडियो व टेलीविजन कार्यक्रम प्रसारित करते हैं, कई हजार दुतरफा टेलीविजन संबंध स्थापित करते हैं और मौसम की भी जानकारी देते हैं। टेलीविजन की तरह कम्प्यूटर का विकास भी प्रमुखतः दूसरे महायुद्ध के बाद हुआ। कम्प्यूटर केवल गणना और नियंत्रण का ही नहीं, संचार का भी एक शक्तिशाली साधन है। वे दिन लद चुके हैं जब कम्प्यूटर को वातानुकूलित कक्ष में स्थापित एकाकी मूक मशीन समझा जाता था। कम्प्यूटर अब दूर-दूर के अपने कम्प्यूटर साथियों से 'बातचीत' कर सकता है, उनके साथ संचार संबंध स्थापित कर सकता है। विभिन्न प्रकार की जाल व्यवस्थाओं (नेटवर्कों) के जरिए कम्प्यूटरों को एक-दूसरे के साथ जोड़ा जाता है। कारोबारी संबंधों, विमान, रेल व होटल आरक्षण बैंकों में निधियों का स्थानांतरण आदि के लिए कम्प्यूटर संचार जाल की व्यवस्थाएं अस्तित्व में आ गई हैं। अब कम्प्यूटर जाल व्यवस्था के जरिए एक शहर की डाक दूसरे शहर भेजी जा सकती है (ई-मेल) कम्प्यूटर नेटवर्क के जरिए अब कई सारे समाचार पत्र और मासिक पत्र-पत्रिकाएं दूर दूर तक कम्प्यूटरों पर उपलब्ध होने लगे हैं। भारत में अब इंटरनेट, निकनेट नामक कई तरह के कम्प्यूटर नेटवर्क स्थापित हो गए हैं।

संसार के कई देशों ने अपने संचार उपग्रह भूस्थिर कक्षा में स्थापित किए है। भारत के एप्पल नामक पहले संचार उपग्रह को सन् 1981 में भूस्थिर कक्षा में स्थापित किया गया था। उसके बाद इन्सैट श्रृंखला के कई भारतीय उपग्रह 36ए000 किलोमीटर ऊपर की भूस्थिर कक्षा में स्थापित किए गए। हमारे इन्सैट उपग्रह रेडियो व टेलीविजन कार्यक्रम प्रसारित करते हैं, कई हजार दुतरफा टेलीविजन संबंध स्थापित करते हैं और मौसम की भी जानकारी देते हैं। टेलीविजन की तरह कम्प्यूटर का विकास भी प्रमुखतः दूसरे महायुद्ध के बाद हुआ। कम्प्यूटर केवल गणना और नियंत्रण का ही नहीं, संचार का भी एक शक्तिशाली साधन है। वे दिन लद चुके हैं जब कम्प्यूटर को वातानुकूलित कक्ष में स्थापित एकाकी मूक मशीन समझा जाता था। कम्प्यूटर अब दूर-दूर के अपने कम्प्यूटर साथियों से 'बातचीत' कर सकता है, उनके साथ संचार संबंध स्थापित कर सकता है।

संसार भर के हजारों नेटवर्कों को एक दूसरे के साथ जोड़ने वाला इंटरनेट नाम का एक विश्वव्यापी नेटवर्क भी अस्तित्व में आ गया है। इंटरनेट ने सारे संसार को संचार संबंधों के महाजाल में बांध दिया है। फिलहाल मोबाइल टेलीफोन की व्यवस्था बड़े शहरों तक ही सीमित है। परन्तु अब वह दिन अधिक दूर नहीं है जब आप अपने व्यक्तिगत मोबाइल टेलीफोन से संसार के किसी भी अन्य स्थान के टेलीफोन से संपर्क स्थापित कर सकेंगे। इसके लिए ग्लोबलस्टार और इरिडियम जैरी कुछ कंपनियां पृथ्वी की निचली कक्षाओं में एक साथ कई दर्जन संचार उपग्रह स्थापित कर रही हैं। यह विश्वव्यापी मोबाइल व्यक्तिगत संचार सेवा इसी साल के सितंबर महीने से शुरू हो जाएगी। इस सेवा के जरिए कोई भी व्यक्ति धरातल के किसी भी स्थान से किसी भी अन्य स्थान के साथ अपने निजी मोबाइल टेलीफोन से संबंध स्थापित करने में समर्थ होगा। ग्राहक किसी भी स्थान पर हो, उसका टेलीफोन नंबर एक ही रहेगा।

निकट भविष्य में कम्प्यूटर नेटवर्क पर आधारित अनेक नई संचार व्यवस्थाएं अस्तित्व में आने जा रही हैं। कम्प्यूटर नेटवर्क की व्यवस्थाएं देश व काल के अंतरालों को समाप्त करके सूचनाओं का अधिक मात्रा में और अधिक तेजी से आदान-प्रदान करने में योगदान करेंगी। मनुष्यों को एक दूसरे के साथ अधिक गहराई से जोड़ेंगी और हमारी आज की कार्य प्रणालियों में अमूल परिवर्तन करेंगी। इन नई शक्तिशाली संचार प्रणालियों के व्यापक समाजिक प्रभावों को, इनके कई सारे खतरों को भी, झेलने के लिए हमें, विशेषकर नई पीढ़ी को, सजग और सचेत रहना होगा।

पिछले पांच दशकों के दौरान संचार साधनों के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन होने के बावजूद संचार की कुछ पुरानी व्यवस्थाएं आज भी प्रचलित हैं। उदाहरण के लिए, संचार के लिए कबूतरों के उपयोग को लीजिए। पुरानी जमाने में समाचार भेजने के लिए कबूतरों का काफी उपयोग होता रहा है, और कुछ हद तक आज भी होता है। जैसे, उड़ीसा की पुलिस ने सन् 1946 में कबूतर सेवा की स्थापना की थी। वे इन कबूतरों का उपयोग दूर दराज के क्षेत्रों से सूचनाएं प्राप्त करने के लिए करते थे। इसी साल सम्पन्न हुए लोकसभा के चुनाव के दौरान भी उड़ीसा की पुलिस ने दूर दराज के क्षेत्रों से कानून व सुरक्षा संबंधी सूचनाएं त्वरित प्राप्त करने के लिए अपने 29 कबूतरों का उपयोग किया। आज एक साथ नए और पुराने संचार साधनों के उपयोग का यह एक अनोखा संगम है

मारकोनी आपने बेतार के तार उपकरण के साथ

❑❑❑

वर्ल्ड वाईड वेब का कमाल

दूरियाँ हुई दूर

प्रो.यश पाल

प्रोफेसर यश पाल देश में विज्ञान और वैज्ञानिक दृष्टि के प्रचार-प्रसार के प्रबल समर्थक थे। जन-विज्ञान आंदोलन को उन्होंने लंबे समय तक नेतृत्व प्रदान किया। भोपाल मध्यप्रदेश से उनका गहरा नाता था और प्रदेश की शिक्षा तथा विज्ञान नीतियों को उन्होंने दूर तक प्रभावित किया। यूजीसी के अध्यक्ष एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के निर्माता भी थे। इसरो को भी उनका मार्गदर्शन मिला।

वर्ल्ड वाईड वेब की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि यह अलग-अलग भाषाओं व बोलियों वाले व्यक्तियों को आपसी सम्पर्क की सुविधा प्रदान करता है। वे जानकारियों का आदान-प्रदान कर सकते हैं। वेब में सभी व्यक्तियों को समान दर्जा प्राप्त है कोई भी श्रेष्ठ या सर्वोत्तम नहीं है। यहाँ सभी को विचार व्यक्त करने की स्वतंत्रता प्राप्त है किसी भी प्रकार का सांस्कृतिक भेदभाव नहीं है वेब स्वयं ही एक सार्वभौम संस्कृति है।

हालांकि संभवतः हम अभी ऐसी स्थिति तक नहीं पहुँच पाये हैं जहाँ कि ऊपर लिखी समस्त बातें सत्य हों लेकिन उपरोक्त स्थिति तक बहुत जल्दी ही पहुँचने की संभावना है। आज जिस व्यक्ति का हम सम्मान कर रहे हैं उसने तकनीकी आविष्कार से कहीं बहुत बड़ा काम किया है। उसके आविष्कार ने एक बहुत बड़ी सामाजिक क्रांति को जन्म दिया है। लोग अक्सर उसके इस योगदान को भूल जाते हैं। जिन लोगों ने Weaving the Web किताब नहीं पढ़ी है उन्हें अतिशीघ्र इस पुस्तक को पढ़ डालना चाहिये। मेरी राय में समाज शास्त्र राजनीति शास्त्र तथा मानविकी विषय के छात्रों के लिये इस पुस्तक को पढ़ना अनिवार्य होना चाहिये।

इस व्यक्ति की उपलब्धियों को भली प्रकार न तो वैज्ञानिक ही समझ पाये हैं न ही बिजनेसमेन। आज मैं ''टिम'' की उपलब्धियों व योगदान के पीछे कार्यरत शक्ति के संबंध में कुछ कहूँगा। मैंने अपनी जिन्दगी तथा विज्ञान एवं तकनीक के अनुभवों से यह सीखा है कि ज्ञान को सामाजिक विकास के लिये उपयोगी होना आवश्यक है। मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि जिन्दगी में हम बहुत दूर तक नहीं चल पायेंगे यदि हम भेदभाव रहित समानान्तर सामाजिक नेटवर्क की विश्वव्यापी स्थापना नहीं कर पायेंगे।

लगभग पच्चीस वर्ष पूर्व जब मैं पार्टिकल फिजिक्स तथा हाई एनर्जी एस्ट्रोनॉमी के क्षेत्र में CERN में कार्य कर रहा था उसी समय टिम भी वहाँ पर वेब के महत्वपूर्ण अंगों के बारे में सोचने तथा उन्हें अमली जामा पहनाने में व्यस्त थे। भारत जैसे देश में जहाँ कि आधारभूत सुविधाओं का अभाव है वहाँ दूर-दराज के क्षेत्रों में रहने वाले लोगों से सम्पर्क स्थापित करने व जानकारियाँ पहुँचाने में अंतरिक्ष विज्ञान की खोजों व प्रसारण व्यवस्था से मैं पहले से ही अभिभूत रहा हूँ। मुझे लगता है कि वेब तकनीक हमारे जैसे देशों को ध्यान में रखते हुए ही विकसित की गई और इसी बात ने अहमदाबाद में स्थापित हो रहे स्पेस एप्लीकेशन सेंटर जो कि उपग्रह संचार को उपयोग करते हुए पहला बड़ा सामाजिक तकनीकी प्रयोग था से जुड़ने के लिये मुझे प्रेरित किया। इसका उद्देश्य भारत के दूर-दराज के हजारों गाँवों में सीधे टी.वी. प्रसारण के द्वारा पहुँचना था। यह कुछ उस समय की बात है जबकि हमारे देश में दूरदर्शन का प्रसारण मात्र कुछ ही घंटों के लिये मुम्बई व दिल्ली तक सीमित था।

इस प्रयोग के पीछे तकनीकविदों सामाजिक विज्ञानियों संचार विशेषज्ञों की हजारों मानव वर्ष की मेहनत तथा नासा का उपग्रह ATS-6 शामिल थे। हालाँकि इस प्रयोग से भारत में कोई क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं आया लेकिन यह इससे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े अनेक लोगों की जीवन शैली में परिवर्तन लाने में सफल रहा है। इस प्रयोग के दौरान भारत भर में फैले हजारों गांवों से सम्पर्क के

जरिये हमने बहुत सारी बातें जानीं। दूरी की बाधा से निजात पाना जहाँ इसकी एक प्रमुख उपलब्धि थी वहीं विविधताओं से परिपूर्ण इस देश में समस्याओं से निजात पाना तथा समस्त व्यक्तियों तक अपनी आवाज़ पहुँचाना या उनकी आवाज़ बन पाना एक चुनौती थी। अंतरिक्ष संचार आधुनिक युग की एक महत्वपूर्ण देन है तथा इसका उपयोग व्याख्यान देने, सिद्धांतों का प्रदर्शन करने व विज्ञापनों के क्षेत्र में प्रभावी रूप से किया जा सकता है। इसका उपयोग कर बहुत सारी जानकारी जन सामान्य तक पहुँचाई जा सकती है लेकिन सही प्रकार की शैक्षणिक व विकासात्मक गतिविधियों को इसके द्वारा संचालित करने के लिये एक बेहतर संवाद व्यवस्था व भागीदारी की जरूरत होती है। दूसरी तरफ यह भी सच है कि लोगों को संचार माध्यमों द्वारा आपस में न जोड़ने पर उनके पिछड़ने व विश्व की मुख्य धारा से अलग-थलग पड़ जाने की संभावना है। जरूरत इन्हीं जटिल समस्याओं के हल ढूंढने की है।

मैं एक बात से पूरी तरह सहमत हूँ कि एक छोटे समूह में मनुष्यों के मेल-जोल से उनके व्यक्तित्व के अनेक बेहतर पक्ष उभर कर आते हैं। क्रिस्टल व रत्नों का विकास भी स्थानीय कम क्षमतावान बलों की गतिविधियों द्वारा ही होता है। यही बात प्राकृतिक रूप से उपलब्ध तत्वों व अणुओं के संदर्भ में भी लागू होती है। सब बातों को छोड़िये और जीवन के लघुतम अणु DNA की स्थिति के बारे में थोड़ा सोचिये। भाषा, मनोरंजन, संगीत, प्लास्टिक निर्मित सुंदर कला भवन शैली यहाँ तक कि विज्ञान भी आज वहाँ नहीं पहुँच सकता था यदि लोगों ने आपस में बैठकर उसके बारे में बातचीत न की होती। ऐसा नहीं है कि यह बात सिर्फ प्राचीन काल के लिये ही लागू होती है। आज जिन शैक्षणिक केन्द्रों को महान कहा जाता है वे सिर्फ इसलिये महान बने हैं क्योंकि मनुष्यों ने उनके बारे में चर्चा की है। कोलंबिया MIT हार्वड आदि इसके उदाहरण हैं और लोग इनमें आना चाहते हैं। हालांकि आज इन संस्थानों के विशेषज्ञों द्वारा लिखित पुस्तकें व पेपर छपे रूप में या इंटरनेट पर व पुस्तकालयों में उपलब्ध हैं और इनकी प्रसिद्धि में अपना योगदान दे रहे हैं लेकिन मनुष्यों द्वारा आपस में की गई प्रशंसा इनकी प्रसिद्धि का आज भी सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक है। मेरे देश में सदियों से यह माना जाता रहा है कि किताबों व

व्याख्यान दे देने मात्र से ज्ञान वांछित व्यक्ति तक नहीं पहुँच सकता है। इसके लिये शिक्षक व छात्र के मध्य पारस्परिक संबंध व तालमेल होना आवश्यक है। हमारे यहाँ यह परम्परा प्राचीनकाल से ही ''गुरु-शिष्य परंपरा'' के नाम से चली आ रही है।

टिम की तरह ही मैं भी इस बात को मानता हूँ कि प्रतिभाशाली मनुष्य पूरे विश्व में हर क्षेत्र में मौजूद हैं। लेकिन यह भी सत्य है कि नये ज्ञान व नयी चीजों के निर्माण में बहुत बड़ी संख्या में व्यक्तियों की सहभागिता संभव नहीं है। इसीलिये आज हम ऐसे विश्व में निवास करते हैं जहाँ कुछ लोग नई दिशा में कार्य करते हैं और शेष व्यक्ति उसी दिशा में चलते हैं। कुछ व्यक्ति ऐसे भी हैं जो यह मानते हैं कि उन्हें अपनी सोच के आधार पर विश्व में सृजन का अधिकार प्राप्त है। यह स्थिति पूरे विश्व में विद्यमान है। चाहे वह देशों के मध्य हो उत्तर व दक्षिण के बीच हो यहाँ तक कि यही सोच विभिन्न जाति धर्म रंग महिला पुरुषों तथा देशों के शहरों में मौजूद है।

मैंने अपनी पुस्तक में भी जिक्र किया है साथ ही मेरा यह भी मानना है कि वेब की मूल भावना ऐसी होना चाहिये जिससे कि विश्व इस सीमित सोच से मुक्त हो सके। यदि वेब ऐसा हो सका तो पूरे विश्व का भला होगा। ऐसा करके हम नयी दिशाओं में विभिन्न प्रकार के अनुसंधान व खोज को बढ़ावा देंगे साथ ही भिन्न-भिन्न वातावरण में उपलब्ध ज्ञान की गहराई को समझ पायेंगे तथा उनका लाभ उठा सकेंगे। इसके साथ ही पूरे विश्व में एक वैचारिक परिवर्तन भी आयेगा जिससे कि सद्भावना समानता से परिपूर्ण एक सार्वभौम विश्व का निर्माण होगा जैसा कि हम चाहते हैं। मैं वर्तमान में अपने इस विचार को विस्तार दे रहा हूँ।

अब मैं थोड़ा पीछे चलता हूँ। मेरा ऐसा मानना है और शायद आप भी इस बात से सहमत होंगे कि एक सीमित दायरे में सीमित व्यक्तियों से सम्पर्क या निकटता बनाना मनुष्य के नैसर्गिक स्वभाव का एक हिस्सा है। मैं एक बार फिर से अपनी बात दोहराना चाहूँगा कि आपसी सम्पर्क या निकटता ही मानवता के गुणों का विकास करती है। बिना आपसी सम्पर्क के हमारे बीच कोई प्यार नहीं होगा कोई कला नहीं होगी बधाईयाँ देने के मौके नहीं होंगे कोई त्यौहार नहीं होंगे समारोह नहीं होंगे तात्पर्य यह कि संभवतः कुछ नहीं होगा।

विशिष्ट सामाजिक वातावरण के अंतर्गत प्रचलित पौराणिक कथाओं कल्पित कहानियों तथा सामाजिक उत्थान के परिणाम स्वरूप व्यक्तियों के मध्य आपसी सम्पर्क व निकटता में वृद्धि हुई है। इस परम्परा को हमें बनाये रखना है। हमें अपने निकटस्थ व्यक्तियों की देखभाल करने के लिये ही बनाया गया है। हम अपने लोगों के बीच अपने आपको अधिक सुरक्षित महसूस करते हैं। यही तत्व हमें परिभाषित करता है तथा सामाजिक रूप से ''हम'' की सीमा रेखा तय करता है। इसी ''हम'' के द्वारा हम अपने राष्ट्र धर्म भाषा परम्परा जैसे शब्दों को परिभाषित कर पाते हैं। मानव समाज के लिये कुछ कर गुजरने व उनकी बेहतरी की तमन्ना ने ही महान व्यक्तियों राष्ट्रभक्तों राष्ट्र नेताओं विजेताओं अत्याचारियों तानाशाहों व आजकल के आतंकवादियों को जन्म दिया है। वर्तमान में हम अनेकों बंधनों में बंधे हुए हैं और हमें अपनी तरक्की के नये रास्तों को इस सदी में खोजना है। मैं बहुत ही छोटी समय सीमा में एक अलग प्रकार का क्रांतिकारी कार्य सम्पन्न करना चाहता हूँ वो इसलिये क्योंकि समस्याएं बढ़ गई हैं और इनके निदान के लिये गहमा-गहमी भी जारी है। जबकि कुछ समय पहले तक ऐसी स्थिति नहीं थी।

मारकोनी जन्मशती के समय मारकोनी फाउन्डेशन द्वारा मारकोनी फैलो हेतु एक सेमीनार का आयोजन किया गया था। उस समय भी मैंने मॉरकोनी के सपनों जो कि रेडियो के जन्म के 100 वर्षों बाद भी पूरे नहीं हो पाये हैं के बारे में दुख प्रकट किया था। मैंने उस समय भी जिक्र किया था कि पिछले 100 वर्षों में हमने युद्ध व गृह युद्धों में लगभग बुद्ध व ईसा मसीह के समय विश्व की जनसंख्या के बराबर मनुष्यों को परलोक पहुँचा दिया है। मेरे कई मित्रों को मेरे अनुमान के बारे में अविश्वास होता है कि

इतने कम लोग हिंसा में मारे गये हैं।

अंतरिक्ष युग के आगमन के उपरांत भी जैसी मुझे व मेरे जैसे लोगों को उम्मीद व आशा थी वैसा सहिष्णु एक दूसरे के लिये आदर व प्यार से परिपूर्ण ब्रह्मांड कहीं नज़र नहीं आता है। फ्रेड हॉयल रविन्द्र नाथ टैगोर टिस्लोक्वास्की तथा अनेक अन्य व्यक्तियों ने इस बात को कहा है कि मनुष्य ने अब बाह्य अंतरिक्ष से हमारी इस खूबसूरत दुनिया को देख लिया है तथा उन्होंने हमारी एकाकी मिलनसारिता को भी देख लिया है। भविष्य में कुछ नयापन आ सकता है समाज में खुलेपन का विचार आ सकता है। एक दूसरे पर निर्भरता का स्थान स्वयंसिद्धि ले सकती है तथा मनुष्य केवल अपने घर तक केन्द्रित हो सकता है। संचार व्यवस्था के फैलाव के कारण समाज में कुछ ऐसा ही प्रभाव आने की संभावना है।

लेकिन हो बिल्कुल ही उल्टा रहा है। जिस गति से संचार के साधनों का विकास हो रहा है उसी गति से वर्ग संघर्ष व धार्मिक उन्माद विश्व में बढ़ता ही जा रहा है। हम ये जानते हैं कि अस्थाई प्रकार के अद्‌भुत विचार हमें हमारी मूल जैविक उत्तेजना जिसने कि ''हमें'' दूसरों से अलग पहचान रखने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है से दूर नहीं ले जा पाते हैं। अनेक उत्तेजनाएं मानव द्वारा अपनी पहचान को अलग दिखाने की चाहत के कारण जन्मती हैं उनके पीछे गहरी सोच का अभाव होता है। जैसे कि किसी भी वस्तु के पैकेट पर अंकित नाम व पैकेट का रंग ही हमें बाहर से दिखाई देता है अंदर की वस्तु को बाहर से हम देख नहीं पाते हैं। इन्हीं बाहरी दिखावों और आडम्बरों ने मनुष्य को नई राह दिखाने वाले व्यक्तियों का दुश्मन बना दिया है। कोला, टूथपेस्ट तथा अन्य उत्पादों के विभिन्न ब्रांडों को बेचने के लिये जिन तकनीकों का उपयोग किया जाता है वे उत्पाद विशेष के लिये कुछ राष्ट्रभक्त प्रकार के व कुछ आतंकवादी प्रकार के व्यक्ति निर्मित कर देती है। कभी-कभी सर्वाधिक सामाजिक प्राणी मनुष्य भी मानवता का दृष्टिकोण छोड़ अति घृणित कार्यों में संलग्न हो जाता है। मैं इस प्रकार के पूरे विश्व के कितने ही उदाहरण गिना सकता हूँ मेरा देश भी इससे अछूता नहीं है।

एक और निराशाजनक तथ्य है। पिछले सौ वर्षों में विश्व के बारे में हमारी समझ में काफी इजाफा हुआ है तथा हमने बहुत कुछ जाना व समझा है। यह एक चमत्कार की तरह लगता है। मानसिक प्रसन्नता व बौद्धिक आनंद ने हमारे अंदर यह अहसास भर दिया है कि हम मानव इतिहास के एक महत्वपूर्ण दौर के साक्षी हैं। वर्तमान में पूरा विश्व ग्रह, तारे, नक्षत्र, सूर्य या कहें तो पूरे ब्रह्मांड के रहस्यों को लगभग खोजा जा चुका है। हम जीवन की अद्‌भुत घटनाओं को तथा उस भाषा को पूरी तरह समझ गये हैं जिसमें कि इन विविधताओं व गाथाओं को लिखा गया है। प्रौद्योगिकी की हर छलाँग हमारे रहन-सहन, संवाद व जीवन पद्धति को परिवर्तित कर देती है। अनगिनत करिश्मे हो चुके हैं तथा वे आगे भी होते रहेंगे। हम ऐसे समाज के निर्माण में लगे हैं जो कि कौशल से परिपूर्ण हों तथा जिसमें कार्य करने की गति प्रकाश की गति के समान हो। लेकिन हमारी मनःस्थिति आज भी पहले जैसी ही है। हम आज भी बचपन में सिखाये गये ''स्वयं'' व ''दूसरे'' के सिद्धांत से नियंत्रित होते हैं। हमारा मस्तिष्क चार बिलियन वर्षों के विभिन्न दौरों घटनाओं व अवस्थाओं से गुजर कर परिष्कृत हो वर्तमान अवस्था में आया है।

हालांकि यदि हम अपने इतिहास को गौर से देखें तो हमें अपने वर्ग, क्षेत्र व धर्म के आधार पर किये गये मूर्खतापूर्ण कृत्यों का अहसास भी होता है। जबकि मेरा यह मानना है कि हजारों वर्ष पूर्व जब विभिन्न धर्मों का उदय हुआ था तब इस प्रकार के अज्ञानता भरे कृत्यों के लिये कोई स्थान नहीं था। आज पुराने सिद्धांतवादी तत्व हमारे बचपन से दूर हो गये हैं। हमारे मानवीय मूल्यों में बेहतरी लाने व आपसी समझ बढ़ाने के लिये इस परिस्थिति को बदलने की आवश्यकता है तभी हम पुराने मंदिर व मस्जिदों के फेर में पड़कर एक दूसरे के खून के प्यासे होना बंद करेंगे।

आधुनिक समय के विचारणीय विषय

अब मैं इस अंतहीन बहस के मुद्दे से हटकर अपने मूल प्रश्न अर्थात्‌ एक सार्वभौम विषय की संरचना की आवश्यकता पर आता हूँ। मैं इसकी आवश्यकता सिद्ध करने पर अधिक समय लगाना नहीं चाहता। वर्तमान सभ्यता का इसके बिना भविष्य ही नहीं है। समाज में आ रहे वैचारिक परिवर्तन के इस दौर में इस प्रकार की एक व्यापक संरचना अति आवश्यक है। हो सकता है कि हमारी वर्तमान स्थिति को और बेहतर बनाने के लिये कुछ नये आविष्कार भी हमें करने पड़ें। मैं यह भी मानता हूँ कि विश्व के समस्त मनुष्य बराबरी से पूर्णता को प्राप्त कर लें यह संभव नहीं है। सार्वभौमिकता का पूर्णता या बराबरी से सीधा संबंध नहीं है। न ही इसमें किसी प्रकार का धर्मार्थ सम्मिलित है। यहाँ खुद के हितों को भली प्रकार समझना व विकास की इच्छाशक्ति सर्वोपरि है। इसके संबंध में मेरा सूत्र मैं कुछ इस प्रकार से दुनिया के सम्मुख प्रस्तुत करता हूँ।

No individual, no human collectivity, no country, no professional, no corporation, indeed no one shall be only or be made into only a consumer

भारत के स्वतंत्रता आंदोलन को करीब से देखने के कारण मैंने इससे बहुत कुछ सीखा है। हमारे सबसे बड़े नेता थे मोहनदास करमचंद गाँधी। वे पूरे देश की नब्ज पहचानते थे। पूरा देश उनके दिखाए मार्ग पर चलता था। वे आज के दौर की तरह के राजनैतिक नेता नहीं थे। हालांकि बहुत सारे नौजवान उनकी अनेक बातों से सहमत नहीं थे लेकिन वे भी इस बात को स्वीकारते हैं कि महात्मा गाँधी देश के लिये सिर्फ स्वतंत्रता नहीं चाहते थे वरन वे जन्मभूमि से प्यार करने वाले व्यक्तियों के लिये आजादी चाहते थे। इसी के साथ-साथ वे हम पर शासन कर रहे व्यक्तियों की उन्नति के भी समर्थक थे। वे एक धार्मिक व्यक्ति थे लेकिन उन्होंने जो भी कार्य किये वे किसी धार्मिक नेता की तरह नहीं किये। जब कभी भी उन्होंने धर्म की बात की सिर्फ एक धर्म की बात नहीं की। उन्होंने हर प्रकार के विचारों को ग्रहण किया। उनका मूल उद्देश्य देश के लोगों को आजादी दिलाना व एक ऐसे समाज की स्थापना करना था जो कि सार्वभौम विश्व के निर्माण की दिशा में पथ प्रदर्शक का कार्य कर सके। मुझे ऐसा भी लगता है कि उनके इस दृष्टिकोण को उनके बाद के वे नेता नहीं समझ सके जिन्होंने कि भारत पर शासन किया। ऐसा शायद इसलिये हुआ होगा

कि इतिहास के उस दौर में उनकी गहरी किन्तु साधारण सी दिखने वाली बातों के लिये स्थान नहीं था। मैं आज उनका जिक्र यहाँ इसलिये कर रहा हूँ क्योंकि मुझे लगता है कि गाँधी समय से पहले इस धरती पर आ गये थे। आज उनके विचार अवश्य सार्थक होते। टिम तथा आप में से अनेक लोगों ने उनके विचारों को सार्थक किया है। इसी से जुड़े कुछ और तथ्य मैं यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ।

गाँधी जी ने ग्राम स्वराज के संबंध में विचार रखे थे। इसके अंतर्गत दूर से किसी भी प्रकार के नियंत्रण से मुक्त व्यवस्था का निर्माण करना था। यहाँ विचारों और कार्य की स्वतंत्रता की व्यवस्था की गई थी। आप अपना रास्ता स्वयं चुनकर आगे बढ़ सकते थे इस पर किसी प्रकार का दूरस्थ नियंत्रण नहीं था। उनके विचार में नैतिक रूप से व्यक्ति को सिर्फ उपभोक्ता नहीं होना चाहिये। वे अधिकाधिक व्यक्तियों के द्वारा उत्पादन के पक्षधर थे न कि बड़ी मशीनों द्वारा अधिक उत्पादन के। जहाँ तक ज्ञान का प्रश्न है वे इस बात को मानते थे कि आसपास के वातावरण के साथ साक्षात्कार व सामाजिक आवश्यकताओं को समझ कर उनकी निर्माण प्रक्रिया में सम्मिलित हो बहुत कुछ सीखा जा सकता है। इस प्रकार की शिक्षा को जब किताबी ज्ञान का सहारा मिल जाता है तब वह व्यक्ति विद्वानों की श्रेणी में आ जाता है। आज भी यदि ऐसी शिक्षा पद्धति को अपनाया जाता है तो उत्तम होगा। उन्हें पिछली पीढ़ी का पहला पर्यावरणवादी माना जा सकता है। उन्होंने कहा था कि इस धरती पर प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकता के लिये पर्याप्त संसाधन हैं लेकिन प्रत्येक व्यक्ति की लोलुपता पूर्ण करने के लिये यह नहीं है। यह भी सत्य है कि हम महात्मा गाँधी के प्रत्येक विचार को शब्दशः नहीं ले सकते हैं लेकिन उनके बताए रास्तों पर चलने के अलावा कोई चारा भी नहीं है। यह भी सत्य है कि दूर से किये जाने वाले नियंत्रण से वास्तविक आजादी छिन सी जाती है। जब तक समाज में व्यक्ति वस्तुओं व सेवाओं के बदले दूसरों से कुछ वस्तु व सेवा प्राप्त न करें तो वे एक प्रकार के आर्थिक व सांस्कृतिक प्रदूषण व शोषण के शिकार हो जाते हैं। बहुत सारा ज्ञान मौखिक रूप से व उंगलियों के जरिये पुराने समय में हम प्राप्त करते थे और आज भी कर रहे हैं। उनके समस्त विचार अहिंसा से ओतप्रोत थे। गाँधी जी

के समय उपलब्ध तकनीकी आकार में बहुत विशालकाय थी उन्हें आसानी से विकेन्द्रीकत करना सम्भव नहीं था। जबकि वर्तमान समय में ऐसा नहीं है। आज सॉफ्टवेयर व हार्डवेयर दोनों के ही उत्पादन को आसानी से विकेन्द्रीकृत किया जा सकता है। सूचना आसानी से प्राप्त की जा सकती हैं तथा प्रयुक्त की जा सकती हैं। आज आपको सूचना के आदान-प्रदान हेतु उस स्थान तक जाने की जरूरत नहीं है। आप जैसे चाहें वैसे रह सकते हैं और सारी दुनिया से सम्पर्क में भी रह सकते हैं। आप आवश्यकतानुसार अपनी गति तथा आपसे सम्पर्क रखने वालों की गति बदल सकते हैं। गाँधी जी का नारा ''अधिकाधिक व्यक्तियों द्वारा उत्पादन न कि मशीनों द्वारा अधिक उत्पादन'' आज फलीभूत हो सकता है। यदि विश्व को एक ''जेहाद'' चाहिये तब यहाँ लोगों को यह समझना होगा कि यही एक मात्र तरीका है जो लोगों को एक रख सकता है उनकी विभिन्नताओं को बचाकर रख सकता है तथा व्यक्तियों को पूर्णता व आनंद की ओर ले जा सकता है। इन सबके लिये एक सर्वोत्तम तकनीक की आवश्यकता होगी। लोग अब सिर्फ मेंढ़क के समान अपने कुएं में नहीं रहना चाहते हैं। वे आपस में एक व्यवस्था के तहत शेष विश्व से जुड़े रहना चाहते हैं। इसके लिये नीचे से ऊपर तक एक बड़े प्रयास की

जरूरत है। मुझे नहीं मालूम है कि कौन इस चुनौती को अंगीकार करेगा। हालॉकि गाँधी जी एक शताब्दी पूर्व इस धरती पर आ गये थे लेकिन अब टिम और उनके मित्र इसे सफल बनायेंगे।

अंत में संक्षेप में कहूँ तो आज विश्व के सामने जो प्रमुख चुनौतियाँ हैं वे हैं- जैसे-जैसे विश्व तीव्र गति से वैश्वीकरण (ग्लोबलाइजेशन) की तरफ बढ़ रहा है वैसे-वैसे आत्मीयता का ह्रास होता जा रहा है जो कि मानवता का एक महत्वपूर्ण अंग है। आत्मीयता व संवेदनाओं के कारण ही संगीत कला भाषा मूल्यों संस्कृति व अन्य मनोरंजक प्रवृत्तियों का निर्माण हुआ है।

यदि इनमें से किसी पर कुठाराघात होता है तब वह पूरी मानवता पर कुठाराघात होता है। जिस तरह से हमारी शारीरिक प्रणाली के रक्षक तत्व बीमारी के हमले के समय उससे स्वतः ही मुकाबला करते हैं उसी तरह यदि ऊपर वर्णित तत्वों के साथ छेड़छाड़ होती है तब स्वभाविक रूप से अनेक बार उग्र प्रतिक्रिया होती है। और कभी-कभी यही आतंकवाद को जन्म देता है। मेरा यह भी मानना है कि आधुनिक आतंकवाद का हल सैनिक कार्यवाही से कतई संभव नहीं है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया के समानान्तर इसका भी फैलाव होता गया है जैसे कि मेरे एक मित्र कहते हैं कि विश्व का ''कोला-नाइजेशन'' हो गया है। इससे विश्व में सांस्कृतिक आघात के साथ-साथ आर्थिक परिणाम भी परिलक्षित हुए हैं। गाँधी जी द्वारा इन सभी के बारे में पहले से ही सोच लिया गया था। अब बिना आर्थिक व सांस्कृतिक व्यवस्था को छेड़े हुए एक अलग प्रकार का वैश्वीकरण संभव हो गया है। वैश्वीकरण के अब नये नियम बनाये जा सकते हैं। मनुष्य अब एक साथ अलग-अलग रह सकते हैं। उन पर अपना स्वयं का नियंत्रण होगा तथापि वे पूरे विश्व व ब्रह्मांड के साथ नेटवर्क में जुड़े होंगे। इसके लिये तकनीक व साधन अब उपलब्ध हैं। यही मेरे द्वारा चाही गई एक सार्वभौम विश्व की संकल्पना है। एक बात और तय है वह यह कि इसके लिये वेब को उन क्षेत्रों में भी पहुँचाना होगा जहाँ वह अभी नहीं पहुँचा है। वैसे यदि हम कम्प्यूटर आधारित वेब के साथ-साथ विभिन्नता युक्त मानव वेब निर्मित कर पायें तो वह अधिक श्रेयस्कर होगा।

santoshshukla.bhopal@gmail.com

चिंतन है विकास का रास्ता

ए.पी.जे.अब्दुल कलाम

मित्रो, हमें यह जानना चाहिए कि मानव मस्तिष्क एक अनोखा उपहार है। आप इसमें तभी प्रवेश कर सकते हैं जब आप में जिज्ञासा हो और चिंतन हो। मैं आप सभी को सुझाव देता हूँ कि चिंतन को आपकी पूंजीगत धरोहर बन जाना चाहिए। गैर चिंतन व्यक्ति, संस्थान और देश के लिए विनाश है। चिंतन क्रिया को जन्म देता है। बिना किसी कार्यवाही के ज्ञान व्यर्थ और गैर प्रासंगिक है। कार्यवाही युक्त ज्ञान समृद्धि लेकर आता है।

मैं चाहूँगा कि एक विद्यार्थी के रूप में आपके पास ऐसा मस्तिष्क हो जो मानव जीवन के प्रत्येक पहलू की खोजबीन करे। हम अकेले नहीं हैं। समस्त ब्रह्मांड हमारे लिए मित्रवत है और जो लोग स्वप्न देखते हैं और कार्यवाही करते हैं उन्हें यह सर्वोत्तम देने की चेष्टा करता है। जिस तरह चंद्रशेखर सुब्रमण्यम ने ब्लैक होल की खोज की। आज हम चंद्रशेखर की सीमाओं का उपयोग करके यह गणना कर सकते हैं कि सूरज कब तक चमकेगा।

जिस तरह सर सी.वी.रामन ने सागर की ओर देखा और प्रश्न किया कि सागर का रंग नीला क्यों है? उन्होंने पाया कि सागर का नीला रंग प्रकाश के आण्विक प्रकीर्णन के कारण है, पानी में प्रकाश के परावर्तन के कारण नहीं है जैसा कि अधिकांश लोग कल्पना करते हैं। इससे रामन प्रभाव का जन्म हुआ। जैसा कि अल्बर्ट आइंस्टाइन ने ब्रह्माण्ड की जटिलता से अभिभूत होकर प्रश्न किया कि ब्रह्माण्ड का जन्म कैसे हुआ। इसने प्रसिद्ध समीकरण E=mc2 को जन्म दिया। जब E=mc2 महान आत्माओं के हाथ में हो तब नाभिकीय पदार्थों से बिजली प्राप्त होती है। लेकिन जब यही समीकरण चरमपंथी राजनैतिक विचारकों के हाथ लगा तब हिरोशिमा का विध्वंस हुआ। लाखों करोड़ों व्यक्ति इस ब्रह्माण्ड में विचरण करते हैं। लेकिन पिछली सहस्राब्दि में एक महान आत्मा ने भारतीय की धरती पर अपने कदम रखे और अहिंसा धर्म के इस्तेमाल का मार्ग प्रशस्त किया। फलस्वरूप भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई। सन् 1947 में भारत की स्वतंत्रता एक अकेले विचार का परिणाम थी, भारत को स्वतंत्रता चाहिए। मैं जहां कहीं जाता हूँ स्कूल के विद्यार्थियों से मिलता हूँ। आज तक मैं 5 लाख से भी अधिक विद्यार्थियों से मिल चुका हूँ। हाल ही में मैं हिमाचल प्रदेश में शिमला और उसके आसपास के क्षेत्रों के भ्रमण पर गया था जहाँ मैंने काफी स्कूली और विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के साथ पारस्परिक विचार विमर्श किया। सरकारी उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, चाचियन के दसवीं कक्षा के श्री शम्मी धीमन द्वारा पूछा गया एक प्रश्न था–विज्ञान और प्रौद्योगिकी किस तरह गरीबी को मिटाकर भारत को एक शक्तिशाली राष्ट्र बना सकती है? 1950 के दशक में खाद्य पदार्थों की अत्यधिक कमी थी। हमें भारत को भुखमरी से बचाने के लिए अटलांटिक महासागर को पार कर आने वाले गेंहू से भरे हुए जलयानों पर निर्भर रहना पड़ता है। राजनैतिक नेता श्री सी.सुब्रमण्यम और एक कृषि वैज्ञानिक प्रो. एम.एस.स्वामीनाथन ने 1950 के दशक में एक प्रश्न पूछा। भारत विकसित देशों से आयात किए जाने वाले गेहूं पर कब तक निर्भर रह सकता है? अब हमें खाद्य पदार्थों में आत्मनिर्भर हो जाना चाहिए। इस विचार ने प्रौद्योगिकी कृषि विज्ञान और किसानों की भागीदारी के परिणाम स्वरुप हरित क्रांति का मार्ग प्रशस्त किया जब प्रो. वर्गीज कुरियन भारत के ग्वाले के मन में ऐसे ही विचार आए तब भारत में आवश्यकता से अधिक दूध का उत्पादन होने लगा। अब हम अपनी आवश्यकता से अधिक दूध और दुग्ध उत्पाद पैदा करते हैं। विज्ञान क्या है? सिलसिलेवार प्रश्न पूछना और कठोर कार्य से इन प्रश्नों के उत्तर खोजना ही विज्ञान है। ये उत्तर ही प्रकृति के नियमों अथवा प्रौद्योगिकीय प्रगति को जन्म देते हैं। अतः बच्चों आपमें से जो भी विज्ञान कांग्रेस में भाग ले रहे हैं उन्हें मैं एक सुझाव दे सकता हूं। प्रश्न पूछने से कभी भी न डरो। तब तक पूछते रहो जब तक आपको संतोषजनक उत्तर न मिल जाए। केवल प्रश्न पूछने वाले दिमाग ने ही विश्व

को रहने योग्य बनाया है।

कोई भी व्यक्ति केवल चिंतन करने और प्रश्न पूछने तक ही सीमित नहीं रह सकता है। समस्याओं को सुलझाने के लिए कार्यवाही आवश्यक है। जिसके लिए कठिन परिश्रम और अध्यवसाय की आवश्यकता होती है। अब मैं अपने एक अनुभव से कठिन परिश्रम और अध्यवसाय के परिणाम को समझाने का प्रयास करूंगा जिसका हमारे ग्रामीण विकास से गहरा संबंध है। इसका संबंध प्रो. साराभाई के अंतरिक्ष कार्यक्रम संबंधी दृष्टि से है। भारत के प्रथम उपग्रह

यान की डिजाइन प्रायोजना को स्वीकृति मिल गयी थी। राकेट के प्रत्येक चरण, ऊष्मा कवच निर्देशन प्रणाली के डिजाइन की जिम्मेदारी चुने हुए प्रायोजना मुखियाओं को दी गयी थी। मुझे एसएलवी-3 के चौथे चरण की जिम्मेदारी दी गई थी जो रोहिणी को कक्षा में स्थापित करने के लिए अंतिम गति देने वाला ऊपरी चरण का राकेट होता है। चौथे चरण का एसएलवी एपोजी मोटर का उपयोग करता है। इसे अल्पतम भार की स्थिति में अधिकतम प्रणोद देना चाहिए। इसमें एक क्रांतिक प्रौद्योगिकी का प्रयोग होता है। इसलिए इसे मिश्रित संरचना से बनाया गया था, जिससे इसका भार कम हो जाता है। मुझे याद है कि यह 1969 के प्रारंभिक दिनों की बात थी। मुझे अहमदाबाद से प्रो. साराभाई का संदेश मिला कि वे फ्रांसीसी अंतरिक्ष संगठन के अध्यक्ष प्रो. हरबर्ट कुरियन के साथ त्रिवेन्द्रम आ रहे हैं। मुझे प्रो. कुरियन की टीम के समक्ष चौथे चरण के संबंध में एक प्रस्तुतिकरण के लिए कहा गया। जब हमारी टीम का प्रस्तुतिकरण समाप्त हुआ तब हमें ज्ञात हुआ कि एसएलवी-3 चौथे चरण पर फ्रांसीसी चौथे चरण के प्रक्षेपण यान डायमांट पी- 4 के लिए भी विचार किया जा रहा है और फ्रांसीसी संगठन एक ऐसे एपाजी राकेट मोटर की तलाश में है जिसका प्रक्षेपण भार और आकार हमारे द्वारा डिजाइन किए गए मोटर से लगभग दोगुना है। उसी बैठक में यह निर्णय लिया गया कि एसएलवी के चौथे चरण को पुनः इस पकार डिजाइन किया जाए कि वह फ्रांसीसी उपग्रह प्रक्षेपण यान और भारतीय प्रक्षेपण यान दोनों ही के लिए उपयुक्त हो। मैं उस समय की हमारी राकेट प्रौद्योगिकी की स्थिति की एक तस्वीर प्रस्तुत करना चाहूंगा। वह ड्राइंगबोर्ड और डिजाइन तैयार किए जाने की स्थिति में थी। एक भविष्य दृष्टा ऐसा था जो यह स्वप्न देखता था कि भारतीय वैज्ञानिक एक ऐसा ऊपरी चरण का राकेट तैयार करेंगे जो भारतीय तथा फ्रांसीसी प्रक्षेपण यान प्रणाली दोनों के ही अनुकूल हो। भारतीय वैज्ञानिक समुदाय में उन्हें कितना अधिक विश्वास था। यह निर्णय लिया गया कि इस ऊपरी चरण का डिजाइन करना और उसे विकसित किया जाना है और तुरंत ही इस प्रायोजना पर कार्य शुरू हो गया। यह घटना हम सबके लिए उल्लेखनीय और प्रेरणादायक थी। हम पूरी लगन से इस पर कार्य करने लगे। दोनों टीमों के बीच अनेक पुनर्विवेचन आयोजित किए गए। चौथा चरण ड्राइंगबोर्ड से निकलकर विकास की अवस्था तक पहुंचा। परंतु 1971 में प्रो. साराभाई की मृत्यु हो गयी और उसी समय डायमंड पी-4 कार्यक्रम भविष्य में पुनः संरूपित किए जाने के लिए कहकर बंद कर दिया गया। जब चौथे चरण का विकास कर लिया गया और उस पर अनेक परीक्षण चल रहे थे तब क्षितिज पर एक नई आवश्यकता उभर कर सामने आई। यह आवश्यकता थी भारत एक छोटे संचार उपग्रह का निर्माण कर रहा था जिसे एक पिगी बैंक उपग्रह के रूप में एरियान कार्यक्रमों (यूरोपीय अंतरिक्ष प्रक्षेपण कार्यक्रम) के साथ समेकित किया जाना था। हमारे भारतीय एपल कार्यक्रम जो भारत का प्रथम संचार उपग्रह है एसएलवी-3, चौथा चरण पूरा फिट बैठा और 1980 के दशक में फ्रेंच गुयाना कोराऊ से यूरोपीय अंतरिक्ष प्रक्षेपण से हमारा उपग्रह अंतरिक्ष में उड़ चला। सन 1969 में प्रो. साराभाई ने जिस दृष्टि के बीज बोए थे उन्होंने उस समय वास्तविकता का रूप लिया जब एपल उपग्रह ने भारतीय अर्थ स्टेशन को संचार प्रसारित करना प्रारंभ कर दिया। इससे प्रौद्योगिकीय टीम द्वारा प्रतिबद्ध कठोर परिश्रम के साथ एक भविष्यद्रष्टा के अंतर्मन की कुछ थाह मिलती है। यहाँ तक कि हम अपने राकेट तैयार कर सकते हैं जिन्हें विदेशी धरती से उड़ाया जा सकता है। इस उपलब्धि ने देश में राकेट प्रौद्योगिकीविदों को जन्म दिया और यह वास्तव में समस्त टीम के कठोर परिश्रम और अध्यवसाय का परिणाम है। आज देश में किसी भी प्रकार उपग्रह तैयार करने और उन्हें कक्षा में प्रक्षेपित करने की क्षमता है। प्रो. विक्रम साराभाई की दृष्टि को हमारे अंतरिक्ष वैज्ञानिकों ने पीएसएलवी और जीएसएलवी के प्रक्षेपण द्वारा पूरी तरह साकार कर दिया है। 20 सितम्बर 2004 को भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन ने पूरी तरह शिक्षा के उद्देश्य से एडूसेट का प्रक्षेपण किया है। यह उपग्रह देश के विभिन्न भागों में फैले हुए यूनीवर्सल टेलीएजूकेशन के माध्यम से 1 लाख 50 हजार से भी अधिक कक्षाओं को संपर्क प्रदान करेगा। यह ग्रामीण गरीबों को अच्छी शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रौद्योगिकी की शक्ति का एक और उदाहरण है। किसी भी व्यक्ति के जीवन का सबसे अच्छा भाग होता है बचपन में स्कूलों में उसे पढ़ने-सीखने की अवधि। सीखने का प्रमुख वातावरण 5 वीं से 16 वीं वर्ष की आयु होती है। निश्चय ही घर में प्यार और स्नेह भी महत्वपूर्ण होता है। अच्छे पड़ोसी और मित्र भी होते हैं। लेकिन फिर दिन का अधिकांश समय स्कूल का गृहकार्य करने, अध्ययन, खाने खेलने और सोने में बीत जाता है। अतः बच्चों के लिए स्कूल में बिताया गया समय सीखने का सबसे अच्छा समय होता है और उसके लिये सबसे अच्छे वातावरण और मूल्य प्रणाली के साथ मिशनोन्मुख शिक्षा प्राप्त करने की आवश्यकता होती है। इस अवस्था में उन्हें अच्छा नागरिक बनने के लिये स्कूलों में और घरों में मूल्य आधारित शिक्षा की

किसी भी व्यक्ति के जीवन का सबसे अच्छा भाग होता है बचपन में स्कूलों में उसे पढ़ने-सीखने की अवधि। सीखने का प्रमुख वातावरण 5 वीं से 16 वीं वर्ष की आयु होती है। निश्चय ही घर में प्यार और स्नेह भी महत्वपूर्ण होता है। अच्छे पड़ोसी और मित्र भी होते हैं। लेकिन फिर दिन का अधिकांश समय स्कूल का गृह्कार्य करने, अध्ययन, खाने खेलने और सोने में बीत जाता है। अतः बच्चों के लिए स्कूल में बिताया गया समय सीखने का सबसे अच्छा समय होता है और उसके लिये सबसे अच्छे वातावरण और मूल्य प्रणाली के साथ मिशनोन्मुख शिक्षा प्राप्त करने की आवश्यकता होती है। इस अवस्था में उन्हें अच्छा नागरिक बनने के लिये स्कूलों में और घरों में मूल्य आधारित शिक्षा की आवश्यकता होती है। इससे मुझे एक महान अध्यापक बेस्टोलोजी की कही हुई बात याद आ जाती है 'मुझे सात वर्ष के लिए एक बच्चा दे दीजिए, उसके बाद चाहे ईश्वर बच्चे को ले ले अथवा शैतान, वे बच्चे को बदल नहीं सकते हैं

आवश्यकता होती है। इससे मुझे एक महान अध्यापक बेस्टोलोजी की कही हुई बात याद आ जाती है 'मुझे सात वर्ष के लिए एक बच्चा दे दीजिए, उसके बाद चाहे ईश्वर बच्चे को ले ले अथवा शैतान, वे बच्चे को बदल नहीं सकते हैं माता-पिता तथा अध्यापकों के लिए स्कूल परिसर में 25,000 घंटे की मूल्य आधारित शिक्षा से वंचित रह जाता है तो कोई भी सरकार अथवा समाज एक पारदर्शी समाज अथवा न्यायनिष्ठ समाज की स्थापना नहीं कर सकता। सत्रह वर्ष की आयु तक पिता, माता और अध्यापक बच्चे को एक प्रबुद्ध नागरिक बनने का मार्ग प्रशस्त करते हैं। मैं यह भी मानता हूं कि सीखना एक सतत् प्रक्रिया है और ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया जारी रहती है। मैं आपके साथ वैज्ञानिकों और प्रौद्योगिकीविदों की सृजनात्मकता बांटना चाहता हूँ। मानव की उड़ान और कुछ नहीं है बल्कि मानव मस्तिष्क की सृजनात्मकता है और इसमें उत्कृष्टता अर्जित करने के लिये अंतरिक्ष अन्वेषण की दिशा में अनेक संघर्ष करने पड़े हैं। सन 1890 में एक महान और सुविख्यात वैज्ञानिक लार्ड केल्विन जो लंदन की रायल सोसायटी के अध्यक्ष भी थे, ने कहा 'कोई भी वस्तु जो हवा से भारी हो न तो उड़ सकती है और न ही उड़ाई जा सकती है। दो दशकों के भीतर राइट बंधुओं ने यह साबित कर दिया कि मनुष्य उड़ सकता है, हां निश्चय ही काफी खतरे और कीमत पर। सन् 1961 में सफलतापूर्वक चंद्र अभियान पूरा होने पर वेरनर वॉन ब्राउन, एक प्रसिद्ध राकेट डिजाइनकर्ता जिन्होंने अंतरिक्ष यात्रियों के साथ कैप्सूल को प्रक्षेपित करने वाले और 1975 में चंद्रमा पर मनुष्य की चहलकदमी को वास्तविकता में बदलने वाले सैटर्न का निर्माण किया था, ने कहा था, 'यदि मुझे अधिकार दिया जाए तो मैं शब्दकोष से असंभव शब्द को निकाल दूंगा।' प्राचीन काल में टोलेमैक खगोलविद्या विभिन्न तारों और ग्रहों की गतिकी की गणना करने में व्यापक स्तर पर प्रयुक्त होने वाली प्रणाली है। उस समय माना जाता था कि पृथ्वी समतल है। पृथ्वी का आकार गोल है और यह सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती है। यह सिद्ध करने में कितना वैज्ञानिक संघर्ष करना पड़ा। दो महान खगोल शास्त्रियों, कोपरनिकस और गैलीलियो ने खगोल विज्ञान के संसार को नया आयाम दिया। आज हम सहजता से यह मान लेते हैं कि पृथ्वी एक ग्लोब है जो सूर्य के चारों ओर एक कक्षा में चक्कर लगाती है और सूर्य आकाशगंगा में चक्कर लगाता है। आज जो भी प्रौद्योगिकीय प्रगति दिखाई देती है वह पिछली कुछ शताब्दियों में हुई वैज्ञानिक खोजों का परिणाम है। कभी भी मनुष्य समस्याओं से नहीं हारा है। वह असफलताओं को अपने वश में करने में लगातार प्रयासरत है। अब 'जल' जैसे विषय पर आते हैं। मैं सभी बच्चों तथा स्कूलों के प्रबंधन से जुड़े लोगों को एक सलाह देता हूं। मुझे उत्तरांचल के स्कूली बच्चों के आश्चर्यजनक और अद्भुत प्रयोग को जानने का अवसर मिला है। याद रखें वे सभी एक साधारण से स्कूल से हैं और उनमें से अधिकांश हिन्दी में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। इस प्रयोग में पड़ोस के समुदाय में मूलभूत सामाजिक, आर्थिक, पर्यावरणीय और पारिस्थितिक, पहलुओं की खोज और चित्रण के लिए मानचित्रण तकनीकों का उपयोग शामिल है। वैश्विक अवस्थितिक प्रणाली, भौगोलिक सूचना प्रणाली, अंतरिक्ष प्रतिबिंबन से लैस होकर और साथ में हाथ में लिए जा सकने वाले कंप्यूटरों के साथ बच्चे अपने चारों ओर के वातावरण के संबंध में अपनी जानकारी को बढ़ाने के लिए आसपड़ोस की विस्तृत जानकारी युक्त मानचित्र तैयार कर रहे हैं। ये मानचित्र आगे चलकर तेजी से समाप्त होते जा रहे पानी के प्राकृतिक स्रोतों को पुनर्जीवित करने, सड़कों की स्थिति सुधारने, जल तथा बिजली के वितरण केन्द्रों के लिए बेहतर स्थलों की तलाश करने, यातायात में भीड़ का जमाव कम करने और कचरा इकट्ठा करने की बेहतर प्रणाली के निर्माण में प्रौद्योगिकीविदों की सहायता करेंगे।

❑❑❑

एक फिल्म में ज़िन्दा होते डायनासोर

डॉ. जगदीप सक्सेना

कभी उम्मीद नहीं थी कि बदसूरत और भयानक दिखने वाले डाइनोसौर भी फैशन में आ जाएंगे। पर हॉलीवुड की बात ही निराली है। कोई छः करोड़ डालर की लागत से बनी एक हालीवुड फिल्म जुरैसिक पार्क ने इस अनहोनी को भी सच कर दिखाया है। 'जॉस' और 'ई.टी.' जैसी जगप्रसिद्ध फिल्मों के कल्पनाशील निर्देशक स्टीवेन स्पीलबर्ग की इस फिल्म ने आज दुनियाभर में तहलका मचा रखा है। लोग डाइनोसौर के दीवाने हो गए हैं। जहाँ-जहाँ फिल्म रिलीज होती है, वहां-वहां लोग 'डाइनोमेनिया' के शिकार हो जाते हैं। विदेशी बाजारों में 'डाइनो' और 'जुरैसिक' के नाम से तरह-तरह की चीजें बिकने लगी हैं स्वादिष्ट डिशों से लेकर जींस और टी-शर्ट तक। कहते हैं अब तक इस तरह की कोई हजार चीजें बाजारों में आ गई हैं।

'जुरैसिक पार्क' हॉलीवुड में बनी आज की सबसे सनसनीखेज फिल्म है। कारण फिर इसमें कोई साढ़े सात करोड़ साल पहले धरती पर विचरने वाले भयानक डाइनोसौरों को सड़कों पर आतंक मचाते दिखाया गया है। बिलकुल असली लगने वाले डाइनोसौर जब पर्दे पर फुंफकारते हैं तो बदन में झुरझुरी सी दौड़ जाती है। स्पीलबर्ग ने जिस डाइनोसौर को मुख्य भूमिका में उतारा है, उसका वैज्ञानिक नाम है 'टाइपरैनोरेस रैक्स' पर आज यह दुनियाभर में 'टीरैक्ट' के नाम से मशहूर हो गया है।

'टीरैक्ट' एक बेहद भयानक और मांसाहारी डाइनोसौर था। इसकी लंबाई पचास फुट के आस-पास थी। जबड़े मजबूत और दांत रेजर की तरह तेज थे। इसके आठ इंच लंबे दांत शिकार की हड्डी तक को चीर-फाड़ डालते थे। इसके भारी-भरकम पंजों से शिकार का छूट पाना लगभग नामुमकिन था। कुदरत ने टीरैक्ट के शरीर की रचना इस तरह से की थी कि ये हमेशा शिकार के पीछे फुर्ती से भाग सके। इसलिए इसका सिर बड़ा रखा गया था और हाथ छोटे। पर ये छोटे हाथ कमजोर नहीं थे। छह सौ पौंड तक का भार एक झटके में उठा सकते थे। ये अपने से छोटे अन्य प्राणियों के अलावा छोटे डाइनोसौरों का भी शिकार करते थे।

सिर्फ टीरैक्ट की करतूतों के आधार पर डाइनोसौर की पूरी बिरादरी को बदनाम करना ठीक नहीं होगा। बहुत से डाइनोसौर सीधे-सादे और शाकाहारी भी थे। दरअसल डाइनोसौर का नामकरण ही गलत हुआ है। हुआ यह कि सन् 1825 में पहली बार एक विशाल प्राणी का कंकाल मिला। इससे सिर्फ यह पता चल रहा था कि यह सरीसृप वर्ग का कोई प्राणी है। सन् 1842 में अंग्रेज वैज्ञानिक सर रिचर्ड ओवेन ने इसे नाम दिया 'डाइनोसौर'। यह यूनानी भाषा के दो शब्दों से मिलकर बना है 'डीनोस' और 'सौकोस'। इन दोनों का सम्मिलित अर्थ है 'भयानक छिपकलियां'। पहले डाइनोसौर को खास वैज्ञानिक नाम दिया गया इगुआनोडोन। बाद में हुई खोजों से पता चला कि इगुआनोडोन विशुद्ध शाकाहारी प्राणी थे। पर अपनी तीस फुटी लंबाई और चार टन के भार के कारण ये भयानक दिखते थे। इनका जन्म कोई साढ़े चौदह करोड़ साल पहले हुआ था।

'इगुआनोडोन' को सबसे पहले खोजा जरूर गया था पर ये धरती पर जन्म लेने वाले पहले डाइनोसौर नहीं थे। सन् 1991 में सबसे पहला डाइनोसौर खोजा गया। नाक से लेकर दुम के छोर तक इसकी लंबाई सिर्फ 102 सेंटीमीटर थी। इस हिसाब से इसका भार लगभग ग्यारह किलोग्राम रहा होगा। इनका जन्म डाइनोसौर युग की भोर में कोई साढ़े बाईस करोड़ साल पहले हुआ था। इसीलिए इन्हें यूनान की भोर की देवी 'इयोसञञ के नाम पर 'इयोरैप्टर' का नाम दिया गया है। 'इयोरैप्टर' की खोज से पहले 'हेरीरासौरस' नामक डाइनोसौर को सबसे पुराना डाइनोसौर माना जाता है। यह भी

'टीरैक्ट' एक बेहद भयानक और मांसाहारी डाइनोसौर था। इसकी लंबाई पचास फुट के आस-पास थी। जबड़े मजबूत और दांत रेजर की तरह तेज थे। इसके आठ इंच लंबे दांत शिकार की हड्डी तक को चीर-फाड़ डालते थे। इसके भारी-भरकम पंजों से शिकार का छूट पाना लगभग नामुमकिन था। कुदरत ने टीरैक्ट के शरीर की रचना इस तरह से की थी कि ये हमेशा शिकार के पीछे फुर्ती से भाग सके। इसलिए इसका सिर बड़ा रखा गया था और हाथ छोटे। पर ये छोटे हाथ कमजोर नहीं थे। छह सौ पौंड तक का भार एक झटके में उठा सकते थे। ये अपने से छोटे अन्य प्राणियों के अलावा छोटे डाइनोसौरों का भी शिकार करते थे।

छोटा ही था सिर्फ नौ फुट लंबा।

इसके बाद डाइनोसौर जैविक विकास के रास्ते में तेजी से दौड़ लिए। छोटे-बड़े, जमीन पर रहने वाले और हवा में उड़ने वाले, शाकाहारी और मांसाहारी सभी तरह के डाइनोसौर विकसित हुए। अब तक डाइनोसौर की तीन सौ से ज्यादा जातियाँ खोजी जा चुकी हैं और हर साल कोई आधा दर्जन नई जातियाँ और मिल जाती हैं। यह सिलसिला कब तक चलेगा कहा नहीं जा सकता। डाइनोसौरों के विकास में एक खास बात यह रही कि विशाल और भयानक दिखाने वाले ज्यादातर डाइनोसौर शाकाहारी थे। उदाहरण के तौर पर 'सीस्मोसौरस' को ले सकते हैं।

एक सौ चालीस फुट लंबे इस भयानक डाइनोसौर का वजन 80-90 टन रहा होगा। लेकिन इसका सिर और दांत घोड़े जैसे दिखते थे। फिर यह अपनी विशाल खुराक को किस तरह चबाकर उदरस्थ करता था? हाल में वैज्ञानिकों ने यह रहस्य भी खोल दिया है। दरअसल सीस्मोसौरस के पेट में आलू बुखारे जितने कई सौ पत्थर पेट में खुराक को कुचलते रहते थे। यानी इसके पेट में दांत थे। विशाल और शाकाहारी डाइनोसौरों ब्रांटोसौरस का नाम भी मशहूर है। इसकी लंबाई अस्सी से सौ फुट के बीच थी। सिकैटोप्स नाम का एक अन्य शाकाहारी डाइनोसौर भी दिखने में काफी भयानक था। इसके सिर पर एक जोड़ी सींग भी थे। यह डाइनोसौर सैकड़ों के झुंड में रहता था इसी बीच मांसाहारी और छोटे डाइनोसौर भी जन्म ले चुके थे। इनमें सबसे खतरनाक डीनोनिकस नाम का डाइनोसौर था। नौ फुट लंबा और कोई तीन से पांच फुट ऊंचा यह डाइनोसौर बला का फुर्तीला था। यह अपने शिकार को हंसिये जैसे पंजों के बीच दबाकर खत्म कर देता था।

पिछले कुछ साल में हुई खोजों ने डाइनोसौर के दिमाग और रहन-सहन पर भी काफी रोशनी डाली है। पता चला है कि, इनकी बुद्धिमत्ता आज के सरीसृप वर्ग के प्राणियों से कोई ढाई गुनी ज्यादा थी। एक वैज्ञानिक ने टाइरैनोसौरस जाति के एक छोटे डाइनोसौर की खोपड़ी की कैट स्कैन जांच परख की। नतीजा निकला कि इसका दिमाग हमारी अपेक्षाओं से दुगुना बड़ा था। साथ ही इसकी देखने की क्षमता भी बहुत ज्यादा थी। सूंघने के मामले में यह भेड़िए को हरा सकता था।

डाइनोसौरों के अवशेष लगभग पूरी दुनिया से मिल चुके हैं। पर मेरिका में इनकी तादाद इससे ज्यादा पाई गई है। हमारे देश में जियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया के वैज्ञानिकों ने डाइनोसौर के अंडों, हड्डियों और दातों आदि के अवशेष ढूंढे हैं। ये ज्यादातर गुजरात, मध्यप्रदेश और महाराष्ट्र से मिले हैं। अभी पिछले ही साल मध्यप्रदेश के धार जिले के बाग गांव से डाइनोसौर के अंडों, हड्डियों और दांतों आदि के अवशेष ढूंढे गये हैं। धूसर रंग के इन अंडों का व्यास कई सेंटीमीटर है। फिल्म जुरैसिक पार्क डाइनोसौर के बारे में उपर्युक्त सच्चाइयां बताने की जगह दर्शकों के मन में खौफ पैदा करती है। फिल्म इतनी डरावनी है कि इसे पीजी-13 श्रेणी में रखा गया है। यानी तेरह साल से कम उम्र का कोई भी बच्चा इसे अकेले नहीं देख सकता। वैज्ञानिकों की राय में फिल्म का नाम ही गलत है। फिल्म में दिखाए गए डाइनोसौर जुरैसिक काल में नहीं बल्कि क्रीटेसियस काल में मौजूद थे। इसलिए इसका नाम होना चाहिए 'क्रीटेसियस पार्क' दरअसल वैज्ञानिकों ने गुजरे समय को कई कालों में बांट रखा है। जुरैसिक (21 करोड़ 30 लाख से 1440 लाख साल पहले) और क्रीटेसियस (14 करोड़ 40 लाख से छह करोड़ 60 लाख साल पहले) इन्हीं में से एक हैं।

सबसे ज्यादा बहस फिल्म के वैज्ञानिक आधार को लेकर छिड़ी है। फिल्म का निर्माण माइकेल क्रिचटन द्वारा इसी नाम से लिखे गये उपन्यास के आधार पर किया गया है। क्रिचटन खुद हार्वड मेडिकल स्कूल के स्नातक हैं। उनके उपन्यास का आधार है डायनोसौर काल के एंबर में दबे मच्छर के खून से डायनोसौर का डी.एन.ए. अलग किया गया और फिर इससे डानोसौर विकसित किए गए। वैज्ञानिक इस तकनीक को 'क्लोनिंग' कहते हैं। चूहों और सुअरों में यह तकनीक आंशिक रूप से आजमायी जा चुकी है। कुछ वैज्ञानिक मानते हैं कि अगले तीस वर्षों में डाइनोसौर के डी.एन.ए. से डाइनोसौर विकसित करना संभव होगा। पर मच्छर के खून में डाइनोसौर के डी.एन.ए. का मिलना एक बहुत दूर की कौड़ी है। कोई डेढ़ साल पहले कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी के वैज्ञानिक डायनोसौर के काल के कीड़े से डी.एन.ए. प्राप्त कर चुके हैं। पर यह कीड़े का ही है, डाइनोसौर का नहीं।

कैलिफोर्निया में आनुवांशिक सूक्ष्म जीव विज्ञान के विशेषज्ञ रसेल हिगूची ने वहां पत्र लिखकर जुरासिक पार्क के वैज्ञानिक आधार की खूब भर्त्सना की है। उनका मानना है कि इस फिल्म में डी.एन.ए. पर हो रही खोजों को बेहद बढ़ा-चढ़ा कर और खौफनाक ढंग से प्रदर्शित किया गया है। इससे लोगों के मन में विज्ञान की इस नई तकनीक के प्रति डर पैदा होगा। इस फिल्म से उन लोगों को बल मिलेगा जो एक लंबे अर्से से जीन पर हो रही खोजों पर प्रतिबंध लगाने की मांग कर रहे हैं। पर माइकेल क्रिचटन इन सारे विवादों पर आश्चर्यचकित हैं। वह कहते हैं, ''मैंने एक विज्ञान कथा लिखी है। न जाने क्यों वैज्ञानिकों ने इसे इतनी गंभीरता से ले लिया है। यह कल्पना अगर खौफनाक न होती तो शायद इतना बावेला न मचता।''

अमेरिका की डाइनोसौर सोसायटी के अध्यक्ष ने भी जुरासिक पार्क की कुछ वैज्ञानिक गलतियों की ओर इशारा किया है। मसलन फिल्म में डाइनोसौर को बहुत तेजी से दौड़ते दिखाया गया है। पर वैज्ञानिकों की राय में डाइनोसौर अच्छे धावक नहीं थे। इसी तरह फिल्म में डाइनोसौर को पंजे से दरवाजा खोलते देखकर वैज्ञानिक हैरत में पड़ गए हैं। दुनिया में दरवाजों का अस्तित्व डाइनोसौर के करोड़ों साल बाद आया। इसलिए यह महज एक रोमांचकारी अटकल है। फिल्म के कुछ दृश्य में डाइनोसौर अपने शिकार की आंखों में थूककर उन्हें अंधा कर देता है। वैज्ञानिकों को डाइनोसौर की इस अनोखी क्षमता के बारे में कुछ पता नहीं है।

दरअसल इन सारे दृश्यों से सत्य का कोई लेना-देना नहीं है। इन्हें फिल्म में महज रोमांच पैदा करने के लिए डाला गया है। वैसे भी स्पीलबर्ग ने कोई वैज्ञानिक फिल्म बनाने का दावा नहीं किया है। करोड़ों की लागत से बनी फिल्म को बॉक्स आफिस पर हिट करने के लिए ऐसा करना जरूरी हो जाता है। इसलिए फिल्म देखते समय इसकी वैज्ञानिक खामियों पर नहीं, बल्कि तकनीकी कमालों पर ध्यान दीजिए। आपको जरूर मजा आएगा।

आमधारणा है कि कोई साढ़े छह करोड़ साल पहले धरती से एकाएक सारे डाइनोसौर कूच कर गए। इस तथाकथित कूच या लुप्त होने

के कई वैज्ञानिक कारण भी बताए गए हैं। पर पिछले कुछ वर्षों में जैविक विकास के एक नए रास्ते पर चल पड़े और पक्षियों को जन्म दिया। इसलिए मशहूर स्मिथसोनियन संस्थान के वैज्ञानिक ब्रेट सुरमैन कहते हैं कि डाइनोसौर आज भी आकाश में उड़ते हुए हमें घूरते हैं।

डाइनोसौर के लुप्त होने के कारण बताए गए हैं। बहुत पहले कुछ वैज्ञानिकों की राय थी कि धरती पर एकाएक कोई घातक वायरस पनपा, जिसने डाइनोसौर को निशाना बनाया और इन्हें समूल नष्ट कर दिया। यह कल्पना ठीक वैसी ही है, जैसे एड्स के वायरस पर हम काबू न कर सकें और धीरे-धीरे पूरी मानव जाति ही लुप्त हो जाए। बाद में कुछ वैज्ञानिकों ने कहा कि डाइनोसौर धरती पर धीरे-धीरे होने वाले भौगोलिक तथा मौसमी बदलावों को बर्दाश्त नहीं कर सके। इसलिए सदा के लिए विलुप्त हो गए। आज ये दोनों ही कारण वैज्ञानिकों द्वारा नकार दिए गए हैं।

डाइनोसौर के लुप्त होने का सबसे मान्य सिद्धांत कहता है कि इनकी मौत अंतरिक्ष से आई। साढ़े छह करोड़ साल पहले धरती से एक विशाल धूमकेतू या क्षुद्रग्रह टकराया। इसकी इतनी धूल-मिट्टी हवा में घुल गई कि महीनों के लिए धरती पर अंधेरा छा गया। सूरज की किरणें पेड़-पौधों तक न पहुंच सकीं। नतीजतन ये भोजन नहीं बना सके और मर गए। हरियाली से पेट भरने वाले अनेक डाइनोसौर और कुछ प्राणियों ने भूख से तड़प-तड़प कर जान दे दी। शिकारी डाइनोसौर के शिकार के लिए कुछ बाकी न रहा। इस तरह से धीरे-धीरे ये काल के ग्रास बन गए।

यह कहानी विश्वसनीय तो लगती ही है, हाल में इसके कई वैज्ञानिकों ने सबूत भी जुटा लिए गए हैं। सबसे पहली बात तो यह है कि धूमकेतु का धरती से टकराना एक वैज्ञानिक सच्चाई है। कुछ करोड़ सालों के अंतराल पर बराबर ऐसा होता रहा है और पूरी उम्मीद है कि आगे भी होता रहेगा। दर असल धरती पर डाइनोसौर का जन्म भी एक ठीक ऐसी ही प्राकृतिक आपदा के बाद हुआ था। कोई इक्कीस करोड़ साल पहले धरती से एक विशाल धूमकेतु टकराया और इसने उसी तरह प्राणियों को मरने पर मजबूर किया जैसा पहले बताया गया है। इससे सभी बड़े प्राणी मर गए और छोटे प्राणी बचे रहे। इसी समय कुदरत ने मौका देखकर एक छोटे से डाइनोसौर को जन्म दिया। बाद में इसी के क्रमिक विकास से विशाल डाइनोसौर का उदय हुआ इस घटना के सबूत के रूप में वैज्ञानिक कनाडा में धरती पर बना एक साठ मील चौड़ा विशाल गड्ढा दिखाते हैं। कहते हैं यह गड्ढा धूमकेतु के टकराने से ही बना था। इस ऐतिहासिक तथ्य के अलावा सन् २२१६ में धरती से एक विशाल धूमकेतु के टकराने की ताजा वैज्ञानिक गणनाओं ने भी इस मान्यता को पुख्ता बनाया है।

जो वैज्ञानिक इक्कीस करोड़ साल पहले की इस घटना को नहीं मानते उनकी राय में धरती के अलगृ अलग महाद्वीपों के रूप में बंटने और सरकने के कारण ऐसा हुआ। इक्कीस करोड़ साल पहले पूरी धरती एक थी। इसे आज पैनाजिया कहा जाता है। जमीन के भीतर हुई हलचलों के कारण इसके कुछ टुकड़े हुए जो धीरे-धीरे एक दूसरे से दूर सरकने लगे। इस दौरान अनेक ज्वालामुखी विस्फोट हुए पर्वतों ने सिर उठाया और जगह-जगह सागर ठाठें मारने लगे। ऐसे में स्वाभाविक रूप से धरती की जलवायु ने भयानक पलटा खाया और प्राणियों का सामूहिक विनाश हुआ।

हाल में साढ़े छह करोड़ साल पहले की धूमकेतु दुर्घटना के कुछ पक्के रासायनिक सबूत भी मिले हैं। एक रासायनिक तत्व है इरीडियम। धरती पर इसकी बेहद अल्प मात्रा मौजूद है, पर धूमकेतुओं और क्षुद्र ग्रहों पर इसकी भरमार होती है। भूवैज्ञानिक बताते हैं कि धरती के भीतर की साढ़े छह करोड़ साल पुरानी चट्टानों में इरीडियम बहुतायत में मौजूद है। जाहिर है यह धूमकेतु की देन है। हाल में वैज्ञानिकों ने वह गढ़ढा भी ढूंढ लिया है, जो धूमकेतु के टकराने से बना था। यह मैक्सिको में जमीन के भीतर दबा मिला इसका व्यास एक सौ दस मील है।

कुछ वैज्ञानिक यह नहीं मानते कि डाइनोसौरों ने भूख के मारे दम तोड़ दिया। उनकी राय में धरती से धूमकेतु टकराया, पर डाइनोसौर की मौत धरती पर एकाएक ठंड छाने के कारण हुई। ठंडे खून वाले प्राणी होने के कारण डाइनोसौर ठंडक नहीं बर्दाश्त कर सके और चल बसे। वैज्ञानिक भाषा में ठंडे खून वाले प्राणी वे हैं जिनके शरीर का तापमान वातावरण के तापमान के हिसाब से बदलता रहता है। इसके विपरीत गर्म खून वाले प्राणियों के शरीर में ऐसी कुदरती व्यवस्था होती है कि इनके शरीर का तापमान हमेशा एक-सा बना रहता है। सरीसृप (सांप वगैरह) और उभयचर (मेंढक वगैरह) वर्ग के प्राणियों का खून ठंडा होता है, जबकि स्तनधारी प्राणी व पक्षी गर्म खून के प्राणी हैं।

हाल में वैज्ञानिकों का एक वर्ग भी उभरा है जो डाइनोसौर के लुप्त होने के विवाद को निरर्थक और बेतुका मानता है। उनकी राय में डाइनोसौर लुप्त हुए ही नहीं। उन्होंने तो सिर्फ बदली हुई भौगोलिक और मौसमी दशाओं के हिसाब से अपने जैविक विकास का रास्ता बदल दिया। ताजा खोजें बताती हैं कि उस समय डाइनोसौर की लगभग तीन सौ जातियां मौजूद थीं। धूमकेतु के टकराने से इनमें से लगभग दर्जन भर जातियां सदा के लिए सो गई। इन जातियों के डाइनोसौर विशाल और शाकाहारी थे। उस समय डाइनोसौर की कई जातियाँ पक्षियों की तरह हवा में उड़ती थीं। इनका बाल भी बांका नहीं हुआ। इसी तरह धरती पर कूदनृे फांदने वाले छोटे मांसाहारी डाइनोसौरों ने भी बुरे दिनों में अपनी जिंदगी काट ली और लुप्त होने से बच गए। पर यह बात उनकी समझ में जरूर आ गई कि अब इस तरह ज्यादा समय तक काम नहीं चलेगा। सो वे पक्षियों के रूप में विकसित हो गए।

आजकल यह भी माना जा रहा है कि डाइनोसौर के पक्षियों के रूप में विकसित होने और धूमकेतु दुर्घटना के बीच कोई सीधा रिश्ता नहीं है। डाइनोसौर ने विकास की यह पगडंडी दुर्घटना से कोई तीन करोड़ साल पहले ही पकड़ ली थी। हाल में दक्षिण कोरिया में उस समय के पक्षियों के अवशेष भी मिले हैं। यानी लाखों सालों तक पक्षी और डाइनोसौर ठीक उसी तरह साथ-साथ रहते रहे जैसे कभी यूरोप में हम और नीयेनडर्थल मानव रहते थे। हां, इतनी बात मानी जा सकती है कि जब परिस्थितियां बदलीं तो डाइनोसौरों के विकास की रफ्तार बहुत तेज हो गई। सच तो यह है कि डाइनोसौर अपने जन्म के समय से ही बेहद विकासशील प्राणी रहे हैं। धरती पर कोई साढ़े सोलह करोड़ साल की यात्रा के दौरान ये समय-समय पर अनेक रूपों में प्रकट हुए। जन्म के समय इनकी लंबाई मात्र एक सौ दो सेंटीमीटर थी। धीरे-धीरे इनका आकार बढ़ा और इन्होंने एक सौ चालीस फुट तक की लंबाई पा ली। इसी बीच हवा में उड़ने वाले कुछ डाइनोसौर भी विकसित हुए। पक्षी डाइनोसौर की विकास यात्रा का आखिरी पड़ाव है। कृपया डाइनोसौरों को लुप्त मत मानिए।

❑❑❑
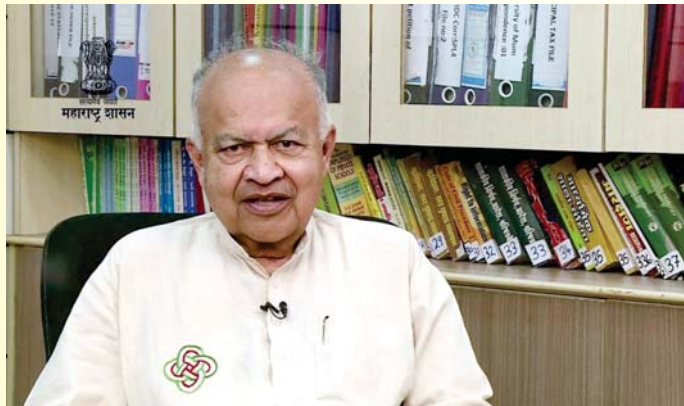
परंपरागत विचार आज निरर्थक साबित हो चुके हैं

जयंत विष्णु नार्लीकर से मनीष मोहन गोरे की बातचीत

प्रख्यात भारतीय खगोल वैज्ञानिक डॉ.जयंत विष्णु नार्लीकर का जन्म एक मध्यमवर्गीय मराठी परिवार में 19 जुलाई 1938 को कोल्हापुर (महाराष्ट्र) में हुआ था। डॉ.नार्लीकर को आरंभिक शिक्षा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय (वाराणसी, उ.प्र.) के कैंपस में मिली जहां उनके पिता विष्णु वासुदेव नार्लीकर गणित विभाग के प्रोफेसर और अध्यक्ष थे। उनकी मां सुमति नार्लीकर संस्कृत की विदूषी थीं। स्कूल और कॉलेज में नार्लीकर ने शानदार अकादमिक प्रदर्शन किया और 1957 में बी.एस-सी. की डिग्री हासिल की। उच्च शिक्षा हासिल करने के लिए उन्होंने कैंब्रिज विश्वविद्यालय में दाखिला लिया। उन्होंने गणित में कैंब्रिज डिग्रियां प्राप्त कीं-बी.ए.(1960), पी-एच.डी.(1963), एम.ए. (1964) और एसी.डी. (1976); परंतु खगोल विज्ञान और खगोल भौतिकी में विशेष प्रवीणता हासिल की। नार्लीकर ने इन्हीं विषयों में फ्रेड हॉयल के मार्गदर्शन में शोध कार्य किया। बाद में किंग्ज कॉलेज के फेलो (1963-1972) और इंस्टीट्यूट ऑफ थिओरेटिकल एस्ट्रोनामी के संस्थापक (1966-1972) के रूप में सन् 1972 तक कैंब्रिज में रहे।

भारत लौटकर नार्लीकर ने टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान में सैद्धांतिक खगोल भौतिकी समूह का नेतृत्व 17 वर्षों (1972-1989) तक किया। उनके सफल मार्गदर्शन और साथी वैज्ञानिकों के कठोर परिश्रम के बल पर इस समूह को अंतर्राष्ट्रीय ख्याति मिली। 1988 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने पुणे में अंतर-विश्वविद्यालय खगोल विज्ञान एवं खगोल भौतिकी केंद्र (IUCAA) स्थापित किया और नार्लीकर की विशेषज्ञता को ध्यान में रखते हुए उन्हें इस केंद्र का संस्थापक निदेशक बनाया। खगोल विज्ञान और खगोल भौतिकी के क्षेत्रों में शिक्षण व अनुसंधान में IUCAA की प्रतिष्ठा व उत्कृष्टता विश्व के फलक पर है। 2003 में नार्लीकर IUCAA से सेवानिवृत्त हुए और वर्तमान में वह यहां पर एमेरिटस प्रोफेसर हैं।

नार्लीकर ने ब्रह्मांड निर्माण के बिग बैंग सिद्धांत को लेकर अपना जो वैज्ञानिक सिद्धांत प्रस्तुत किया था, उसकी अंतर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा है। गुरुत्वाकर्षण और माच सिद्धांत तथा क्वांटम खगोल विज्ञान के क्षेत्रों में उन्होंने अपने शोध कार्य किए हैं। वह स्टीडी स्टेट कॉस्मोलॉजी के प्रतिपादक माने जाते हैं और उन्होंने फ्रेड हॉयल के साथ कंफर्मल ग्रैविटी थ्योरी दिया था जिसे हॉयल-नार्लीकर सिद्धांत के नाम से जाना जाता है। इस सिद्धांत में आइंस्टाइन के आपेक्षिकता सिद्धांत और माच सिद्धांत का संश्लेषण किया गया है। हॉयल-नार्लीकर सिद्धांत का आशय है, "किसी कण का जड़त्व द्रव्यमान दूसरे सभी कणों के द्रव्यमान की क्रिया होती है और यही ब्रह्मांड की भी क्रिया होती है। इस सिद्धांत के आधार पर ब्रह्मांड में गुरुत्वाकर्षण 'G' समय के साथ सशक्त रूप से कम होता है। 1964 में नार्लीकर ने अपने गुरु फ्रेड हॉयल के साथ मिलकर इस सिद्धांत की रूप-रेखा बनाई और यह बात पूरी दुनिया के वैज्ञानिक समुदायों में फैल गई। भारत जो कि नार्लीकर की जन्म भूमि थी, वहां उनकी मेधा के गुण-गान की गूंज भला कैसे नहीं पहुंचती। आजादी के बाद विज्ञान में करवटें लेते भारत के इस 26 वर्षीय नौजवान की उपलब्धियों पर नाज करते हुए भारत सरकार ने उन्हें 1965 में पद्मभूषण से सम्मानित किया। आगे चलकर 2004 में पद्म विभूषण और 2011 में महाराष्ट्र के सर्वश्रेष्ठ सम्मान "महाराष्ट्र भूषण" से उन्हें विभूषित किया गया।

1966 में नार्लीकर का विवाह मंगला राजवाड़े से हुआ जो कि गणित में पी-एच.डी. हैं। इनकी तीनों बेटियां गीता, गिरिजा और लीलावती विज्ञान की ही सेवा कर रही हैं। वैज्ञानिक के अलावा नार्लीकर के व्यक्तित्व का एक दूसरा पहलू भी है। वह एक समर्थ और सफल विज्ञान संचारक और विज्ञान कथा लेखक भी हैं। इस विशेष विधा की प्रेरणा भी उन्हें अपने अकादमिक गुरु फ्रेड हॉयल से मिली है जो भी एक विज्ञान संचारक थे। नार्लीकर का पहला

लोक विज्ञान लेख “ग्रैविटेशनल कोलाप्स” 1964 में डिस्कवरी पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। यह लेख पाठकों के बीच खासा लोकप्रिय हुआ था।

कैंब्रिज में अनुसंधान कार्य करते हुए नार्लीकर विज्ञान लेखन के अलावा लोकप्रिय विज्ञान व्याख्यान भी दिया करते थे और उन्होंने यहीं पर व्याख्यान की अपनी एक विशेष शैली भी विकसित कर ली। 1972 में भारत लौटने के बाद उन्होंने विज्ञान संचार के अपने शगल को नहीं त्यागा और

अपने मुख्य काम के अलावा विज्ञान पत्रिकाओं, रेडियो तथा टीवी के लिए लेखन व टीवी शो करते रहे।

80 के दशक में नार्लीकर ने कार्ल सेगन के लोकप्रिय धारावाहिक “दि कॉस्मास” पर बने टीवी सीरियल में अपनी आवाज दी थी और इसके आरंभ में हिन्दी में धारावाहिक की भूमिका ने दर्शकों का मन जीत लिया था। इस धारावाहिक की सफलता को देखते हुए नार्लीकर ने तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी को दूरदर्शन से खगोल विज्ञान पर एक हिन्दी धारावाहिक प्रसारित करने का प्रस्ताव भेजा जिसे तुरंत मंजूरी मिल गई और नार्लीकर के परामर्श में फिल्म्स डिवीजन ऑफ इंडिया को यह धारावाहिक बनाने का निर्देश दिया गया। 17 भागों में बनकर तैयार हुए इस धारावाहिक को सन् 1994-95 के दौरान भारत में अनेक अवसरों पर प्रसारित किया गया। इस धारावाहिक का नाम था “ब्रह्मांड” जिसमें अनेक कहानियों और दंतकथाओं की सहायता से साधारण भाषा शैली में खगोल विज्ञान की रोमांचक खोजों को बताया गया था। यह धारावाहिक स्कूली बच्चों में विशेष तौर पर लोकप्रिय हुआ था। सन् 1990 के दशक में भारत के लोकप्रिय टीवी कार्यक्रम ‘सुरभि’ में उन्होंने अंग्रेजी, मराठी और हिन्दी में 400 से ज्यादा विज्ञान लेख लिखे हैं। खगोल विज्ञान, ब्रह्मांड और ब्लैक होल पर कई किताबों के अलावा उन्होंने सन् 2003 में विज्ञान लोकप्रियकरण पर एक पुस्तक “साइंटिफिक एजः दि इंडियन साइंस फ्रॉम वेदिक टू मॉडर्न टाइम्स” लिखी जो विज्ञान संचारकों के लिए एक श्रेष्ठ संदर्भ पुस्तक का काम करती है।

नार्लीकर की विशेष पहचान विज्ञान कथा लेखन से भी है। उन्होंने मराठी, हिन्दी और अंग्रेजी भाषाओं में अनेक उत्कृष्ट विज्ञान कथाएं तथा विज्ञान कथात्मक उपन्यास लिखे हैं जो पाठकों के बीच बेहद लोकप्रिय हैं। अपनी विज्ञान कथाओं में नार्लीकर ने भारतीय परिवेश में समाज और विज्ञान के बीच के साहचर्य को रेखांकित किया है। कृष्ण विवर, वायरस, धूमकेतु, नौलखा हार, टाइम मशीन का करिश्मा, ट्राय का घोड़ा, यक्षों की देन उनकी लोकप्रिय विज्ञान कथाएं हैं। चिल्ड्रन फिल्म सोसायटी ऑफ इंडिया नार्लीकर की विज्ञान कथा “धूमकेतु” पर दो घंटे अवधि की एक फिल्म भी बना चुकी है।

नार्लीकर ने उनके ऑटोग्राफ मांगने वाले बच्चों से एक बार कहा कि वे पोस्टकार्ड में एक वैज्ञानिक प्रश्न लिखकर उन्हें भेजें और वह अपने हस्ताक्षर के साथ उन प्रश्नों के जवाब लिखकर लौटाएंगे। नार्लीकर के इस पहल ने देश में पोस्टकार्ड विज्ञान प्रश्न–उत्तर का एक आंदोलन खड़ा कर दिया था।
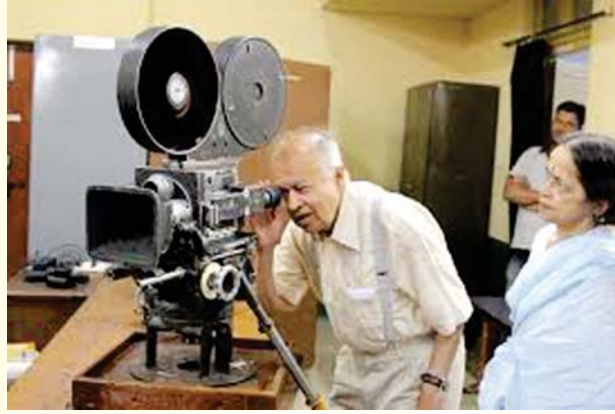
अगर गहनता से विचार करें तो हमें नार्लीकर एक वैज्ञानिक, विज्ञान संचारक, विज्ञान कथाकार, संस्थान निर्माता से बढ़कर एक संजीदा और संवेदनशील इंसान के रूप में नजर आएंगे। उन्होंने असल जीवन में भी वैज्ञानिक नजरिया और तार्किकता का ही समर्थन किया और अंधविश्वास, ज्योतिष आदि निराधार तथा अतर्कसंगत विचारों का सदा खंडन किया। यूजीसी जब भारतीय विश्वविद्यालयों के विज्ञान संकायों में ज्योतिष की पढ़ाई से जुड़ा प्रस्ताव लेकर आई तो इसके खिलाफ सबसे पहले आवाज नार्लीकर ने ही उठाई थी। नार्लीकर ने जीवन पर्यन्त समाज में वैज्ञानिक दृष्टिकोण की वकालत की है। वह इस तरह के नजरिए को जीवन जीने का एक बेहतर और प्रबुद्ध तरीका मानते हैं। उनका मत है कि हमारे समाज में वैज्ञानिक दृष्टिकोण की कमी भारत के विकास के मार्ग में एक बड़ी बाधा है। विज्ञान लोकप्रियकरण के क्षेत्र में नार्लीकर के उल्लेखनीय योगदान को रेखांकित करते हुए यूनेस्को ने सन् 1996 में इस विधा में विश्व के सबसे बड़े सम्मान कलिंगा पुरस्कार से उन्हें सम्मानित किया। युवा विज्ञान लेखक मनीष मोहन गोरे ने भारतीय विज्ञान की इस जीवित किवदंती डॉ. नार्लीकर से विज्ञान लोकप्रियकरण को लेकर उनसे मन की बात की है जिसे यहां उसी रूप में अविकल प्रकाशित किया जा रहा है।

आप मूलतः खगोल विज्ञानी हैं मगर आपका झुकाव विज्ञान लेखन की ओर कैसे और क्यों हो गया?

मैंने देखा कि जन सामान्य को वैज्ञानिक सिद्धांतों और तथ्यों के बारे में समझाना एक मजेदार काम है। मजेदार इसलिए क्योंकि एक सामान्य जागरूक आदमी में बच्चों की सी जिज्ञासा रहती है और वे हमेशा ज्ञान–विज्ञान की बातें जानने–समझने को उत्सुक रहते हैं। विज्ञान लोकप्रिकरण के लिए मैं अपने शिक्षक फ्रेड हॉयल के तौर–तरीके से सर्वप्रथम प्रेरित हुआ। खगोलविद् फ्रेड हॉयल मेरे शोध मार्गदर्शक रहे हैं और वे एक सफल विज्ञान संचारक भी थे।

वैज्ञानिक आमतौर पर लोक विज्ञान लेखन से कतराते हैं। मेरा ख्याल है, अगर वैज्ञानिक और अनुसंधानकर्ता आम जन के लिए लिखते हैं तो वह अधिक प्रामाणिक एवं प्रभावकारी होगा। इस पर आपका विचार मैं जानना चाहूंगा।

मैं आपकी इस बात से सहमत हूं कि वैज्ञानिक खोजों और इस क्षेत्र की उपलब्धियों से जुड़ी जानकारी देने के मामले में वैज्ञानिक एक सामान्य विज्ञान लेखक से अधिक प्रामाणिक लेखक तथा व्याख्याकर्ता होंगे। दुर्भाग्यवश अनेक वैज्ञानिकों के पास लोकविज्ञान लेखन (पॉपुलर साइंस राइटिंग) के लिए बिल्कुल भी समय नहीं है या आमजन के स्तर का लेखन करने की क्षमता वे अपने भीतर नहीं पाते हैं।

संस्कृति, धर्म, भाषा आदि अनेक दृष्टिकोणों से भारत एक

विविधता से भरा देश है। यहां पर धार्मिक वर्जनाएं बलवती हैं और ऐसे परिदृश्य में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास करना दिवास्वप्न के समान जान पड़ता है। भारतीय जनमानस में वैज्ञानिक मति उत्पन्न करने और एक वैज्ञानिक भारत का निर्माण करने का क्या कोई रास्ता आपको दिखता है?
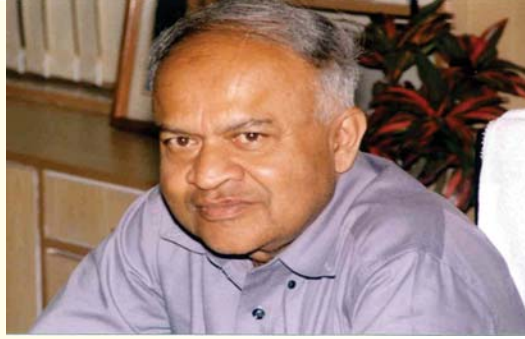
मैं यहां पर अपनी असहमति दर्ज करना चाहूंगा। यह सच है कि हमारे देश में लोग अनेक ऐसे परंपरागत विचारों में विश्वास रखते हैं जो आज के जमाने में निरर्थक साबित हो चुके हैं। मगर गहरे में जाकर अगर हम लोगों को समझने की कोशिश करें तो हम पाएंगे कि इनमें से अधिकांश लोग आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी की उपलब्धियों को जानने के लिए उत्सुक हैं। वैज्ञानिकों और विज्ञान संचारकों को आमजन की इसी उत्सुकता को एक दिशा देने की जरूरत है।

विज्ञान और ज्योतिष के द्वंद्व पर आप क्या कहना चाहेंगे?

यह एक परंपरागत विश्वास है कि ग्रहों की बदलती स्थितियाँ मनुष्य को प्रभावित करती हैं। इसे ज्योतिष शास्त्र कहते हैं और इसका आरंभ ग्रीक में हुआ था जहां से यह भारत में आया। चूंकि आकाश में ग्रह स्वेच्छा से अपनी स्थितियों को बदलते रहते हैं ('लैनेट' शब्द ग्रीक भाषा से आया है जिसका अर्थ है 'घुमक्कड़')। ग्रहों के इसी प्राकृतिक स्वभाव के कारण यह विश्वास पनपा कि ग्रहों के पास विशेष शक्ति होती है और वे मनुष्य पर प्रभाव डालने के लिए इन शक्तियों का इस्तेमाल करते हैं! आगे चलकर जब दुनिया में विज्ञान का प्रभाव बढ़ा तो खगोल विज्ञानियों और भौतिक विज्ञानियों ने ग्रहीय गति के वास्तविक कारण का पता लगाया। यह विज्ञानियों की ही देन है कि आज हम ग्रहों की गति की व्याख्या कर सके हैं और यह समझ पाए हैं कि अंतरिक्ष में विचरते ये यायावर ग्रह गुरुत्व नियम से आबद्ध होते हैं। वर्तमान समय में ग्रहों की स्थितियों का पूर्वानुमान सटीकता से करने में इसी नियम का न सिर्फ प्रयोग किया जाता है बल्कि मंगलयान जैसे स्पेसक्रॉफ्टों को ग्रहों पर प्रक्षेपित करने में भी इसे ही उपयोग में लाया जाता है। ज्योतिष के समर्थकों का विश्वास खंडित करने के लिए उन्हें खगोल विज्ञान से जुड़ी इन सभी प्रामाणिक बातों की जानकारी दिए जाने की जरूरत है। मुझे उम्मीद है कि ऐसा जरूर होगा मगर इसमें कुछ समय लगेगा और वैज्ञानिकों को इन तथ्यों को विभिन्न मंचों से उजागर करना चाहिए।

क्या आपको लगता है कि कार्यशालाओं या प्रशिक्षण कार्यक्रम के माध्यम से विज्ञन संचारकों को तैयार किया जा सकता है? विज्ञान लोकप्रियकरण में संलग्न सरकारी और गैर-सरकारी प्रयासों को आप किस तरह मूल्यांकन करेंगे?

हाँ, कार्यशालाओं और प्रशिक्षण स्कूलों की जरूरत है। विज्ञान लोकप्रियकरण के लिए और अधिक अवसरों के सृजन हेतु न्यूज मीडिया को आगे आने की जरूरत है। सरकार और गैर सरकारी संस्थाओं के द्वारा विज्ञान लोकप्रियकरण की दिशा में कुछ काम किया भी जा रहा है मगर वह समुद्र में बूंद के समान है। अगर देश के हर शहर में स्थानीय उद्योग या भारत सरकार की विज्ञान प्रसार जैसी संस्थाओं के द्वारा समर्थित न्यूनतम एक गैर सरकारी संगठन भी हो, तो परिदृश्य बदल सकता है।

विज्ञान के प्रचार-प्रसार के उद्देश्य से आपकी दृष्टि में कौन सी विधाएं उपयुक्त होती है?

विज्ञान लेख, रेडियो वार्ता, टीवी कार्यक्रम और लोकप्रिय व्याख्यान जैसी विधाएं अधिक प्रभावकारी होती हैं। विज्ञान संचारकों/लेखकों को विज्ञान कथा को भी अपनाना चाहिए।

आपने भी विज्ञान कथाएं लिखी हैं। विज्ञान कथा लिखने की प्रेरणा आपको कैसे मिली? मैंने सुना है कि आपने पहली विज्ञान कथा एयरपोर्ट पर फ्लाइट की प्रतीक्षा के दौरान लिखी थी। एयरपोर्ट पर कहानी लिखने के लिए आप कैसे उद्वेलित हुए?

मेरे शिक्षक फ्रेड हॉयल से मैं विज्ञान कथा लेखन के लिए प्रेरित हुआ था। उन्होंने अत्यंत उच्च्व कोटि के विज्ञान कथात्मक उपन्यास और कहानियां लिखे हैं। उनकी रचनाएं पढ़कर आप विज्ञान के रोमांच को महसूस कर सकते हैं। एयरपोर्ट पर मेरी पहली विज्ञान कथा का लिखा जाना समय प्रबंधन का महज एक उदाहरण है। एयरपोर्ट पहुंचने पर अगर आपको मालूम होता है कि आपकी फ्लाइट दो घंटे देर है तो आपको इस तरह सोचना चाहिए कि ये दो घंटे आपको खास दिए गए हैं जिसका सदुपयोग आप विज्ञान लेखन के लिए कर सकते हैं। विज्ञान कथा की खास बात ये है कि इसमें आम पाठक को कहानी की शक्ल में आसानी से विज्ञान की बातें समझ आ जाती हैं और कहानी के कुतूहल से पाठक रोमांचित भी होता है।

देखने में आया है कि भारतीय विद्यार्थी विज्ञान में अधिक रूचि नहीं ले रहे हैं। उन्हें विज्ञन की धारा से जोड़ने और वैज्ञानिक जागरूकता का माहौल तैयार करने में क्या विज्ञान संचारक किसी तरह अपनी भूमिका अदा कर सकते हैं?

हाँ मनीष जी! आपका कहना लाजमी है। हमारे स्कूलों में विज्ञान को ठीक से नहीं पढ़ाया जाता है और परीक्षाओं में भारी-भरकम सवाल दे दिए जाते हैं। इस तरह की शिक्षा व्यवस्था के चलते बच्चों के दिमाग में विज्ञान को लेकर यह धारणा बन जाती है कि ये विषय याद करो और परीक्षा के बाद भूल जाओ। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि असंख्य होनहार युवा इस कारण विज्ञान से विमुख हो जाते हैं। देश में भारतीय विज्ञान शिक्षा एवं अनुसंधान संस्थान (आईआईएसईआर) जैसे संस्थान सही दिशा में उठाए गए उचित कदम हैं और हमें उम्मीद करना चाहिए कि ऐसे प्रयासों से स्थिति में सुधार आयेगा।

❑❑❑

विज्ञानकथा

कृष्ण विवर

जयंत विष्णु नार्लीकर

''यह कम्प्यूटर तो बहुत ही परेशान कर रहा है यार!'' कॉफी के प्याले में चम्मच चलाते हुए, प्रकाश बड़ी झल्लाहट से बोला! ''पिछले हफ्ते से कम से कम पचास बार पूछ चुका हूँ। पर, वह एक ही जवाब पर अड़ा हुआ है।''

"क्या कहता है। तुम्हारा कम्प्यूटर?'' संजय ने भोला बनते हुए पूछा! वह शुद्ध गणित का विद्यार्थी था। अतः कम्प्यूटर को कुछ तुच्छ भाव से देखता था। कोई चित्रकार किसी पुताई करने वाले को जिस प्रकार से देखता है, बस वैसे ही।

"कम्प्यूटर कहता है कि मेरे मूल सिद्धांत ही गलत हैं। मैंने सोचा था कि 'प्रॉफ' द्वारा दिया गया डेटा कम्प्यूटर के सुपुर्द कर दूँगा और सारा दिन हाइकिंग टूर पर निकल जाऊँगा। पर 'मैन प्रपोजेज एन्ड कम्प्यूटर डिसपोजेज' यही सत्य है।''

यर्किस वेधशाला से गुरु ग्रह के बारे में मिली नई जानकारी, कम्प्यूटर में जांच कराने के लिए, प्रकाश के पास आई थी।

''तुमने जोड़-बाकी में गड़बड़ कर दी होगी।'' यूँ भी फिजिक्स वालों का गणित कच्चा ही होता है। प्रत्येक गणित वाले की यही धारणा होती है, उसी बात को बड़े विश्वास से संजय ने कह डाला।

''देखो मेरे जोड़-बाकी का सवाल ही नहीं उठता! यदि गलती होगी भी तो न्यूटन तथा आइन्स्टीन की समझो। ग्रहों की गति उन्हीं के सिद्धांतों पर तय की जाती है। यह बात तुम जैसे अल्पज्ञानी को पता होनी चाहिए और यह कम्प्यूटर कहता है कि यह जानकारी सिद्धांतों के अनुसार नहीं है। प्रॉफ को विश्वास है कि डेटा गलत नहीं है। पता नहीं गड़बड़ कहाँ है?" प्रकाश शिकायत भरे स्वर में बोला।

मेरे विचार से तुम खगोल शास्त्र के दशावतारों का जाप करो, ताकि तुम्हें प्रेरणा मिल सके! मजाक में संजय का मंत्र शुरू हो गया। ''बोलो, न्यूटनाय नमः, हैल्य नमः, हर्शलाय नमः, एडमूसाय नमः, एडिंग्टनाय नमः....,"

''एडम्स... क्या पते की बात कही यार। बालादपि सुभाषितं ग्राह्यम''! संजय की पीठ पर धौल जमा कर, कॉफी वहीं छोड़कर प्रकाश तेजी से निकल गया।

संजय ठगा सा देखता रहा, इंस्ट्टियूट में घनचक्कर बने रहने का हक सिर्फ गणित वालों का था। प्रकाश का पागलपन उसे रास नहीं आया।

इंस्ट्टियूट में खगोलशास्त्र के प्रोफेसर रमेश अग्रवाल ही 'प्रॉफ' हैं। ग्रहों तथा उपग्रहों के भ्रमण के गणित 'सेलेस्टियल मैकेनिक्स' में वे दुनिया के जाने-माने व्यक्ति थे। इक्कीसवीं सदी के आरंभ में इस विषय में अनुसंधान करने वाले, बहुत कम वैज्ञानिक थे। यदि इस विषय में कोई गंभीर प्रश्न सामने आता तब उससे संबंधित खगोलशास्त्री, अग्रवाल जी के पास दौड़ जाते। इसीलिये गुरु ग्रह के बारे में प्राप्त नई जानकारी उनके पास भेज दी गई थी।

प्रकाश पावटे उनका प्रिय विद्यार्थी था। नई जानकारी का निरीक्षण करने के पश्चात् अधिक जाँच हेतु उन्होंने उसे प्रकाश के पास भेज दिया था। 'अंतिम निष्कर्ष निकालने से पहले मुझसे न मिलना' ऐसी हिदायत उसे देने की जरुरत भी नहीं थी।

इस बात को एक हफ्ता गुजर गया, और प्रकाश का कोई पता नहीं। इस बात से वे आश्चर्य में डूब गए। उन्हें खुद उससे जा कर मिलना होगा, ऐसा वे सोच ही रहे थे कि वही दौड़ता हुआ उनके कमरे मे दाखिल हुआ। कम्प्यूटर द्वारा दिए गए जवाबों का सारा पुलिंदा उसने टेबल पर पटका और जल्दी-जल्दी कुछ बताने लगा। उसकी एक भी बात प्रोफेसर साहब की समझ में नहीं आई। इससे पहले उन्होंने प्रकाश को कभी इतना उत्तेजित नहीं देखा था।

''आराम से! आराम से अपनी बात कहो। प्रति मिनट सिर्फ एक ही वाक्य बोलो, तब ही मैं कुछ समझ पाऊंगा।'' वे शांति से बोले।

"सर! सन् 1846 के आस-पास एडम्स ने यूरेनस ग्रह की गति में अनियमितता पा कर यूरेनस के निकट रहे नेपच्यून ग्रह को खोज निकाला। मुझे विश्वास है कि गुरु के निकट किसी ग्रह जैसी ही कोई वस्तु आ गई है। कम्प्यूटर के जवाब, इसी बात की पुष्टि कर रहे हैं।''

बिना सबूत ऐसी घोषणा न करने के नियम का पालन, प्रोफेसर साहब तथा उनके विद्यार्थी अवश्य करते थे। फिर भी प्रकाश का कथन इस कदर अनपेक्षित था कि उन्होंने स्वयं ही, इसकी जांच करने का निर्णय किया। अगले दस दिन वे दोनों इसी काम में जी जान से जुटे रहे और खगोलशास्त्रीय पद्धतियों के सहारे इस कथन की सत्यता की पुष्टि की।

लंदन से प्रकाशित होने वाली साप्ताहिक विज्ञान पत्रिका 'नेचर' में अग्रवाल एवं प्रकाश पावटे का लेख प्रकाशित हुआ और खगोल वैज्ञानिकों के बीच खलबली मच गई। गुरु की गति में उत्पन्न अनियमितता का कारण उसके निकट मौजूद नई वस्तु ही है। यही उस लेख का सारांश था।

उस नवीन वस्तु का अस्थायी संबोधन 'क्ष' तय हुआ। उस का घनत्व, गति, गुरु से दूरी आदि की उस लेख में जानकारी दी गई थी।

'क्ष' को लेकर अनेक तर्क किए जाने लगे। किसी के अनुसार मंगल तथा गुरु के दरम्यान घूमने वाले अनेक एस्टराइड्स में से कुछ आए होंगे।

दुनिया की तमाम वेधशालाओं में 'क्ष' को प्रत्यक्ष रूप से देखने की जैसे होड़ लग गई। परन्तु कुछ भी दिखाई नहीं दिया।

इस बात को तीन साल हो गए। 'क्ष' कहीं दिखाई नहीं दिया पर उसके अस्तित्व के प्रति वैज्ञानिकों को दृढ़ विश्वास था। अतः अब 'क्ष' की ओर एक आकाशयान भेजने की बात तय हो गई। यह बात इसलिए महत्वपूर्ण थी, क्योंकि सदियों से मान्यता प्राप्त गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांतों का भविष्य ही इस खोज पर निर्भर था। 'क्ष' को भारतीय वैज्ञानिकों ने खोजा था। इसलिए आकाशयान की उड़ान के लिए भारत के 'श्रीहरिकोट्टा' बेस को चुना गया और उस यान पर प्रवासी वैज्ञानिक के तौर पर जाने का सम्मान प्रकाश पावटे को मिला। उनके साथ एकमात्र सहप्रवासी के रूप मे अंतरिक्ष यान के अमरीकन कैप्टन जान फाकनर को चुना गया। वर्ल्ड स्पेस आर्गनाइजेशन (WSO) के भारत से, गुरु की ओर जाने वाला यह दसवाँ यान था। इसीलिए उसका सांकेतिक नंबर डब्ल्यू.आई.जे. 10 था। प्रस्थान के लिए उचित दिन तय करने के पश्चात् डब्ल्यू आई जे 10 की उड़ान की तैयारियाँ होने लगीं।

तीन वर्ष की इस अवधि के दरम्यान प्रकाश पावटे तथा संजय जोशी ने पीएच-डी. हासिल की तथा अपने ही इंस्टिट्यूट में फेलो बन गए। संजय की शादी हुए एक साल बीत गया। प्रकाश अभी तक कुँवारा ही था पर दोनों की गहरी दोस्ती पहले जैसी ही बनी रही। गपशप, दिल्लगी होती रहती। अंतरिक्ष की उड़ान के एक हफ्ते पहले संजय की नवजात बेटी का नामकरण समारोह था। बालिका के लिए एक, बड़ा सा खिलौना, टेडीबियर लेकर प्रकाश, संजय के घर पहुँचा।

"भाभी जी, क्या नाम रखा बेटी का?'' टेडीबियर देते हुए उसने पूछा।

"अनुपमा! गोद में लेंगे क्या इसे?"

"ना बाबा! दूर से ठीक है। शिशुओं को हाथों में लेने से डरता हूँ मैं।''

"तब दूर से बताएँ, किस पर गई है हमारी बेटी?"

"आप दोनों पर!'' प्रकाश ने डिप्लोमैटिक जवाब दिया। ''बड़ी प्यारी है बच्ची, अट्ठारह-बीस साल बाद देखना कितने रोमियो आगे-पीछे घूमेंगे इसके''

"आप ही रुक जाइये अट्ठारह बीस साल। हम आपको ही दामाद चुन लेंगे।''

अनुपमा की माँ ने दामाद को खोजना आरंभ कर दिया। पर, शादी की बात छिड़ते ही, फिर चाहे अट्ठारह सालों के बाद की बात क्यों न हो, प्रकाश शरमा जाता। उसने आनन-फानन में वहाँ से बिदा ली और नौ दो ग्यारह हो गया।

"तुमने तो बेकार ही डरा दिया ब्रह्मचारी महाराज को!'' संजय पत्नी से बोला!

डब्ल्यू.आई.जे.10 की यात्रा नियत समय पर आरंभ हो गई।

पृथ्वी पर बने अनेक स्टेशनों से यान का संपर्क बना रहा। संदेशों का आदान-प्रदान नियमित रूप से हो रहा था, परन्तु अंतरिक्ष में गुरु के आस-पास पहुँचने पर, परिस्थिति में काफी बदलाव नजर आए। प्रकाश ने मिशन कंट्रोल की ओर निम्नलिखित संदेश भेजा।

''लगता है 'क्ष' के परिक्षेत्र में पहुँच गया हूँ। पर, अभी तक कुछ भी दिखाई नहीं दिया। हाँ 'क्ष' की दिशा में अनेक वस्तुएँ जैसे मीटिओराइट, एस्ट्राइड आदि बड़ी गति से जाती हुई दिखाई दे रही हैं। यदि 'क्ष' में चमक होती तो शायद यह कहता मैं कि भगवद्गीता में दीये की लौ पर निछावर होने वाले पतंगों के वर्णन ....''

''ठीक है। ठीक है, यूँ कवि कल्पनाओं में मत उलझो। तुम्हारा अगला कदम क्या होगा?'' कंट्रोल ने टोका।

''अजी नाभिक विस्फोट को देखकर ओपेनहायमर को गीता का स्मरण हो आया था परन्तु मुझे यहाँ जो दिखाई दे रहा है या जो दिखाई नहीं दे रहा, वह ऐसे विस्फोट से अधिक विचित्र है। मैं इसे पास से देखना चाहता हूँ।'' प्रकाश का संदेश था।

"स्वीकृति है पर यदि खतरा महसूस हो तो तुरंत लौट आना होगा।''

"अवश्य! मैं डब्ल्यू.आई.जे.10 का पूरा ध्यान रखूँगा।'' प्रकाश द्वारा कंट्रोल को भेजा गया यह आखिरी संदेश था।

प्रकाश की आज्ञानुसार कैप्टन जॉन ने यान को 'क्ष' की दिशा में मोड़ दिया। धीरे-धीरे यान की गति तेज होती गई। "कैप्टन इतनी तेजी से मत चलो। हमें उसके अधिक निकट नहीं जाना है।" प्रकाश ने सचेत किया।

"मैंने तो इंजन कब से बंद कर रखा है। पता नहीं गति तेज क्यों हो गई?" गतिमापक की ओर चिंता से देखते हुए जॉन ने जवाब दिया।

गतिमापक की सुई निरंतर आगे बढ़ रही थी।

प्रकाश के दिमाग में एक विचार बिजली की तरह कौंध गया। वह यान में स्थित कम्प्यूटर की ओर दौड़ गया। अभी तक उपयोग में न लाया हुआ एक प्रोग्राम उसने कम्प्यूटर में डाला। उस पर लेबल लगा था....... 'कृष्णविवर '।

यान की वेगवृद्धि की जानकारी को पंच करने के बाद कंप्यूटर में डाला। पल भर में कंप्यूटर ने छपा हुआ जवाब प्रस्तुत कर दिया। उसे पढ़ते ही प्रकाश तेजी से जान के निकट पहुँचा।

"जॉन, जॉन, 'क्ष' के बारे में जानकारी मिल गई है। मेरे हिसाब से अब बड़ी देर हो गई है। क्ष तो कृष्णविवर है। और हम, बड़ी तेजी से उसके करीब पहुँच रहे हैं।" कृष्णविवर यानी एक बहुत ही आकुंचित वस्तु है जिसका गुरुत्वाकर्षण इतना अधिक होता है कि उसमें से प्रकाश बाहर की ओर निकल ही नहीं पाता और इसीलिए 'क्ष' पृथ्वी पर बसी वेधशालाओं को, या उसके निकट पहुँचे जॉन एवं प्रकाश को भी दिखाई नहीं दिया।

आइन्स्टाइन का गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत कृष्णविवर की पुष्टि करता था पर बहुत ही थोड़े वैज्ञानिकों को इनकी जानकारी हो पाई थी। अतः बहुत ही थोड़े वैज्ञानिकों ने 'क्ष' को कृष्णविवर माना था पर इस विचार को अन्य सभी वैज्ञानिकों ने अनदेखा कर दिया।

जवाब क्या है, यह जानते हुए भी जॉन ने पूछा ''अब आगे क्या होगा? शायद हम 'क्ष' के जबड़े में जा गिरेंगे। आशा की एक धुंधली सी किरण बाकी है। हमारी यात्रा का मार्ग क्ष के केन्द्रबिंदु से न होकर उसके बाहरी घेरे पर निश्चित किया गया है। कम्प्यूटर निश्चित रूप से बता नहीं पाएगा पर मैं उसे चलाता हूँ। तब तक तुम कन्ट्रोल से संपर्क बनाओ। जॉन ने कन्ट्रोल को संदेश भेजने के प्रयत्न किए पर कोई फायदा नहीं हुआ। कंट्रोल की ओर से तेज गति

से उच्चारित शब्द आ रहे थे जिन्हें समझ पाना मुश्किल था, तभी प्रकाश वहाँ आया। उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं।

''जॉन, कम्प्यूटर ने हमारी मृत्यु की बात कही है। उसके अनुसार हम 'क्ष' के पास पहुँचकर करीब दस लाख परिक्रमाएँ करेंगे और फिर अंदर गिर जाएँगे। कंट्रोल से क्या संदेश आया है?'' जॉन ने उसे अपना अनुभव कहा। कंट्रोल से संपर्क टूट चुका था सो अब सभी निर्णय स्वयं ही लेने होंगे, यह प्रकाश की समझ में आया।

तब प्रकाश बोला, ''आशा की एक छोटी किरण बाकी है। कृष्णविवर के नजदीक अस्थिर गोलाकार कक्ष के निकट से, हम गुजरने वाले हैं। उस मार्ग की अस्थिरता का हमें लाभ लेना होगा। उचित समय पर एक रॉकेट के फायर करने पर आसपास निर्मित अस्थिरता की वजह से शायद हमारा यान बाहर फेंका जा सकेगा। यह एक संभावना मात्र है। यदि ऐसा घटित होता है। तो अच्छा ही है वर्ना दुनिया को राम-राम कहने का समय आ गया है। अब हमें शीत कक्ष में प्रवेश करना होगा।"

"शीत कक्ष में प्रवेश? किसलिए'' जॉन ने पूछा। "देखो, जैसे-जैसे हम क्ष के निकट होते जाएंगे। उसके गुरुत्वाकर्षण की टाइडल पावर हमें अधिकाधिक प्रतीत होगी। इसी टाइडल पावर की वजह से चन्द्र का गुरुत्वाकर्षण पृथ्वी पर समुद्र में ज्वार-भाटे के समय प्रतीत होता है।

"अब कल्पना करो कि क्ष की ओर जाते समय तुम्हारा सिर 'क्ष' के निकट है और पैर दूरी पर है। ऐसी स्थिति में क्ष के गुरुत्वाकर्षण का जितना प्रभाव तुम्हारे सिर पर होगा उतना पैरों पर नहीं। तब क्या होगा? तब शरीर पर सिर से पांव तक खिंचाव पैदा होगा।" अब जॉन की बुद्धि काम करने लगी थी।

"मेरा शरीर सिर से लेकर पैरों तक खींचा जाएगा।" जॉन ने कहा। "बिल्कुल ठीक! और यह खिंचाव इतना अधिक होगा कि हम उसे सह ना पाएँगे। अब यदि हम शीत में जमे होंगे तब शायद हमारा शरीर उसे सह लेगा।'' प्रकाश ने समझाया।

तुम आकाशयान को स्वयंचलित स्थिति में रख देना ताकि कंप्यूटर उसे पृथ्वी की दिशा दिखा सकेगा। यदि हमारा नसीब बलवान होगा तब बेस पर मौजूद लोग हमें जगा देंगे। सारी तैयारी कर लेने के पश्चात् शीत कक्ष में प्रवेश करने से पहले दोनों ने आकाश का दर्शन किया। तारों का समूह, विशेष तेजोमय हो चमक रहा है, ऐसा उन्हें लगा।

क्या उनके लिए दुनिया का यही अंतिम दर्शन था?

जब श्रीहरिकोट्टा बेस पर डब्ल्यू.-आइ.-जे.-10 नामक आकाशयान उतरा तब वहाँ उपस्थित सभी वैज्ञानिक चकित रह गए। इस नाम के किसी यान का उन्हें स्मरण तक न था। खास बात तो यह थी कि इस यान के आने की पूर्वसूचना भी न मिली थी। इस अचानक आए अनिमंत्रित यान की गहरी जाँच की गई। अन्दर गहरी नींद में डूबे दोनों कुंभकर्णों को बाहर निकाला गया। उन्हें मेक्सिमम सिक्युरिटी मेडिकल सेक्शन (एम.एस.एम.एस.) में भेज दिया गया। बेस पर मौजूद सभी लोग इन दोनों के नाम तथा चेहरों से पूर्णतया अनभिज्ञ थे।

"जरा आराम से। डॉक्टर साहब ने आपको हिलने-डुलने तथा सोच-विचार करने की मनाही की है। एम. एस. एम. एस. की परिचारिका अनुपमा, प्रकाश से कह रही थी। यहाँ के प्रमुख वैज्ञानिक जल्दी ही आप से भेंट करेंगे। उन्हीं से कह दीजिये सारा कुछ!''

"मेरे अपने एक-दो मित्रों को कम से कम फोन तो करने दीजिए। मैं कुशल हूँ इतना तो कहने दें। देखिए, मेरी यह आटोमैटिक घड़ी बता रही है कि मैं पूरे तीन साल बाद लौटा हूँ। वे लोग चिंता में पड़ गए होंगे कि मैं कहाँ गायब हो गया।'' ''तीन साल?'' प्रकाश की बात सुनकर बेस के प्रमुख वैज्ञानिक डॉ. रामास्वामी ने पूछा जो कमरे में आ रहे थे। "तीन वर्षों के पहले, यहाँ से कोई मानव वाले यान, नहीं भेजे गए। बल्कि पाँच साल से हम स्वयंचलित यंत्रों वाले मानव रहित यान ही भेज रहे हैं।"

"बिल्कुल असंभव! आप अपने रिकार्ड की जाँच करें।" प्रकाश आश्चर्य से चीखा। मेरी घड़ी के अनुसार मैं तथा जॉन फाकनर, ठीक तीन वर्ष पंद्रह दिनों पहले गुरु की दिशा में निकल पड़े थे। जॉन से पूछें अथवा प्रोफेसर रमेश अग्रवाल जी से संपर्क करें ताकि आप को यकीन हो जाए।''

''प्रोफेसर साहब तो अब रिटायर हो गये हैं। पर, हम उनसे संपर्क स्थापित करने की कोशिश करेंगे।'' रामास्वामी बोले। प्रकाश का दिमाग चकरा गया। जिस समय वह डब्ल्यू. आई.जे.-10 से प्रवास हेतु निकला था तब अग्रवाल जी चालीस की कगार पर थे। उसने डरते-डरते पूछा, ''कौन सा सन् चल रहा है?''

इसके जवाब में रामास्वामीजी ने उसके हाथ में उसी दिन का अखबार थमा दिया। उस पर लिखी तारीख को पढ़ कर उसे गश आ गया। वह पूरे बीस वर्षों बाद पृथ्वी पर लौटा था।

प्रकाश को सामान्य होने में करीब दो हफ्ते लगे। इस कार्य में नर्स अनुपमा बहुत सहायक सिद्ध हुई और उस ब्रह्मचारी की विकेट डाउन होने के आसार नजर आने लगे। प्रेम की इस आँखमिचौली में अंतरिक्ष-यात्रा का नाम भी न निकले, डॉ. द्वारा दी गई सख्त हिदायत का अनुपमा ने पूरे मनोयोग से पालन किया। प्रकाश के स्वस्थ होते ही रामस्वामी जी ने उसकी अग्रवालजी से भेंट करवाई।

तब अग्रवालजी ने सर्व प्रथम प्रकाश के सकुशल लौटने के लिए उसे बधाई दी तथा उसे अनुकूल वधू के मिलने की भी बधाई दी। फिर उन्होंने कालहरण का खुलासा किया। कृष्णविवर के प्रखर गुरुत्वाकर्षण का ही सारा असर था। निद्रावस्था में कृष्णविवर के चारों ओर चक्कर लगाते समय कालमापन के अनुसार एक सेकंड की अवधि ही पर्याप्त थी क्योंकि गुरुत्वाकर्षण ने उनके काल की गति को करीब-करीब शून्य कर दिया था। उस एक सेकंड की अवधि में बाकी की दुनिया सत्रह साल आगे निकल गई। जॉन तथा प्रकाश की बीस वर्षीय तरुणाई वैसी ही बनी रही। आइन्स्टाईन की रिलेटिविटी के जीते-जागते उदाहरण ये दोनों थे।

''तब संजय कहाँ है? मुझे देखकर उसे जबर्दस्त झटका लगेगा।''

हंसता हुआ प्रकाश बोला।

''संजय ....कौन संजय?'' अनुपमा ने पूछा।

''संजय जोशी मेरा परम मित्र। हम दोनों एक ही इंस्टिट्यूट में अनुसंधान का काम कर रहे थे। कई बार मेरा उसका विवाद.... अरे! रो क्यों रही हो?''

''वे मेरे पिता थे। उनका तथा माँ का विमान दुर्घटना में देहान्त हो गया.... और मैं अनाथ हो गई।'' अनुपमा ने सुबकते हुए कहा।

अनुपमा की माँ द्वारा किया गया ''दामाद अनुसंधान'' सफल हो गया था.... कृष्णविवर की कृपा से।

jvn@iucaa.in

चंद्र विजय की 50 वीं वर्षगांठ पर विशेष

चंद्र विजय के पचास वर्ष

देवेन्द्र मेवाड़ी

देवेंद्र मेवाड़ी भारत के एक प्रतिष्ठित और लोकप्रिय विज्ञान लेखक हैं। उनके लिए विज्ञान लेखन एक मिशन है। विगत पचास वर्षों से भी अधिक समय से वह हिंदी में लोकप्रिय विज्ञान लेखन करते आ रहे हैं। वैज्ञानिक विषयों पर देश की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में नियमित लेखन करते हुए मेवाड़ी जी के अभी तक 1500 से अधिक लेख तथा अठारह मौलिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुके हैं। विज्ञान लोकप्रियकरण का एक मुख्य उद्देश्य समाज से अंधविश्वास और रुढ़ियों का उन्मूलन करना है जिसे देवेन्द्र मेवाड़ी अपने विज्ञान लेखन और विज्ञान संचार से पूरा कर रहे हैं। वे दिल्ली में रहते हैं और विज्ञान को जन-जन तक पहुँचाने के लिए वे देशभर में भ्रमण करते हैं। विद्यार्थियों के बीच वे बहुत लोकप्रिय विज्ञान लेखक हैं।

आज से ठीक 50 वर्ष पहले 20 जुलाई 1969 को चांद की सतह पर मानव ने पहली बार अपने कदम रखे और इसके साथ ही उसने चांद पर विजय हासिल कर ली। उस दिन चंद्रयात्री नील आर्मस्ट्रांग ने 8 बज कर 26 मिनट पर पहले अपना बांया कदम चांद पर रखते हुए कहा था, ''यद्यपि मानव का यह छोटा-सा कदम है, लेकिन मानवता के लिए यह बहुत ऊंची छलांग है।'' सदियों से शीतल चांदनी बिखेरते, मानव मन को मोहते और उसकी कल्पनाओं में नए रंग भरते चांद से मनुष्य की वह पहली सीधी मुलाकात थी। उस दिन अपने सदियों लंबे इतिहास में मानव ने पहली बार पृथ्वी से बाहर ब्रह्मांड के किसी अन्य खगोलीय पिंड पर कदम रखे।

आइए, थोड़ा पीछे चलें। 16 जुलाई 1969 का दिन था। अमेरिका के अंतरिक्ष केंद्र केप केनेडी में अपोलो-11 अंतरिक्षयान चंद्रमा की ओर कूच करने के लिए लांचिंग पैड पर तैयार खड़ा था। यान के कमांडर नील ए.आर्मस्ट्रांग और उनके साथी अंतरिक्ष यात्री माइकल कोलिंस तथा एडविन ई.एल्ड्रिन यानी 'बज़ एल्ड्रिन' कॉकपिट में बैठे। फिर शक्तिशाली सैटर्न-5 राकेट भयंकर गर्जना के साथ, आग की लपटें छोड़ते हुए अपोलो-11 अंतरिक्षयान को लेकर चांद की ओर रवाना हो गया। उसके कमांड माड्यूल का नाम 'कोलंबिया' और चंद्रमा की सतह पर उतरने वाले चंद्रयान का नाम 'ईगल' रखा गया था।

यात्रा पूरी करके अपोलो-11 अंतरिक्षयान चंद्रमा की कक्षा में पहुंचा। माइकल कोलिंस ने कोलंबिया परिक्रमा यान की कमान संभाली और आर्मस्ट्रांग तथा एल्ड्रिन रेंग कर उससे जुड़े चंद्रयान ईगल में पहुंचे। फिर ईगल कोलंबिया से अलग हुआ। महत्वाकांक्षी अपोलो मिशन के तहत अपोलो-10 यान पहले ही परीक्षण करके चांद पर अपोलो-11 अंतरिक्षयान के उतरने के लिए उचित स्थान 'सी ऑफ ट्रैंक्विलिटी' की खोज कर चुका था और उसकी तस्वीरें पृथ्वी पर पहुंच चुकी थीं। तय कार्यक्रम के अनुसार नील आर्मस्ट्रांग ने रात 1 बज कर 47 मिनट पर चंद्रयान ईगल को, चांद की सतह पर चट्टानों से बचाते हुए 'सी ऑफ ट्रैंक्विलिटी' क्षेत्र में सफलतापूर्वक उतार दिया। दोनों अंतरिक्ष यात्रियों ने अपने पिट्ठू कसे और फिर वे चांद पर चहलकदमी करने को तैयार हो गए।

नील आर्मस्ट्रांग ने चंद्रयान का हैच खोला, पोर्च पर खड़ा हुआ और धीरे-धीरे सीढ़ी से उतर कर 8 बज कर 26 मिनट पर अपना बांया कदम चांद की सतह पर रखते हुए कहा, ''यद्यपि मानव का यह एक छोटा-सा कदम है, लेकिन मानवता के लिए यह बहुत ऊंची छलांग है।'' प्रथम अंतरिक्ष यात्री नील आर्मस्ट्रांग के चांद पर चरण रखने के उस दृश्य को दुनिया भर में करोड़ों लोगों ने अपने टेलीविजन सेटों पर देखा। फिर एडविन एल्ड्रिन बाहर निकला। उसने चांद की सतह पर एक लेसर परावर्तक उपकरण और भूकंपमापी रखा।

नील आर्मस्ट्रांग ने सतह पर अपना पहला कदम रखने के बाद कवियों की कल्पनाओं के उस चांद की सतह को निहारा और कहा, ''यहां आसपास बड़े-बड़े पत्थर दिखाई देते हैं। चंद्रमा की सतह बहुत सख्त है और यहां की मिट्टी रेगिस्तान जैसी है।'' एडविन एल्ड्रिन ने भाव विभोर होकर कहा, ''दृश्य बहुत सुंदर है। जहां हम उतरे हैं उससे कुछ दूरी पर हमें बैंगनी रंग की चट्टान दिखाई दी। सूर्य के प्रकाश में चांद की मिट्टी और चट्टानें चमक रही हैं। यह एक शानदार मगर बिल्कुल खामोश जगह है।''

इस पूरे घटनाक्रम के दौरान परिक्रमा यान 'कोलंबिया' चांद की सतह से 96 किलोमीटर ऊपर चंद्रमा की परिक्रमा करता रहा। उसकी बागडोर माइकल कॉलिंस संभाल रहे थे।

नील आर्मस्ट्रांग और एडविन एल्ड्रिन ने 2.5 घंटे तक चांद की सतह पर चहलकदमी की। फिर वे 21 किलो 700 ग्राम मिट्टी-पत्थर के नमूने लेकर चंद्रयान ईगल में वापस आ गए। थोड़ा आराम किया। जिस सीढ़ी से वे चांद पर उतरे थे, उसके पाए पर स्मृति चिन्ह के रूप में एक धातु-फलक लगाया। उस पर तीनों अंतरिक्ष यात्रियों और अमेरिका के राष्ट्रपति के हस्ताक्षर थे। साथ ही एक संदेश के शब्द भी उस पर खुदे हुए थे जिन्हें नील आर्मस्ट्रांग ने जोर से पढ़ा, ''यहां पृथ्वी ग्रह से आकर मानव ने चांद पर पहली बार अपने कदम रखे। जुलाई 1969। हम यहां समस्त मानव जाति के लिए शांति की कामना लेकर आए।''

21 जुलाई को ईगल ने आकाश में घूम रहे कोलंबिया कमांड माड्यूल की ओर उड़ान भरी। ईगल से निकल कर दोनों अंतरिक्ष यात्री कोलंबिया में पहुंचे। ईगल को वहीं छोड़ कर अपोलो-11 पृथ्वी पर सकुशल वापस लौट आया। उन तीनों अंतरिक्ष यात्रियों ने इस उड़ान से अंतरिक्ष यात्रा का नया इतिहास रच दिया। उस दिन मानव ने चंद्रमा पर विजय प्राप्त कर ली। 4 अक्टूबर 1957 में जब तत्कालीन सोवियत संघ ने अंतरिक्ष में पहला स्पूतनिक छोड़ा था, तब भला कौन जानता था कि अगले चंद वर्षों में ही मानव के चरण चांद तक पहुंच जाएंगे!

चांद से पृथ्वी की ओर लौटते समय अपोलो-11 अंतरिक्षयान से नील आर्मस्ट्रांग ने कहा, ''शुभ संध्या। मैं अपोलो-11 का कंमाडर बोल रहा हूं। करीब सौ वर्ष पहले जूल्स वर्न ने चांद की यात्रा पर एक पुस्तक लिखी थी। उसकी पुस्तक का अंतरिक्ष यान 'कोलंबियाड' फ्लोरिडा से अंतरिक्ष में छोड़ा गया और चांद की यात्रा पूरी करके प्रशांत महासागर में उतरा। आज के हमारे इस 'कोलंबिया' यान का भी कल प्रशांत महासागर में ही पृथ्वी से मिलन होगा।''

जूल्स वर्न ने अपने उपन्यास 'फ्रॉम अर्थ टु द मून' में सन् 1865 में चांद की सैर की कल्पना की थी। प्रसिद्ध विज्ञान कथा लेखक एच.जी.वेल्स ने भी अपना उपन्यास 'फर्स्ट मिन इन द मून' चांद की यात्रा पर लिखा था। भारत में केशव प्रसाद सिंह ने चांद की यात्रा पर 'चंद्रलोक की यात्रा' विज्ञान कथा लिखी थी जो सन् 1900 में प्रसिद्ध साहित्यिक पत्रिका 'सरस्वती' में छपी।

और हां, दूरबीन से पहली बार चांद को गैलीलियो ने 1610 में देखा था। तब उसने कहा था चांद की सतह उबड़-खाबड़ है। उसमें गड्ढे और उभार हैं, ठीक वैसे ही जैसे पृथ्वी पर पहाड़ और घाटियां हैं। खगोल वैज्ञानिक केप्लर का कहना था कि चांद पर जीवन है लेकिन वहां जीवन के रूप पृथ्वी से बिल्कुल भिन्न हैं। सन् 1833 में अंग्रेज खगोल वैज्ञानिक जॉन हरशेल ने चांद की सतह का सनसनीखेज वर्णन प्रकाशित किया। उसने कहा, चांद पर हरी-भरी घाटियां हैं। वहां नीली चट्टानों तथा सफेद रेतीले किनारों से घिरी नीली झीलें और कलकल बहती नदियां भी हैं!

लेकिन वे केवल कपोल-कल्पनाएं साबित हुईं। आज अंतरिक्ष यात्रियों और अंतरिक्ष यानों के स्वचालित वैज्ञानिक उपकरणों ने चांद के तमाम रहस्यों का अनावरण कर दिया है। अपोलो अंतरिक्ष यानों की श्रृंखला में ही 1969 से 1972 के बीच 12 अंतरिक्ष यात्री चांद पर उतरे। वे कुल मिला कर 166 घंटे चांद की सतह पर रहे और कुल 385 किलोग्राम चांद की मिट्टी और चट्टानों के टुकड़े पृथ्वी पर लाए।

असल में चंद्रमा तक सबसे पहले पहुंचने की दौड़ सन् 1960 के दशक में तब शुरू हुई जब तत्कालीन सोवियत संघ ने वोस्तोक-1 में यूरी गगारिन को न केवल सफलतापूर्वक अंतरिक्ष में भेजा बल्कि सकुशल पृथ्वी पर उतार भी लिया।

इससे पहले भी सोवियत संघ अपने 'लूना' अभियान से अंतरिक्ष में कई सफलताएं हासिल कर चुका था। उसका 'लूना-1' अंतरिक्षयान पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति से बाहर जाने वाला विश्व का पहला अंतरिक्षयान था। लूना-3 यान 1959 में चांद की परिक्रमा पूरी करके उसके दूसरी ओर की तस्वीरें पृथ्वी पर भेज चुका था। फरवरी 1966 में 'लूना-9' अंतरिक्षयान चांद की सतह पर सफलतापूर्वक उतर चुका था।

इसलिए तत्कालीन सोवियत संघ और अमेरिका दोनों ही महाशक्तियों में चांद पर

पहले पहुंचने की होड़ शुरू हो गई थी। 1968 में अमेरिका के 'अपोलो-8' समानव अंतरिक्ष यान ने चंद्रमा की परिक्रमा पूरी की। उसके बाद अपोलो-10 के अंतरिक्ष यात्रियों ने चांद की सतह पर उतरने की 'फुल ड्रेस रिहर्सल' की। वे चंद्रमा की सतह से 15,200 मीटर ऊपर तक पहुंच गए। और फिर, 20 जुलाई 1969 को वह ऐतिहासिक दिन आ पहुंचा जब अपोलो-11 अंतरिक्ष यान से नील आर्मस्ट्रांग और एडविन बज़ एल्ड्रिन चंद्र माड्यूल में चंद्रमा की तरह पर उतरे।

इसके बाद भी चांद पर उतरने का सिलसिला जारी रहा। अपोलो-12, अपोलो-14, अपोलो-15, अपोलो-16 और अपोलो-17 अंतरिक्ष यानों के भी दो-दो अंतरिक्ष यात्री चांद की सतह पर उतरे और चांद की मिट्टी-पत्थरों के नमूने पृथ्वी पर लाए। अपोलो अभियान में 1969 से 1972 के दौरान ६ अभियानों में कुल 12 अंतरिक्ष यात्री चांद की सतह पर उतरे और वहां से 385 किलोग्राम मिट्टी-पत्थर के नमूने लेकर पृथ्वी पर आए।

1972 के बाद चांद पर किसी भी देश का कोई अंतरिक्ष यात्री नहीं उतरा है। हालांकि, इन तमाम वर्षों के दौरान सौरमंडल के अन्य ग्रहों, उपग्रहों, क्षुद्रग्रहों, धूमकेतुओं और सूर्य के अध्ययन तक के लिए पृथ्वी से मानव निर्मित अंतरिक्षयान भेजे गए। लेकिन, ये सभी मानवरहित उड़ानें थीं।

उस दौर में तत्कालीन सोवियत संघ ने अपना मानवरहित लूना अभियान जारी रखा। उसका लूना-16 अंतरिक्ष यान 1970 में स्वयं चांद पर उतर कर वहां से मिट्टी-पत्थर के नमूने लेकर लौट आया। नवंबर 1970 में लूना-17 ने चांद की सतह पर चंद्रगाड़ी 'लूनाखोद-1' उतारी। लूना-22 ने 1974 में चंद्रमा के 2,842 चक्कर लगा कर एक नया रिकार्ड बना दिया और लूना-24 अगस्त 1976 में चांद की सतह पर करीब 2 मीटर गहराई से मिट्टी खोद कर उसका नमूना ले आया।

लूना-24 के इस अभियान के 14 वर्ष बाद चंद्रमा के अध्ययन के लिए 24 जनवरी 1990 को जापान ने अपना 'हितेन' अंतरिक्ष यान भेजा और चांद तक अंतरिक्ष यान भेजने वाला विश्व का तीसरा देश बन गया। हितेन ने चंद्रमा की परिक्रमा के लिए उसकी कक्षा में एक छोटा-सा खोजी यान 'होगोरोमो' छोड़ा।

नब्बे के ही दशक में 'बेलेस्टिक मिसाइल डिफेंस आर्गनाइजेशन' यानी बीएमडीओ और नासा ने अंतरिक्ष यात्रा पर बाह्य अंतरिक्ष के प्रभाव और चंद्रमा के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए 25 जनवरी 1994 को 'क्लीमेंटाइन' अंतरिक्ष यान भेजा। और, उसके बाद जनवरी 1998 में चंद्रमा की सतह के मानचित्रण, उसमें मौजूद खनिज तत्वों और ध्रुवों पर बर्फ का पता लगाने के लिए 'लूनर प्रॉस्पैक्टस' अंतरिक्ष यान भेजा। इक्कीसवीं सदी की शुरूआत के साथ चंद्रमा में अचानक अनेक देशों की रुचि बढ़ गई। इसके साथ ही चंद्रमा तक पहुंचने की नई दौड़ में एशियाई देश शामिल हो गए।

27 सितंबर 2007 को यूरोपीय अंतरिक्ष एजेंसी (ईएसए) ने चंद्रमा का अध्ययन करने के लिए 'स्मार्ट-1' अंतरिक्ष यान भेजा। जापान ने 2004 में 'लूनार-ए' यान भेजने की तैयारी की लेकिन तकनीकी समस्याओं के कारण उसे नहीं भेजा जा सका। लेकिन, 14 सितंबर 2007 को जापान ने चंद्रमा तक 'कागुया' यान को भेजने में सफलता हासिल कर ली। इसे 'अपोलो' मिशन के बाद का सबसे बड़ा चंद्र मिशन माना गया। अगले ही माह 24 अक्टूबर 2007 को चीन ने अपने चंद्र अभियान के तहत पहला अंतरिक्ष यान 'चेंगे-1' भेज दिया। अक्टूबर 2010 में उसने 'चेंगे-2' भी सफलतापूर्वक चंद्रमा की कक्षा में भेजा। चंद्रमा की इस दौड़ में भारत भी शामिल हो गया। भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) ने 22 अक्टूबर 2008 को 'चंद्रयान-1' को सफलतापूर्वक अंतरिक्ष में भेजा। वहां पहुंच कर उसमें से 'मून मिनरोलॉजी मैपर' उपकरण अलग होकर चांद की सतह से टकराया। चांद की सतह पर पूरे एशिया की यह पहली वस्तु पहुंची। इसने चांद पर हमारी उपस्थिति दर्ज की। चांद पर पानी की खोज चंद्रयान-1 की एक बड़ी उपलब्धि है। भारत अब जुलाई 2019 को चंद्रमा पर अपना 'चंद्रयान-2' भेजने की तैयारी कर रहा है जिसमें रोबोटिक चंद्रगाड़ी भी भेजने की योजना है।

अमेरिका ने 2009 में चंद्रमा के मानचित्रण के लिए उसकी कक्षा में 'लूनर रीकानेसेंस आर्बिटर' यान भेजा। उसके साथ ही चंद्रमा पर पानी की खोज के लिए 'लेक्रॉस' उपग्रह भी भेजा गया। 'लेक्रॉस' ने चंद्रमा के दक्षिणी ध्रुव में पानी का पता लगाया।

आज विश्व के कई देश चंद्रमा को सुदूर अंतरिक्ष यात्राओं के लिए अपना पहला पड़ाव बनाने का सपना देख रहे हैं। चंद्रमा बेशकीमती खनिज तत्वों का खजाना भी हो सकता है जिन्हें पृथ्वी पर लाकर उनका लाभ उठाया जा सकता है। सपने तो कल चांद पर बस्ती बसाने और जांबाजों के लिए धरती से चांद की सैर के भी देखे जा रहे हैं। देखना है, चांद की यह दौड़ मानव के माथे पर सफलता के कितने सेहरे बांधती है।

dmewari@yahoo.com

□□□

नये खोज की राह पर

चंद्रयान-2

विजन कुमार पाण्डेय

चंद्रमा का मानव इतिहास से बड़ा गहरा ताल्लुक रहा है। बच्चों को चन्दा मामा की कहानियां सुनाई जाती हैं, महिलायें चंद्रमा को देखकर अपने पति की लंबी आयु की कामना करती हैं और हमारे पुराणों में तो चंद्रमा को देवता का भी दर्जा दिया गया है। चन्द्रमा का इतिहास बहुत पुराना है, धरती पर इंसानों की उत्पत्ति से भी काफी पहले से चंद्रमा का अस्तित्व था। चंद्रमा, वैज्ञानिकों के लिए हमेशा एक अनसुलझी पहेली रहा था लेकिन जैसे जैसे विज्ञान बढ़ता गया वैसे वैसे चंद्रमा के कई रहस्य खुलते गये। 1969 में नील आर्मस्ट्रांग चंद्रमा पर पहुँचने वाले पहले वैज्ञानिक बने। अब तक कई वैज्ञानिक चाँद पर जा चुके हैं। भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) ने सोमवार को चंद्रयान-2 की सफल लॉन्चिंग कर एक इतिहास रच दिया। लेकिन इससे नासा में हलचल बढ़ गई है। उसे चंद्रयान-2 के नतीजों का बेसब्री से इंतजार है। नासा को अब यह चिंता सता रही है कि जब चंद्रयान-2 चांद के डार्क हिस्से साउथ पोल पर लैंड करेगा तो ऐसा करने वाला भारत पहला देश बन जाएगा। दूसरा, नासा को चंद्रयान-2 के नतीजों की रिपोर्ट साझा करने की जल्दबाजी इसलिए है कि वह अर्टेमिस मिशन के जरिए अगले कुछ वर्षों में साउथ पोल पर अपना अंतरिक्ष यात्री भेजने की तैयारी कर रहा है। उसे चंद्रयान-2 की खोज से अपने मिशन में बहुत मदद मिलने की उम्मीद है। इससे पहले अक्तूबर 2008 में इसरो ने चंद्रयान-1 उपग्रह को चांद पर भेजा था। हालांकि ये यान चंद्रमा पर उतरा नहीं था। पूरे विश्व की निगाहें भारत के इस अंतरिक्ष मिशन पर लगी हुई हैं। भारत दस साल में दूसरी बार चांद पर जाने वाला अपना मिशन पूरा करने जा रहा है। चंद्रयान-1 मिशन में सिर्फ ऑर्बिटर था, जो चंद्रमा की कक्षा में घूमता था। चंद्रयान-2 बेहद ख़ास उपग्रह है क्योंकि इसमें एक ऑर्बिटर है, एक 'विक्रम' नाम का लैंडर है और एक 'प्रज्ञान' नाम का रोवर है। इनके जरिए भारत पहली बार चांद की सतह पर लैंडर उतारेगा। यह लैंडिंग चांद के साउथ पोल पर होगी। इसके साथ ही भारत चांद के दक्षिणी ध्रुव पर स्पेस क्रॉफ्ट उतारने वाला पहला देश बन जाएगा। भारत पहली बार चांद की सतह पर 'सॉफ़्ट लैंडिंग' करेगा जो सबसे मुश्किल काम होता है। चंद्रयान-2 की सफल लॉन्चिंग को लेकर नासा कुछ संदेह की स्थिति में था। इसके पीछे कई वजह रही हैं। पहली तो यही है कि साउथ पोल पर अमेरिकन स्पेस एजेंसी नासा के अलावा, चीन और रूस की एजेंसी भी नहीं पहुँच सकी हैं। नासा को यह उम्मीद नहीं थी कि इस बार भारत अपने 'बाहुबली रॉकेट' जीएसएलवी III-एम1 के जरिए चंद्रयान-2 की सफल लॉन्चिंग करा देगा।

कैसे होगी लैंडिंग

भारत में इस मिशन को लेकर काफ़ी उत्साह है। चंद्रयान-2 को भारत में निर्मित जीएसएलवी मार्क III रॉकेट अंतरिक्ष में लेकर जाएगा। इसका वज़न 3.8 टन है और इसकी लागत लगभग 603 करोड़ रुपए है। चंद्रमा के दक्षिणी हिस्से पर चंद्रयान-2 उतरेगा। चंद्रयान-2 चंद्रमा के दक्षिणी हिस्से पर उतरेगा और इस जगह की छानबीन करेगा। यान को उतरने में लगभग 15 मिनट लगेंगे और ये तकनीकी रुप से बहुत मुश्किल क्षण होगा क्योंकि भारत ने पहले कभी ऐसा नहीं किया है। उतरने के लिए दक्षिणी हिस्से के चुनाव को लेकर इसरो का कहना है कि अच्छी लैंडिंग के लिए जितने प्रकाश और समतल सतह की आवश्यकता होती है वो दक्षिणी हिस्से में उसे मिल जाएगा। इस मिशन के लिए पर्याप्त सौर ऊर्जा उस हिस्से में मिलेगी। साथ ही वहां पानी और खनिज मिलने की भी उम्मीद है। लैंडिंग के बाद रोवर का दरवाज़ा खुलेगा और यह महत्वपूर्ण क्षण होगा। रोवर के निकलने में चार घंटे का समय लगेगा। इसके 15 मिनट के भीतर ही इसरो को लैंडिंग की तस्वीरें मिल सकती हैं। वहां की चट्टानों को देख कर उनमें मैग्निशियम, कैल्शियम और लोहे जैसे खनिज

विजन कुमार पाण्डेय लोकप्रिय विज्ञान लेखक हैं और शिक्षा के क्षेत्र से जुड़े हैं। उन्होंने विगत तीन दशकों में तीन सौ से अधिक लेख लिखे हैं। 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' में वे नियमित रूप से प्रकाशित होते रहे हैं। देश के प्रतिष्ठित विज्ञान पत्रिकाओं में आपकी रचनाओं की कई-कई पाठक हैं जो आपके काम को रेखांकित करते रहते हैं।

को खोजने का प्रयास होगा। इसके साथ ही वहां पानी होने के संकेतो की भी तलाश किया जाएगा और चांद की बाहरी परत की भी जांच होगी। चंद्रयान-2 के हिस्से ऑर्बिटर और लैंडर पृथ्वी से सीधे संपर्क करेंगे लेकिन रोवर सीधे संवाद नहीं कर पाएगा।

चंद्रयान-1 का उद्देश्य हुआ पूरा

दस साल में चांद पर जाने वाला भारत का यह दूसरा मिशन है। इसके पहले चंद्रयान-1 चंद्रमा पर जाने वाला भारत का पहला मिशन था। ये मिशन लगभग एक साल (अक्टूबर 2008 से सितंबर 2009 तक) था। चंद्रयान-1 को 22 अक्टूबर 2008 को श्रीहरिकोटा के सतीश धवन अंतरिक्ष केंद्र से अंतरिक्ष में भेजा गया था। ये आठ नवंबर 2008 को चंद्रमा पर पहुंच गया था। इस चंद्रयान ने चंद्रमा की कक्षा में 312 दिन बिताए थे। इस चंद्रयान को चंद्रमा के कक्ष में जाना था, कुछ मशीनरी स्थापित करनी थी वहां भारत का झंडा लगाना था और आंकड़े भेजने थे जो इसने बखूबी पूरे कर लिए थे। नासा के अनुसार, चंद्रयान-1 का उद्देश्य न केवल अंतरिक्ष में भारत की तकनीक का प्रदर्शन करना था बल्कि इसका उद्देश्य चंद्रमा के बारे में वैज्ञानिक जानकारी जुटाना भी था। इसका लक्ष्य चंद्रमा के भूविज्ञान, खनिज विज्ञान और ज़मीन के बारे में डेटा इकट्ठा करना था। सितंबर 2009 में नासा ने ऐलान किया था कि चंद्रयान -1 के डेटा से चंद्रमा पर बर्फ़ होने के सबूत पाए गए हैं। अन्य अंतरिक्ष यानों की टिप्पणियों ने भी चांद पर पानी होने के संकेत दिए हैं। नासा ने नवंबर 2009 में घोषणा की थी कि उसके LCROSS (लूनर क्रेटर ऑब्जर्वेशन एंड सेंसिंग सैटेलाइट) ने चंद्रमा के दक्षिणी हिस्से में पानी के संकेत दिए है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने भी 15 अगस्त 2018 को लाल किले से इस बात का ऐलान किया था कि 2022 तक या उससे पहले यानी आज़ादी के 75वें साल में भारत के नागरिक हाथ में झंडा लेकर अंतरिक्ष में जाएगें और भारत मानव को अंतरिक्ष तक ले जाने वाला देश बन जाएगा।

चंद्रयान-1 से सबक

चंद्रयान-1 का मिशन दो साल का था लेकिन उसमें ख़राबी आने के बाद यह मिशन एक साल में ही समाप्त हो गया। इसरो के अनुसार चंद्रयान-1 से सबक़ लेते हुए चंद्रयान-2 मिशन में सारी कमियों को दूर कर दिया गया है। चंद्रयान-2 को इस तरह से बनाया है कि उसका ऑर्बिटर सालभर चंद्रमा की कक्षा में काम करे और लैंडर एवं रोवर धरती के 14 दिन के लिए

चांद की सतह पर काम करेंगे। लैंडर और रोवर 70 डिग्री के अक्षांश पर चंद्रमा के दक्षिणी ध्रुव पर जा रहे हैं। आज तक किसी और देश ने कोई भी मिशन इस जगह पर नहीं भेजा है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि भारत वहां जा रहा है जहां पर आज तक किसी देश ने जाने की हिम्मत भी नहीं की है। भारतीय वैज्ञानिकों का मानना है कि दक्षिणी ध्रुव में चांद की सतह पर पानी के कण मिलेंगे और अगर पानी मिलता है तो आने वाले दौर में कभी वहां रहना पड़े तो यह उसके लिए रास्ता खोल सकता है। पानी की खोज और पानी मिल जाए तो वहां रहने की उम्मीद, यही चंद्रयान-2 के दो मक़सद हैं। भारत के अंतरिक्ष कार्यक्रम का लक्ष्य अपनी जनता को इससे लाभ पहुँचाना है। उसमें इसरो बहुत हद तक कामयाब रहा है। भारत के किसान हों, मछुआरे हों या आप और हम जो एटीएम से पैसे निकाल पा रहे हैं वह केवल अपने ही उपग्रहों के मदद से होता है। इसरो की मंशा है कि वह जल्द ही 2022 तक 'गगनयान' से एक भारतीय को भारत की ज़मीन से और भारत के रॉकेट से अंतरिक्ष में भेजे। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी भी इसका वादा कर चुके हैं कि भारत के स्वतंत्रता की 75वीं सालगिरह से पहले यह मिशन पूरा कर लिया जाएगा। भारत ने अंतरिक्ष क्षेत्र में बहुत सफलताएं हासिल की हैं और वह करता जा रहा है। एशिया प्रशांत क्षेत्र में भारत के पास इस समय सबसे ज़्यादा उपग्रह हैं। भारत अपनी क़ाबिलियत में किसी से पीछे नहीं है। हालांकि चीन हर हाल में भारत से कहीं न कहीं बहुत आगे है फिर भी दुनिया के सभी देश भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम के दबदबे को मानते हैं। इसका हर मिशन बहुत सस्ता होता है।

अमेरिकी मिशन पर उठते सवाल

अमेरिका ने 1969 के जुलाई महीने में यह दावा किया था कि भले ही रूस ने अंतरिक्ष में अपना यान पहले भेजा हो लेकिन चांद की धरती पर पहली बार अमेरिकी अंतरिक्ष यात्री उतरे थे। फिर लंबे समय के लिए इस बात पर बहस छिड़ गई कि क्या वास्तव में ऐसा हुआ है? दरअसल, नासा ने चंद्रमा पर अपने अंतरिक्ष यान के लैंड करने की जो तस्वीरें सार्वजनिक की थी उन्हें नासा के विरोधियों ने कभी नहीं स्वीकारा। उसके बाद से लेकर आज तक नासा के उस मिशन पर सवालिया निशान लगाए जाते रहे हैं। अब रूस की रोस्कॉस्मोस स्पेस एजेंसी के प्रमुख ने इस सवाल का जवाब तलाशने की बात कही है। वे कहते हैं कि वे दुनिया को बताना चाहते हैं कि आखिर सच क्या था। क्या वाकई नासा का अंतरिक्ष यान लगभग पचास साल पहले चंद्रमा पर उतरा था या फिर नहीं? रूस की रोस्कॉस्मोस स्पेस एजेंसी के प्रमुख ने कहा है कि चंद्रमा के लिए एक प्रस्तावित रूसी मिशन को यह सत्यापित करने के लिए भेजा जाएगा कि क्या वाकई अमेरिकी अंतरिक्ष यान चंद्रमा पर उतरा था या नहीं। रोगोजिन लगभग पचास साल पहले चंद्रमा पर नासा के छोड़े निशान तलाशने जा रहे हैं। रूस ने नासा के इस मिशन को कभी सच नहीं माना क्योंकि उनका सोचना था कि नासा चंद्रमा मिशन के नाम पर दुनिया की आंखों में धूल झोंक रहा है। उधर सोवियत संघ ने चार प्रयोगात्मक चंद्रमा रॉकेट ऑपरेशन विफल रहने के बाद 1970 के दशक के मध्य में अपने चंद्रयान कार्यक्रम को ही त्याग दिया था। ऐसा माना जाता रहा है कि अमेरिका ने एक फिल्मी सेट के ऊपर अपने तीन अंतरिक्ष यात्रियों को चांद जैसी लोकेशन बनाकर उसे फिल्माया था। विरोधियों का पहला आरोप है कि चांद पर जब हवा नहीं है तो फिर चित्रों में अमेरिकी झंडा लहराता हुआ कैसे दिख रहा है। फिर उनका कहना है कि चांद पर वैज्ञानिक उपकरणों की जो रीडिंग आनी चाहिए वो न होकर कुछ और आ रही है। चांद के ऊपर के आसमान में तारे बहुत कम नजर आ रहे हैं जबकि चांद से कहीं ज्यादा तारे नज़र आने चाहिए। यह भी कहा जा रहा है कि चांद पर छायाएं जिस दिशा में होनी चाहिए उससे उल्टी दिशा में दिख रही हैं। यही वजह है कि नासा के चंद्रमा मिशन पर प्रश्न चिन्ह लगते रहे हैं।

स्पेस रेस में कौन आगे

कोल्ड वॉर के बाद अब दुनिया में एक बार फिर नई स्पेस रेस शुरू हो गई है। अमेरिका, चीन, रूस के बाद भारत ने भी 'मिशन मून' की ओर बहुत तेजी से अपने कदम बढ़ाने शुरू कर दिए हैं। भारत ने चंद्रमा पर अपना स्पेस मिशन ऐसे समय पर भेजा है जब कुछ महीने पहले ही चीन ने अपना अंतरिक्ष यान चांग ई 4 चंद्रमा पर उतारा है। अमेरिका की भी वर्ष 2024 तक चंद्रमा पर मानवयुक्त मिशन भेजने की योजना है। इस तरह से कोल्ड वॉर के बाद दुनिया में एक बार फिर एक नई स्पेस रेस शुरू हो गई है। दुनिया के अंतरिक्ष इतिहास में 3 जनवरी,

2019 का दिन बेहद महत्वपूर्ण है। इस दिन चीन ने अपने अंतरिक्ष यान चांग ई 4 को चंद्रमा के उस हिस्से पर उतारा था जहां अब तक कोई नहीं पहुंचा था। चंद्रमा के इस 'डार्क साइड' वाले हिस्से पर भारत ने भी चंद्रयान-2 को भेजा है। इसरो चंद्रयान-2 को पहले वर्ष 2017 और फिर वर्ष 2018 में लॉन्च करना चाहता था लेकिन उसे टाल दिया गया था। चीन और भारत दोनों ही देश चंद्रमा पर अपना मिशन ऐसे समय पर भेज रहे हैं जब करीब पचास साल पहले 20 जुलाई, 1969 को अमेरिका ने पहली बार चंद्रमा पर इंसान को उतारा था।

बस्तियां बसेंगी चांद पर

दरअसल विश्वभर की महाशक्तियों की योजना चांद पर बस्तियां बसाने की है। इसी को देखते हुए चीन ने लंबी अवधि की योजना पर काम करते हुए अपना चंद्रमा उत्खनन कार्यक्रम शुरू किया है। उसकी कोशिश वर्ष 2036 तक चंद्रमा पर एक स्थायी ठिकाना बनाने की है। चीन चंद्रमा के टाइटेनियम, यूरेनियम, लोहे और पानी का इस्तेमाल रॉकेट निर्माण के लिए करना चाहता है। अंतरिक्ष में यह रॉकेट निर्माण 2050 तक अंतरिक्ष में लंबी दूरी तक उत्खनन करने की उसकी योजना के लिए बेहद जरूरी है। चीन क्षुद्र ग्रहों का भी उत्खनन करना चाहता है। साथ ही उसकी योजना भू समकालिक कक्षा में सोलर पॉवर स्टेशन बनाने की है। इस साल के आखिर तक चीन अपना चांग ई 5 मिशन लॉन्च करने जा रहा है। यह अंतरिक्ष यान चंद्रमा के उस हिस्से में उतरेगा जो पूरी दुनिया को दिखाई देता है। यहां से वह मिट्टी के नमूने लेकर पृथ्वी पर वापस आएगा। चीन के अंतरिक्ष कार्यक्रम के प्रमुख झांग केजिन ने घोषणा की है कि चीन अगले दस साल में चंद्रमा के दक्षिणी ध्रुव पर अपना शोध केंद्र स्थापित करेगा। चीन 2030 तक अपने दो रोबॉट चंद्रमा पर भेज रहा है जो पानी और अन्य संसाधनों की जांच करेंगे। चीन की इन पुख्ता तैयारियों को देखते हुए ही पिछले दिनों अमेरिकी उपराष्ट्रपति ने भी कहा था, 'हम इन दिनों एक स्पेस रेस में जी रहे हैं जैसा कि वर्ष 1960 के दशक में हुआ था। चीन ने रणनीतिक रूप से महत्वपूर्ण चंद्रमा के सुदूरवर्ती इलाके में अपना अंतरिक्ष यान उतारा है और इस पर कब्जा करने की योजना का खुलासा किया है।' चंद्रमा के खनिजों का तेजी के साथ खनन अमेरिका के लिए भी बेहद महत्वपूर्ण हो गया है। अमेरिकी अंतरिक्ष एजेंसी नासा एक ऐसे रोबॉट पर काम कर रही है जो प्राकृतिक संसाधनों का पता लगाने के लिए चंद्रमा की मिट्टी को निकालकर

उसकी जांच कर सकता है। नासा भी वर्ष 2028 तक चंद्रमा पर एक अड्डा बनाना चाहती है। नासा के ऐडमिनिस्ट्रेटर जिम ब्राइडेनस्टाइन ने पिछले दिनों कहा था कि हम चांद पर इसलिए जाना चाहते हैं क्योंकि हम मानव के साथ मंगल ग्रह पर जाना चाहते हैं। नासा के इस काम में ऐमजॉन कंपनी के मालिक जेफ बेजोस मदद कर रहे हैं। उनकी एक कंपनी ब्लू ओरिजिन एक नए रॉकेट पर काम कर रही है। बेजोस की योजना पृथ्वी पर स्थित सभी विशालकाय उद्योगों को अंतरिक्ष में ले जाने की है। चीन और बेजोस दोनों की योजना अंतरिक्ष में मानव बस्तियां बसाने और औद्योगीकरण की है। चीन की सोच है कि धरती पर स्थित परंपरागत ऊर्जा स्रोतों पर अगर उसकी अर्थव्यवस्था निर्भर रहेगी तो यह लंबे समय के लिए ठीक नहीं होगा। इसीलिए वह अंतरिक्ष के संसाधनों के इस्तेमाल पर काम कर रहा है। बेजोस भी मानते हैं कि मानव के रहने के लिए पृथ्वी के संसाधन सीमित हैं, इसलिए अंतरिक्ष में रहने की संभावना पर काम करना होगा। बेजोस ने अपने एक भाषण में कहा था कि चंद्रमा के पानी का इस्तेमाल ईंधन के रूप में किया जा सकता है। रूसी अंतरिक्ष एजेंसी ने भी पिछले साल घोषणा की थी कि वर्ष 2040 तक वह चंद्रमा पर एक बस्ती बसाएगी। रूसी विज्ञान अकादमी के प्रमुख एजेक्जेंडर सेर्गेयेव ने कहा कि प्राकृतिक संसाधनों के लिहाज से चंद्रमा बेहद महत्वपूर्ण है। दूसरी तरफ जापान और दक्षिण कोरिया ने भी चंद्रमा के ध्रुवों पर अंतरिक्ष यान भेजने की योजना का ऐलान किया है। इनकी कोशिश चंद्रमा के प्राकृतिक संसाधनों का इस्तेमाल करने
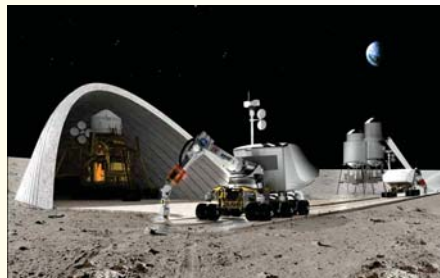
की है। उधर, यूरोपीय यूनियन चंद्रमा पर एक 'मून विलेज' बनाना चाहती है। इन सब देशों में चीन का प्रोग्राम सबसे ज्यादा महत्वाकांक्षी लग रहा है। चीन एक मात्र ऐसा देश है जो अंतरिक्ष में बस्ती बसाने और उसका इस्तेमाल अंतरिक्ष उत्खनन में करने की हसरत और योजना रखता है। चीन ने इस दिशा में 3 करोड़ डॉलर निवेश किया है। चीन की यह 30 साल की योजना राष्ट्रपति शी चिनफिंग की नागरिक-सैन्य एकीकरण रणनीति का हिस्सा भी है।

चाँद से जुड़ी कुछ रहस्यमयी जानकारियां

चांद अपने में अनोखा है। चन्द्रमा पर आसमान हमेशा काला दिखाई देता है। चंद्रमा पर वातावरण (atmosphere) नहीं है इसलिये चंद्रमा पर कोई आवाज सुनाई नहीं देती। चंद्रमा पर वातावरण ना होने की वजह से सूर्य की पराबैंगनी किरणें और कॉस्मिक किरणें सीधे अंदर पहुँच जाती हैं इसीलिए चंद्रमा पर दिन में तापमान 107 डिग्री सेल्सियस हो जाता है जो बहुत ज्यादा गर्म है। वातावरण न होने की वजह से ही रात को तापमान -153 डिग्री सेल्सियस हो जाता है यानि भयंकर सर्दी, इसलिए चंद्रमा पर जीवों की उत्पत्ति अभी संभव नहीं है। चंद्रमा पृथ्वी से हर साल 3.8 सेंटी मीटर दूर होता जा रहा है। चंद्रमा पर गुरुत्वाकर्षण (Gravity) धरती के गुरुत्वाकर्षण से 6 गुना कम है। चंद्रमा का केवल 60 प्रतिशत हिस्सा ही पृथ्वी से दिखाई देता है।

अब चंद्रयान-2 अपने मिशन पर आगे बढ़ चुका है। इसके साउथ पोल पर उतरने की वजह से दुनिया की नजर भारत पर टिकी है। नासा भले ही यह कहे कि आने वाले कुछ सालों में वह इस पोल पर अपना अंतरिक्ष यात्री भेजेगा, लेकिन सच यह भी है कि अभी तक वहां की स्थिति के बारे में कोई ठोस जानकारी नासा के पास नहीं है। ऐसी आशा है कि अंतरिक्ष खोज के मामले में चंद्रयान-2 मील का पत्थर साबित होगा। प्राकृतिक सम्पदा, कितने रूपों में है और वह कितनी पुरानी है, सौर मंडल के बनने की सही स्थिति एवं समय व पानी की खोज, अगर इन सब बातों को पता लगाने में चंद्रयान-2 सफल होता है तो अंतरिक्ष कार्यक्रमों में भारत का नाम सुनहरे अक्षरों में लिखा जाएगा।

vijankumarpandey@gmail.com

चंद्रयान-2 का सफल प्रमोचन

कालीशंकर

इसरो के वरिष्ठ वैज्ञानिक विगत लगभग चालीस वर्षों से अंतरिक्ष विज्ञान और अंतरिक्ष अन्वेषण पर लेखन करते रहे हैं। तीन सौ से अधिक लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छपे तथा 25 पुस्तकें प्रकाशित हुईं हैं। आपको कई राष्ट्रीय सम्मानों से सम्मानित किया गया है। कालीशंकर लखनऊ में निवास करते हैं।

विश्व के द्वारा चन्द्र सतह पर मानव की लैन्डिग की 50वीं वर्ष गाँठ के दो दिन बाद भारत ने अपना चन्द्रयान-2 लैन्डर - रोवर मिशन पृथ्वी के चन्द्रमा के लिए सफलतापूर्वक प्रमोचित किया। इसरो का प्रमोचन राकेट जी एस एल वी-मार्क III चन्द्रयान-2 माड्यूल को अपने शीर्ष बिन्दु पर स्थापित करने 22 जुलाई, 2019 को श्री हरिकोटा स्थित सतीश धवन अन्तरिक्ष केन्द्र से 2:43 बजे सफलतापूर्वक उठा तथा चन्द्रयान-2 अन्तरिक्षयान को इसकी निर्धारित भू-ट्रान्सफर कक्षा में स्थापित कर दिया। 15 जुलाई, 2019 से हटकर, जब राकेट की क्रायो उपरि स्टेज की समस्या ने लाँच को स्थागित करने को बाध्य किया, इस बार यह एक टेक्स्टबुक लाँच था जिसमें हजारों प्रेक्षकों (प्रेक्षक गैलरी में बैठे हुए) ने भारतीय अन्तरिक्ष अनुसंधान संगठन के बाहुबली राकेट के द्वितीय प्रमोचन पैड से ऐतिहासिक उत्थापन पर खुशी का इज़हार किया।

चन्द्रयान-2 पृथ्वी की दीर्घवृत्तीय कक्षा में २२ दिन रहेगा जब इसे पृथ्वी के गुरूत्वाकर्षण खिंचाव से बाहर निकालने के लिए इस पर 5 कक्षीय उत्थापन मनूवर सम्पन्न किये जायेंगे। इसके बाद चन्द्रयान-2 को ट्रान्स चन्द्र प्रवेश पथ पर अग्रसर किया जायेगा और यह चन्द्र कक्षा की ओर बढ़ेगा। इस दौरान यह पृथ्वी से चन्द्रमा की 3,84,000 कि.मी. की दूरी तय करेगा। 8 दिन के बाद प्रोजेक्ट निदेशक एम वनिथा और मिशन निदेशक रितु कारिढाल के नेतृत्व में चन्द्रयान-2 टीम मिशन के सबसे चुनौतीपूर्ण भाग - चन्द्र कक्षीय प्रवेश को अंजाम देगी। मिशन के इस भाग में चन्द्रयान-2 की गति को कम करना शामिल है जिससे चन्द्रमा का गुरूत्व इसे अपने प्रभाव में ले ले और यह चन्द्र कक्षा में प्रवेश जाय।

परिवर्तित समय तालिका के अनुसार माड्यूल 100 कि.मी.x100 कि.मी. वाली कक्षा में (चन्द्रमा की) 13 दिन रहेगा। प्रमोचन के 43 दिन बाद लैन्डर 'विक्रम', जिसके अन्दर 'प्रज्ञान' रोवर स्थित होगा, आरबिटर से अलग हो जायेगा। 48वें दिन 'विक्रम' लैन्डर का चन्द्र सतह पर उतरना प्रारंभ होगा। चन्द्र सतह पर उतरने के बाद 'प्रज्ञान' रोवर 'विक्रम' लैन्डर के बार चार घन्टे बाद आ जायेगा। यह चन्द्र सतह पर एक से.मी. प्रति से. की गति से पांच मीटर दूर तक जायेगा। रोवर चन्द्र सतह पर चौदह पृथ्वी दिवस तक रहकर चन्द्र सतह के प्रतिविम्ब लेकर, उनका विश्लेषण कर डाटा को विक्रम लैन्डर के माध्यम से आरबिटर को भेजेगा जो पंद्रह मिनट में उसे पृथ्वी को भेज देगा।

इस सफल प्रमोचन को 'भारत के लिए और अन्तरिक्ष विज्ञान के लिए एक ऐतिहासिक दिन बताते हुए इसरो चेयरमैन के सिवान ने इस बात की घोषणा की कि "जी.एस.एल.वी. मार्क III चन्द्रयान-2 को सफलतापूर्वक निर्धारित कक्ष में स्थापित कर दिया है। वास्तव में इसकी कक्षा आशा

से 6000 कि.मी. अधिक है इसलिए अन्तरिक्षयान और इसकी टीम के पास मनूवर के लिए अधिक, ईंधन और जीवन होगा।''

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी, जिन्होने लाँच का सजीव टेलीकास्ट देखा कहा, ''ये विशिष्ट क्षण हैं जो हमारे महत्वपूर्ण इतिहास में अंकित हो जायेगा। चन्द्रयान-2 का प्रमोचन हमारे वैज्ञानिकों की प्रतिभा और 130 करोड़ भारतीयों के दृढ़ वैज्ञानिक संकल्प को दर्शाता है। आज प्रत्येक भारतीय को इस मिशन पर गर्व है।''

राज्य सभा ने इस मौके पर भारतीय अन्तरिक्ष अनुसंधान संगठन तथा वैज्ञानिकों को चन्द्रयान-2 के सफल प्रमाचेन पर बधाई दी। चेयरमेन एम वेंकैया नायडू ने कहा कि इस प्रमोचन पर ने देश के विज्ञान और तकनीकी के विकास में ही एक स्वर्णिम युग का प्रारंभ नही किया है बल्कि देश के गौरव को ऊँचा बढ़ाया है। अमरीकी अन्तरिक्ष संस्था नासा ने भी इस मिशन के प्रमोचन पर इसरो को बधाई दी तथा वह इस बात की इसरो से जानकारी प्राप्त करने की प्रतीक्षा कर रहा है कि उसने चन्द्रमा के दक्षिणी ध्रुव क्या देखा।

चन्द्रयान-2 मिशन के प्रमोचन का काउन्टडाउन

मिशन के प्रमोचन का बीस घन्टे का काउन्ट डाउन रविवार 21 जुलाई, 2019 को शाम 6 बजकर 43 मिनट पर प्रारंभ हुआ तथा प्रमोचन प्रक्रिया 22 जुलाई, 2019 को दोपहर के बाद 2:43 बजे होनी थी। इस बार वैज्ञानिकों के पास समय के सन्दर्भ में बहुत कम लचीलापन (फ्लेक्जिविलिटी) थी क्यों कि समुचित स्लाट जिसके दौरा चन्द्रयान-2 का प्रमोचन किया जा सकता था उसकी अवधि मात्र कुछ मिनटों की थी। इस सन्दर्भ में एक पूर्व इसरो वैज्ञानिक का कहना था, ''इस महीने की सबसे उपयुक्त प्रमोचन विन्डो 9 से 16 जुलाई के बीच थी। इन दिनों में समय स्लाट, जिसके दौरान मिशन का प्रमोचन सम्भव हो सकता था, एक घन्टे या अधिक था। सोमवार 22 जुलाई, 2019 को यह प्रमोचन सुविधा मात्र कुछ मिनटों के लिए ही है। इसलिए प्रमोचन तक की सभी प्रक्रियाएँ अत्यधिक परिशुद्धता से ही जानी हैं। मुझे आशा है कि मिशन नियंत्रक इसे कर सकते हैं।'' उस वैज्ञानिक ने यह भी बताया कि अगर इस महीने प्रमोचन सम्भव नहीं हुआ तो फिर यह सितम्बर, 2019 में ही सम्भव होगा।

मिशन के 15 जुलाई से 22 जुलाई, 2019 के विलम्बन के बावजूद 6 सितम्बर की तारीख में कोई परिवर्तन नही है जिस दिन मिशन के लैन्डर और रोवर माड्यूल चन्द्र सतह पर लैन्ड करेंगे। लेकिन मिशन जिस मार्ग से ट्रैवेल करेगा वह भिन्न होगा क्योंकि 54 दिन के बजाय अब प्रमोचन और लैन्डिग के बीच 48 दिन का ही समय रहेगा।

परिवर्तित प्रमोचन श्रृंखला

ऐसी भी सम्भावना है कि जब रोवर के साथ लैन्डर चन्द्र सतह पर लैन्ड करता है, भारत में तिथि 7 सितम्बर, 2019 पहुँच चुकी होगी। इसका कारण यह है कि लैन्डर को लैन्डिंग के लिए चन्द्र सतह पर उपयुक्त स्थान ढूँढ़ने में कुछ समय लगे।

परिवर्तित उड़ान शृंखला के अनुसार चन्द्रयान-2 पृथ्वी की कक्षा में पूर्व मॉड्यूल में 17 दिन के बजाय 23 दिन गुजारेगा। इस दौरान कक्षा में थोड़ा-थोड़ा उठते हुए अन्तरिक्षयान अपनी यात्रा चन्द्रमा की ओर प्रारंभ करेगा जिसमें सात दिन लगेंगे। अगले तेरह दिनों तक यह 100 कि.मी.x100 कि.मी. वाली चन्द्र कक्षा में रहेगा।

पहले इसे चन्द्र कक्षा में 28 दिन गुजारने थे। आरबिटर से लैन्डर माड्यूल प्रमोचन के 43वें (2 सितम्बर, 2019) दिन अलग होगा तथा कुछ दिन यह चन्द्रमा की निम्न कक्षा में घूमेगा। वास्तविक लैन्डिग पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार 6 सितम्बर, 2019 या 7 सितम्बर, 2019 के प्रारंभिक घंटो में सम्पन्न होगी। चन्द्रयान-2 की सफलता के बाद भारत चन्द्रमा की सतह पर पहुँचने वाला देश बन जायेगा। मिशन में लैन्डर दक्षिणी ध्रुव (चन्द्रमा के) के पास लैन्ड करेगा तथा चन्द्रमा की सतह पर परीक्षण एक चन्द्रग दिवस (अर्थात् 14 पृथ्वी दिवस) तक करेगा। इसरो के अनुसार आरबिटर अपना मिशन एक वर्ष तक जारी रखेगा।

चन्द्रयान-2 मिशन के विभिन्न भाग

चन्द्रयान-2 के निम्न तीन भाग है -

- एक आरबिटर
- एक लैन्डर जिसका नाम 'विक्रम' है तथा जिसका नामकरण भारतीय अन्तरिक्ष कार्यक्रम के पितामह डॉ. विक्रम साराभाई के नाम पर रखा गया है।
- एक छे-पहियों वाला रोवर 'प्रज्ञान' जिसके नाम का संस्कृत में अर्थ है बुद्धि

सितम्बर, 2019 में लैन्डर (जिसके अन्दर रोवर स्थापित होगा) आरबिटर से अलग होगा तथा लैन्डिग स्थल (चन्द्रमा के दक्षिण ध्रुव) की ओर अग्रसर होगा।

रोवर में चन्द्र मृदा और चन्द्र चट्टानों की संरचना के मापन के लिए कुछ उपकरण लगे हैं। लैन्डर में ऐसे उपकरण लगे हैं जिनसे चन्द्र भू-कम्पों, मृदा के कुछ इंचों का तापमान और सूर्य से आने वाले आवेशित कणों का मापन किया जा सकता है।

परिचय

चन्द्रयान-1 के बाद चन्द्रयान-2 भारत का दूसरा चन्द्र अन्वेशण मिशन है। भारतीय अन्तरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) के द्वारा विकसित चन्द्रयान-2 का प्रमोचन 22 जुलाई, 2019 को दिन के 2:43 बजे जी एस एल.वी-मार्क ॥। प्रमोचन राकेट के द्वारा सतीश धवन अन्तरिक्ष केन्द्र के द्वितीय प्रमोचन पैड से किया गया। मिशन के तीन भाग हैं- आरबिटर, लैन्डर और रोवर। मिशन का प्रमुख उद्देश्य

दक्षिणी ध्रुव के उन क्षेत्रों का प्रतिविम्बन करना है जहाँ पानी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। लैन्डर और रोवर मैंजीनस 'सी' और सिंपेलियस 'एन' क्रेटरों के बीच 70 डिग्री दक्षिण अक्षांश पर 7 सितम्बर, 2017 को चन्द्र सतह पर उतरेंगे। मिशन के विभिन्न अवयवों का विवरण निम्न है:-

1) आरबिटर

यह 100 कि०मी० की ऊँचाई से चन्द्रमा का चक्कर लगायेगा। इसका उत्थापन भार 2379 कि०ग्रा०, ईंधन भारत 1697 कि.ग्रा. तथा शुष्क भार 682 कि०ग्रा० है। आरबिटर के ढाँचे का निर्माण हिन्दुस्तान एरोनाटिक्स लि. (एच.ए. एल.) के द्वारा किया गया था। इसमें निम्नलिखित नीतभार लगे हुए हैं:-

- सॉफ्ट एक्स-किरण स्पेक्ट्रोमीटर (इसरो उपग्रह केन्द्र, बेंगलूरू निर्मित)
- सौर एक्स किरण मानीटर (भौतिक अनुसंधान प्रयोगशाला, अहमदाबाद निर्मित)। यह चन्द्र सतह पर विद्यमान प्रमुख तत्वों का मानचित्रण करेगा।
- द्वि-आवृत्ति एल और एस संश्लेशी द्वारक रेडार (अंतरिक्ष उपयोग केन्द्र, अहमदाबाद निर्मित)। यह चन्द्र सतह के छायाकृत (शैडा) क्षेत्रों में जल बर्फ के अतिरिक्त प्रमाणों की पुष्टि करेगा।
- प्रतिविम्बन इन्फ्रारेड स्पेक्ट्रोमीटर (अन्तरिक्ष उपयोग केन्द्र अहमदाबाद निर्मित) इसका कार्य चन्द्र सतह पर विस्तृत तरंग दैर्ध्य में खनिजों जल अणु और हाइड्राक्सिल के अध्ययन के लिए चन्द्र सतह का मानचित्रण करना है।
- चन्द्रयान-2 का क्वाड्रुपोल मास अनालाइजर (अंतरिक्ष भौतिकी प्रयोगशाला, तिरूवन्तपुरम, निर्मित) इसका कार्य चन्द्र वाह्यमंडल का अध्ययन करना है।
- सतही मानचित्रण कैमरा-2 (अन्तरिक्ष उपयोग केन्द्र अहमदाबाद निर्मित)। इसका कार्य चन्द्र सतह की खनिजता और भूगर्भ के अध्ययन के लिए तीन आयामी मानचित्र बनाना है।
- द्वि आवृति रेडियो विज्ञान परीक्षण उपकरण (अन्तरिक्ष भौतिकी प्रयोगशाला, तिरूवन्तपुरम निर्मित)। चंद्रमा के आयनमंडल और वायुमंडल के अध्ययन में यह मददगार होगा।
- कक्षीय उच्च विभेदन कैमरा (अन्तरिक्ष उपयोग केन्द्र, अहमदाबाद, निर्मित यह उपकरण लैन्डिग के लिए सुरक्षित स्थान का प्रतिविम्बन) करेगा तथा उसके लिए डिजिटल एलीवेशन माडल (चन्द्र सतह का) बनायेगा।

2) `विक्रम` लैन्डर

इसका उत्थापन भार 1471 कि.ग्रा., ईंधन भार 845 कि.ग्रा. और भाुश्क भार 626 कि.ग्रा. है। इसमें निम्न उपकरण लगे है:-

- सेस्मोमीटर तथा इसका प्रमुख उद्देश्य लैन्डिग स्थल पर चन्द्र भूकम्पों का अध्ययन करना है।
- थर्मल प्रोब तथा इसका प्रमुख कार्य चन्द्र सतह के तापीय गुणों का आंकलन करना है।
- एक मात्र विदेशी उपकरण नासा के गोडार्ड अन्तरिक्ष उड़ान केन्द्र के द्वारा प्रदत्त लेज़र रेफ्लेक्टोमीटर एरे जिसका प्रमुख उद्देश्य परिशुद्धेता से भू-पृथ्वी दूरी का मापन।

3) `प्रज्ञान´रोवर

इसका भार 27 कि.ग्रा. है तथा यह सौर पावर से काम करेगा। इसमें 6 पहिए लगे हैं तथा यह चन्द्र सतह पर 1 से.मी. प्रति से. की गति से 500 हैं तथा यह चन्द्र सतह पर 1 से.मी. प्रति से. की गति से 500 मी. दूरी चलेगा। यह चन्द्र सतह पर लिए गये नमूनों की जाँच करके लैन्डर को भेजेगा जो इसे पृथ्वी को भेज देगा। रोवर में निम्न उपकरण लगे है:-

- लेज़र आधारित ब्रेकडाउन स्पेक्ट्रोस्कोप (बेंगलूरू के इलेक्ट्रो आप्टिक सिस्टम्स (एल ई ओ एस) बेंगलूरू में निर्मित)
- द्वि आवृत्ति रेडियों विज्ञान परीक्षण उपकरण (अंतरिक्ष भौतिकी प्रयोगशाला, तिरूवन्तपुरम निर्मित)। चंद्रमा के आयनमंडल और वायुमंडल के अध्ययन में यह मददगार होगा।
- कक्षीय उच्च विभेदन कैमरा (अंतरिक्ष उपयोग केन्द्र, अहमदाबाद, निर्मित) यह उपकरण लैन्डिग के लिए सुरक्षित स्थान का प्रतिबिम्बन करेगा तथा उसके लिए डिजिटल एलीवेशन माडल (चन्द्र सतह का) बनायेगा।

4) जी.एस.एल.वी.-मार्क-III प्रमोचन राकेट:-

यह भारत का मौजूदा सबसे शक्तिशाली प्रमोचन राकेट है। यह तीन चरणों वाला राकेट हैं जिसमें दो ठोस स्ट्रैप-आन, एक कोर द्रव बूस्टर और एक क्रायोजेनिक उपरि स्टेज है। इसका डिजाइन इस प्रकार किया गया है कि यह 4 टन का नीतभार भू ट्रान्सफर कक्षा में अथवा लगभग दस टन का नीतभार पृथ्वी की निम्न कक्षा में पहुँचा सकता है। इसकी लम्बाई 43.43 मीटर, व्यास 4 मीटर तथा उत्थापन भार वहन क्षमता 640 टन है। इसकी प्रथम प्रायोगिक उड़ान 18 दिसम्बर 2014 को हुई। इसकी प्रथम विकसित उड़ान 5 जून, 2017 को हुई जिसके द्वारा जी-सैट-19 उपग्रह प्रमोचित किया गया तथा दूसरी विकसित उड़ान 4 नवम्बर, 2018 को हुई जिसने जी सैट-29 उपग्रह अंतरिक्ष में पहुंचाया। 22 जुलाई, 2019 को सम्पन्न इस राकेट की उड़ान संख्या जी एस एल वी मार्क III एम 1 के द्वारा चन्द्रयान-२ मिशन को लाँच करके उसे 169.7 कि.मी. (पेरिजी) X 45475 कि.मी. (अपोजी) वाली कक्षा में पहुँचाया गया।

दो महिला नियंत्रित चन्द्रयान-2 मिशन

चन्द्रयान-2 मिशन की बागडोर इसरो की 2 महिलाओं के हाथ में हैं जिनके नाम हैं मुथैया वनिथा और रितु कारिढाल। मुथैया वनिथा इस मिशन की प्रोजेक्ट निदेशक हैं जब कि रितु कारिढाल इसकी मिशन निदेशक हैं।

इसरो के अन्दर महान प्रतिभा वाली इलेक्ट्रानिकी इंजीनियर वनिथा देश के अनेक सुदूर संवेदन उपग्रहों के आंकड़ों की हैन्डलिंग के लिए उत्तरदायी रहीं हैं तथा उन्हें अनेक समस्याओं के समाधान में विशेषज्ञ के रूप में माना जाता है। उन्हें चन्द्रयान-2 के प्रमोचन से

चन्द्र सतह पर लैन्डिग का उत्तरदायी दिया गया है। उन्हें 2006 में आस्ट्रोनाटिकल सोसाइटी ऑफ इंडिया के सर्वोत्तम महिला वैज्ञानिक अवार्ड से सम्मानित किया जा चुका है तथा 2013 में मंगलयान के प्रमोचन और सफलता में उनकी अग्रणी भूमिका रहीं है।

रितु कारिढाल को इसरो में ''राकेट वूमेन'' के रूप में जाना जाता है क्योंकि वे 2013-14 में मंगलयान मिशन की उप-प्रचालन निदेशक रह चुकी हैं। अब चन्द्रयान-2 की मिशन निदेशक हैं तथा वनिथा के साथ मिलकर काम कर रही हैं। चन्द्रयान-2 के प्रमोचन के साथ ही उनकी प्रमुख भूमिका शुरू हुई। वे आई आई एस सी, बेंगलूरू से एरोस्पेस अभियांत्रिकी में मास्टर डिग्री पा चुकी हैं तथा उन्हें 'इसरों टीम अवार्ड' (मंगलयान के लिए) तथा 'इसरो यंग साइंटिस्ट अवार्ड' (राष्ट्रपति अब्दुल कलाम से 2007 में) भी मिल चुकें हैं।

चन्द्रयान -2 की सफलता इसरो को कई रिकार्ड देगी

चन्द्रयान-2 मिशन की सफलता से अमरीका रूस और चीन के बाद भारत विश्व का चौथा ऐसा देश होगा जो चंद्रमा की धरती पर अपना लैन्डर उतारेगा। इसके साथ ही साथ भारत विश्व का पहला देश बनेगा जिसका चन्द्रयान-मिशन चन्द्रमा के दक्षिणी ध्रुव पर उतरेगा। इस प्रकार ब्रम्हान्ड के किसी दूसरे पिन्ड पर उतारने की तकनीक भारत हासिल कर लेगा। यह प्रथम तकनीक होगी जो देश को प्राप्त होगी। चाँद के उस हिस्से में उतरने जा रहें हैं जहाँ पर आज तक कोई देश नहीं पहुँचा। इसके द्वारा हमें चाँद के बारे में कई नवीन जानकारियाँ प्राप्त होगी। हमारे चन्द्रयान-1 ने ही पहली बार चन्द्रमा पर पानी होने की पुष्टि की थी। प्रस्तुत चन्द्रयान-2 मिशन उन निश्कर्षो की पुष्टि करेगा और साथ ही प्रयोगों को आगे बढायेगा। यह चन्द्रमा पर बस्तियाँ बसाने एवं दूसरे ग्रहों की खोज के लिए चाँद को एक पड़ाव के रूप में प्रयोग करने की दशा में एक अहम कदम साबित होगा। यह मिशन युवा छात्रों के मन को विज्ञान के लिए प्रेरित करेगा। इससे प्रतिभाशाली युवा नवीन वैज्ञानिक विचारों के प्रति आकर्षित होंगे।

चन्द्रयान-2 मिशन की कुछ चुनौतियाँ

चन्द्रयान-2 मिशन पृथ्वी से 3.844 लाख कि. मी. की दूरी तय करने के बाद चन्द्रमा की कक्षा में पहुँचेगा। इस यात्रा के दौरान चन्द्रयान-2 को पृथ्वी, चन्द्रमा एवं अन्य खगोलिकी पिंडों के अलावा अलग गुरूत्वाकर्षण बल के अलावा सौर विकिरण के प्रभावों से अंतरिक्षयान को बचना होगा। पथ में थोड़ा सा विचलन घातक सिद्ध हो सकता है। गहन अंतरिक्ष में पहुँचने के बाद यान के साथ निरंतर संचार कायम रखना दूसरी बड़ी चुनौती होगी। ब्याललू स्थित शक्तिशाली एन्टेना रेडियो सिग्नलों को अभिग्रहित करने में मददगार होगा। यह चाँद और मंगल से भेजे गये सिग्नलों को प्राप्त करने में सक्षम है। चाँद की कक्षा में प्रवेश भी सावधानी से किया जायेगा। इसके बाद चाँद की सतह पर साफ्ट लैन्डिग सबसे बड़ी चुनौति है। लैंडिग के आखिरी 15 मिनट काफी भयावह पल होंगे। चाँद के धूल कणों से भी बचना होगा। चरम तापमान (चन्द्र सतह पर) के अलावा निर्वात होने के कारण लैन्डर और रोवर का परिचालन भी बेहद कठिन काम होगा।

चन्द्र मिशन पर पूर्व राष्ट्रपति ए.पी.जे. अब्दुल कलाम की इसरो वैज्ञानिकों को सलाह

लगभग 16 वर्ष पहले वर्ष 2003 में जब चन्द्रमा पर एक मिशन भेजने की चर्चा भारतीय वैज्ञानिक समुदाय के अंदर हो रही थी तब डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने इसरो वैज्ञानिकों को कहा था कि चन्द्रयान मिशन के द्वारा चन्द्रमा के अन्वेषण से संपूर्ण देश दीप्तिमान हो जायेगा-विशेशकर युवा पीढी। यह बात उन्होंने तक कही जब उन्हें सूचित किया गया कि इसरो एक चन्द्र मिशन की योजना बना रहा है। उन्होंने कहा उन्हें पूरा विश्वास है कि चन्द्र मिशन भारत में भावी ग्रहीय अन्वेषण की मात्र एक शुरूआत है। डॉ. कलाम जो उस समय भारत के राष्ट्रपति थे जो पीएसएलवी-सी5 की आखिरी तैयारियों की जाँच के बाद इसरो वैज्ञानिकों को संबोधित कर रहें थे। इसें संयोग कहें या नियति का खेल, लेकिन एक साल बाद जब इसरो की एक टीम जब कलाम से यह बताने के लिए मिली इसरो एक चन्द्र मिशन भेजने जा रहा है जो 100 कि. मी. की दूरी से चन्द्रमा का चक्कर लगायेगा तो डॉ. कलाम ने सुझाव दिया कि उस पर पर लैन्डिग क्यों नहीं? डॉ. कलाम के साथ इसरो वैज्ञानिकों की यह मीटिंग चन्द्रयान-1 मिशन संबंधित थी। यह सारा विवरण चन्द्रयान-1 मिशन के परियोजना निदेशक श्री एम अन्नादुराई ने वर्ष 2015 में डॉ. कलाम की याद में सम्पन्न एक सेमीनार में कही थी।

चन्द्रयान-2 मिशन के दिलचस्प तथ्य

- चन्द्रमा के दक्षिणी ध्रुव पर उतरने वाला विश्व का पहला मिशन होगा तथा चन्द्र सतह पर अपना रोवर उतरने वाला भारत विश्व का चौथा देश होगा।
- इसरो चेयरमैन के अनुसार मिशन के सबसे जटिल वे 15 मिनट होंगे जब लैन्डर आरबिटर से अलग होगा।
- मिशन में स्वदेशी 13 तथा विदेशी केवल एक नीतभार नासा का होगा।
- जिस प्रमोचन राकेट से चन्द्रयान-2 को लाँच किया गया, वह इसरो का सबसे शक्तिशाली प्रमोचन राकेट जी एस एल वी- मार्क III था।
- मिशन के लैन्डर का नाम भारत के अंतरिक्ष कार्यक्रम के पितामह डॉ. विक्रम साराभाई के नाम पर रखा गया।
- लैन्डर और रोवर जाँच तमिलनाडू के सलेम स्थान से लाई गयी मृदा के ऊपर किया गया। अनेक भूगर्भशास्त्रियों को इस क्षेत्र में ऐसी चट्टाने मिली हैं जो गुणों में लगभग चन्द्र मृदा से मिलती जुलती हैं।
- इस मिशन का प्रमोचन मानव की सतह पर प्रथम लैन्डिंग की 50वीं वर्षगाँठ (20 जुलाई 2019) के दो दिन बाद हुआ।
- यह भारत का दूसरा चन्द्र मिशन है।
- पहले चन्द्रयान-2 को 2011 में लाँच किया जाना था तथा उस समय इसमें रूसी लैन्डर और रोवर लगने थे लेकिन बाद में रूस के मना कर देने के बाद इसमें इसरो निर्मित लैन्डर और रोवर लगाये गयें।
- चन्द्रयान-2 को वास्तविक लाँच के पहले 7 बार 2013 से रोका गया।
- रोवर में 6 पहिए हैं तथा इसे ट्राईकलर से रँगा गया है।
- आरबिटर की संचार प्रक्रिया लैन्डर और भारतीय डीप स्पेस नेटवर्क (ब्यालाल) के बीच होगी। लैन्डर सीधे डीप स्पेस नेटवर्क से संपर्क कर सकता है। रोवर सीधे लैन्डर के सम्पर्क में होगा।

ksshukla@hotmail.com

❑❑❑

राकेश शर्मा की अंतरिक्ष से सफल वापसी
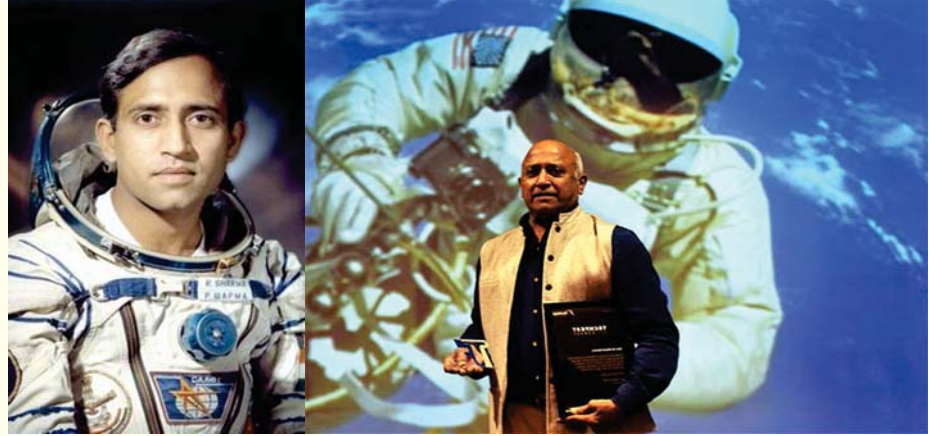
शुकदेव प्रसाद

समकालीन विज्ञान लेखकों में शुकदेव प्रसाद का नाम अग्र पंक्ति में शुमार है। वे पिछले चार दशकों से विज्ञान लेखन कर रहे हैं। देश विदेश में वे अपने विज्ञान लेखन के लिए उन्हें कई पुरस्कार और सम्मान प्रदान किये गये हैं। सोवियत भूमि नेहरू पुरस्कार से सम्मानित वे एक मात्र भारतीय विज्ञान लेखक हैं। कई विज्ञान किताबों की रचना के साथ ही उन्होंने विज्ञान ग्रंथों और संचयन का संपादन किया है। शुकदेव प्रसाद इलाहाबाद में रहते हैं।

अंतरिक्ष स्टेशन 'सैल्यूत-7' से अलग होने के पूर्व तीनों अंतरिक्ष-यूरी मैलिशेव, राकेश शर्मा और स्त्रेकालेव 'सोयूज टी-10' के अवतरण कक्ष में बैठ गए। उनका यान अंतरिक्ष स्टेशन से अलग हुआ और उसने पृथ्वी की कक्षा की परिक्रमा की और शीध्र ही अवतरण कक्ष से आर्बिटल मोड्यूल और इंजन अलग हो गए। फिर अवतरण कक्ष ने धरती के वायुमंडल में प्रवेश किया। इस तरह से 11 अप्रैल, 1984 को शाम 4 बजकर 19 मिनट पर मास्को से दक्षिण पूर्व लगभग 3000 किलोमीटर दूर कजाखिस्तान के अर्कालिक नामक स्थान पर तीनों यात्री सकुशल लौट आए।

पहले यूरी मैलिशेव को यान से बाहर निकाला गया, फिर राकेश शर्मा को। अंत में गेन्नाडी स्त्रेकालेव को बाहर निकाला गया। अपनी सकुशल वापसी पर राकेश शर्मा ने भावुक होकर अपने उद्गार व्यक्त किए:

'मैं उन सब का आभारी हूँ, जिनके आशीर्वाद और शुभकामनाओं से हम सकुशल अपना कार्य करके धरती पर लौट आए हैं। यद्यपि हमारी यात्रा संपन्न हो गई है, पर इसके साथ ही एक नया अध्याय भी आरंभ होता है। हमारे युवा यदि दिलचस्पी लें, तो ये यात्राएं न केवल अपने देश, बल्कि समूची मानवता के लिए कल्याणकारी सिद्ध हो सकती हैं। मैं वायु सैनिक हूं, पर मैं समझता हूँ, यह सम्मान देश के हर सैनिक का सम्मान है।'

यूरी मैलिशेव ने अपने उद्गारव्यक्त करते हुए कहा-'धरती पर वापस लौट कर मैं बहुत खुश हूँ। आखिर यह धरती ही तो है, जो हमारी अपनी है।'

सामान्य जीवन की ओर

कुछ देर तक तो अंतरिक्ष यात्री अपने पैर तक हिला-डुला नहीं पाए। उन्हें उठा कर गाड़ी में बिठाया गया। थोड़ी देर बाद वे धीरे-धीरे सामान्य जीवन की ओर वापस लौट सके, अंतरिक्ष की भारहीनता का प्रभाव अब समाप्त हो चला था। जब उनके अंगों में गति आने लगी थी। तीनों अंतरिक्ष यात्रियों ने डिसेंट माड्यूल (अवतरण कक्ष) पर चाक से अपने दस्तखत बनाए।

शाम तक तीनों यात्री बैकानूर पहुँच गए। डाक्टरी जांच में तीनों स्वस्थ पाए गए।

अगले दिन पुरानी परंपरा के मुताबिक राकेश शर्मा ने बैकानूर के कास्मोनाट होटल की अंतरिक्ष यात्री-वृक्षदीर्घा में 'कारा गाच' का पौधा लगाया। सहयात्री यूरी मैलिशेव और गेन्नाडी स्त्रेकालेव ने उन्हें बधाइयां दीं।

राकेश शर्मा के चेहरे पर इस समूची जटिल यात्रा और उसकी थकान की कोई भी शिकन तक न थी। राकेश शर्मा ने इस यात्रा की परेशानियों को बड़ी सहजता से लिया - 'मेरे लिए तो वैसा ही था, जैसे कि कुछ दिन के लिए जहाज लेकर ड्यूटी पर गया हूँ और कर्तव्य पूरा करके वापस आ

गया हूँ।' जाहिर है कि भारतीय वायुसेना के स्क्वाड्रन लीडर राकेश शर्मा बड़े उत्साहित थे। वाकई, भारत जैसे विकासशील राष्ट्र की यह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी।

स्वदेश वापसी : स्वागत और सम्मान

दिल्ली, 5 मई 1984। पालम हवाई अड्डा । विशिष्टजनों समेत अच्छी खासी भीड़। सभी के चेहरों पर हर्ष और उत्सुकता। प्रथम भारतीय अंतरिक्ष यात्री राकेश शर्मा के स्वागत में यह सारा माहौल बेसब्री से प्रतीक्षारत था। देश के विभिन्न भागों से आए हुए 40 संसद सदस्यों, वायु सेना अध्यक्ष एयर मार्शल दिलबाग सिंह, कई अन्य विशिष्ट व्यक्तियों समेत अपार जन समूह की निगाहें ऊपर आकाश में टिकी हुई थीं। पं. रविशंकर द्वारा संगीतबद्ध, पं. नरेन्द्र शर्मा विरचित स्वागत गान की स्वर लहरियां वातावरण में गूंज रही थीं। इतने में ही उस विमान विशेष के आने की घोषणा की जाती है। राकेश शर्मा की एक झलक मिलते ही एक साथ हजारों कंठों से स्वागत के स्वर उमड़ पड़े। राकेश की माँ श्रीमती तृप्ता शर्मा व उनके पिता श्रीदेवेन्द्र नाथ शर्मा भी स्वतः आगे की ओर बढ़ गए। राकेश शर्मा के पीछे थे विंग कमांडर रवीश मल्होत्रा। साथ में राकेश के सह यात्री यूरी मैलिशेव और गेन्नाडी स्त्रेकालेव तथा वैकल्पिक दल के अन्य यात्री भी थे। अंतरिक्ष यात्रियों और सोवियत मित्रों का भारत भूमि में भव्य स्वागत हुआ। दिल्ली के अतिरिक्त उन्होंने नागपुर, बंगलौर, गोवा, बम्बई आदि नगरों का भ्रमण किया। उन्होंने आगरे का ताज देखा, खजुराहो की कलाकृतियां देखीं और कान्हा अभ्यारण्य भी। आगरे के ताज को देखकर राकेश शर्मा के मुंह से निकला – 'काश, मैं अंतरिक्ष से ताजमहल को देख सकता।'

अलंकरण

अंतरिक्ष यात्रा में शानदार कामयाबी के लिए राष्ट्रपति ने राकेश शर्मा को 'अशोकचक्र' से विभूषित किया। राकेश शर्मा के सहयात्रियों यूरी मैलिशेव व गेन्नाडी स्त्रेकालेव को भी राष्ट्रपति ने 'अशोक चक्र' प्रदान किया। वैकल्पिक दल के यात्री रवीश मल्होत्रा को 'कीर्ति चक्र' प्रदान किया गया। मैलिशेवव स्त्रेकालेव वे पहले विदेशी थे जिन्हें भारतीय गणतंत्र का यह सम्मान मिला। सोवियत राष्ट्रपति चेरनेन्को ने 20 अप्रैल 1984 को प्रथम भारतीय अंतरिक्ष यात्री राकेश शर्मा व उनके सहयोगी यात्रियों यूरी मैलिशेव व गेन्नाडी स्त्रेकालेव को सोवियत संध के सर्वोच्च अलंकरण 'हीरो ऑफ दि सोवियत यूनियन' से सम्मानित किया। और इस तरह पूरा हुआ भारत – सोवियत संघ की प्रगाढ़ मैत्री का एक और अध्याय।

मैंने भी किया था नक्षत्र नगरी का भ्रमण

अब यहां थोडा सा विषयांतर लेकिन असम्बद्ध नहीं। यह मेरे लिए हर्ष का प्रकरण है कि 1987 में मैंने भी नक्षत्र नगरी का भ्रमण किया। मुझे वर्ष 1986 में प्रतिष्ठ 'सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार' प्रदान किया गया था जिसमें एक पखवाड़े तक की सोवियत यात्रा का भी प्रावधान था। मुझसे पूछा गया था कि मुझे अपनी सोवियत यात्रा में कहाँ-कहाँ जाने और क्या-क्या देखने की इच्छा है? मेरी पहली प्राथमिकता 'नक्षत्र नगरी' (मास्को से 300 किलोमीटर दूर) का भ्रमण और संसार के प्रथम अंतरिक्ष यात्री यूरी गागरिन और पहली महिला अंतरिक्ष यात्री वेलेंटीना तेरेश्कोवा की स्मृतियों को संजोए 'स्पेस म्यूजियम' को देखना था। अपने द्विभाषिए के साथ नक्षत्र नगरी पहुँचा और सीढ़ियां चढ़ते हुए टेरेस पर पहुँचा तो अंतरिक्ष यात्री यूरी मैलिशेव मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे । उन्होंने मुझसे पूछा- 'क्या आप मुझको पहचानते हैं ? मैंने अंग्रेजी में कहा- 'एट फर्स्ट साइट, यू आर कामरेड यूरी मैलिशेव।' जब मेरे द्विभाषिए ने उन्हें इसका रूसी में तर्जुमा सुनाया तो वह खिलखिला कर हंस पड़े और मुझे बांहों में भर लिया फिर मेरा हाथ पकड़ अंदर ले गए। वहाँ एक भावी अंतरिक्ष यात्री प्रशिक्षण ले रहा था। मैंने मैलिशेव से अंतरिक्ष यात्राओं की जटिलताओं, तकनीकों, संघर्ष, भारहीनता की स्थिति में रहने, खाने सोने आदि की बहुत सी बातें सीखीं। यह एक अविस्मरणीय यात्रा थी। एक सुनहरा क्षण, अवसर। बस और कुछ नहीं-मेरी यादों के चिनार।

इस यात्रा में मैंने लियो तालस्ताय का घर देखा और लाल चौक में लेनिन का मुजोलियम देखा जहाँ पर लेनिन का शव सुरक्षित अवस्था में था। अदभुत। वास्तव में लेनिन के शव के परिरक्षण के निमित्त यह क्रायोजेनिक लैब बनाई गयी थी। लेनिन के शरीर से रक्त निकाल कर उसमें द्रव नाइट्रोजन (ताप-140 डिग्री) भर दी गई थी और उसे शीशे के एक ताबूत में बंद कर लिटा दिया गया था। उस शीशे के कफिन में द्रव नाइट्रोजन भरी हुई थी इस तरह आप सैकड़ों वर्षों तक मानव शव को परिरक्षित कर सकते हैं । मात्र एक दिन बुधवार को वहाँ प्रवेश वर्जित था। वास्तव में उस दिन लेनिन के वस्त्र उतार, नाइट्रोजन हटाकर उसके शव की साफ-सफाई की जाती थी और फिर नाइट्रोजन भरकर वस्त्र पहनाकर सूट, टाई, बूट सभी कुछ ऊपर पहुंचा दिया जाता था। इस लैब को जारी रखना बहुत खर्चीला था। जब सोवियत संघ का विखंडन हो गया तब मास्को के लिए इस आर्थिक अधिभार को सह पाना दुष्कर होने लगा, अतः देश की जनता से सहमति लेकर उसे ससम्मान दफना दिया गया। उस यात्रा में मैंने मास्को के अतिरिक्त, लेनिनग्राद , रीगा, दाऊगावा, लैत्विया आदि का भी भ्रमण किया जो अब स्वतंत्र देश बन चुके हैं।

सोवियत भूमि नेहरू पुरस्कार : औचित्य एवं मंतव्य

पंडित जवाहर लाल नेहरू के निधन के तत्काल बाद 1964 में एक कोष की स्थापन की गई और इसे 'दृढतर सोवियत-भारत मैत्रीकोष' की संज्ञा दी गई। विश्वशांति और राष्ट्रों के बीच मैत्री के एक महान अलंबरदार पंडित नेहरू की स्मृति सोवियत जनता और भारतीय

जनता को समान रूप से प्रिय रही है और अभी भी उतनी ही उर्जस्वित है। भारत के औद्योगिक विकास में सोवियत संघ की भूमिका को कोई नकार नहीं सकता है। रूस-भारत की यह मैत्री अभी भी बरकरार है ।

भारत-सोवियत मैत्री के ध्येय के प्रति समर्पित सोवियत भूमि पत्रिका ने इस कोष की स्थापना करने तथा जवाहर लाल नेहरू के प्रिय ध्येय का संवर्धन करने वाली साहित्य और पत्रकारिता के क्षेत्र की सर्वोत्तम कृतियों एवं रूसी क्लासिकी ग्रंथों और सोवियत कृतियों के भारतीय भाषाओं में अनुवाद करने के लिए तथा साथ ही रचनात्मक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में किए गए सराहनीय कार्य के लिए सोवियत भूमि नेहरू पुरस्कार प्रदान करने का निर्णय किया गया। वर्ष 1965 से प्रतिवर्ष कला, संस्कृति, सिनेमा-थिएटर, साहित्य, पत्रकारिता, खेल एवं विज्ञान के क्षेत्रों में अपनी महान सेवाएं प्रदान करने वाली नाम चीन विभूतियों को इस लब्ध प्रतिष्ठ पुरस्कार से नवाज़ा जाता रहा है। कुछेक नाम : सुमित्रानंदन पंत, अली सरदार जाफरी, अमृत राय, बनारसी दास चतुर्वेदी (1965), हरिवंश राय बच्चन, कृश्न चंदर, रघुपति सहाय फिराक, जी शंकर कुरूप (मलयाली कवि), बलराज साहनी, आर.वेंकट रामन(आगे चलकर भारत के राष्ट्रपति 1967), यशपाल(1969), अमृत लाल नागर (1970), गोपी कृष्ण गोपेश (1971), उपेन्द्र नाथ अश्क (1972), जां निसार अख्तर, नरगिस दत्त (1974),अरूणा आसफ अली, कैफी आजमी (1975), मृणाल सेन (1979), राज कपूर (1981), डह्। राम विलास शर्मा, इस्मत चुगताई (1982), उस्ताद बिस्मिल्लाह खां, अमर कांत (1984), सत्यजित राय, शबाना आजमी (1985)। 1986 की चर्चा मैं पहले ही कर चुका हूँ। इसमें मेरे साथ गुरू दियाल सिंह, ज्ञान रंजन और शतरंज खिलाड़ी दिव्येंदु बरूआ तथा अभिनेता ओमपुरी को समादृत किया गया था। 1887 मेंविश्व शतरंज चैंपियन विश्वनाथन आनंद और अब्दुल विस्मिल्लाह को पुरस्कृत किया गया। 1989 में श्याम सुन्दर बेनेगल, देविका रानी रोरिक, वी.के.माधवन कुट्टी, अंतरिक्ष विज्ञानी शिव प्रसाद कोष्टा को इस सम्मान से अलंकृत किया गया ।

तत्पश्चात सोवियत महासंघ का विघटन, फलस्वरूप इस पुरस्कार के रजत जयंती वर्ष (1990) में पुरस्कारों की समस्त राशि कुष्ट रोगियों की सेवा के निमित्त समर्पित मदर टेरेसा (निर्मल सदन की स्थापना हेतु) को प्रदान कर दिया गया। और इस प्रकार एक महान परंपरा की इतिश्री हो गई, हमारा बीता हुआ अतीत। मुझे इस बात की खुशी है कि मैं भी उनका एक अभिन्न अंग रहा हूं। अस्तु!

sdprasad24oct@yahoo.com

❐❐❐
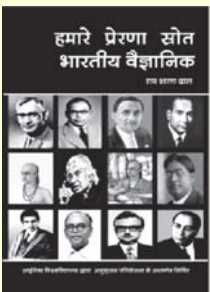
राम शरण दास 2 अप्रैल 1944 को मुजफ्फरनगर मे जन्में। मेरठ विश्वविद्यालय से एम.एस-सी एवं दिल्ली विश्वविद्यालय से बी.एड. और एम.एड. किया। सीबीएसई, एनसीईआरटी, एनआईओएस तथा इग्नू के लिये आपने विज्ञान पुस्तकों का लेखन किया। विज्ञान लेखन के अतिरिक्त आपने अनुवाद के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किये हैं। व्हिट्टेकर पुरस्कार, राजीव गांधी राष्ट्रीय ज्ञान-विज्ञान मौलिक लेखन पुरस्कार आदि से सम्मानित रामशरण दास ने कई विश्व प्रसिद्ध विज्ञान कथाओं तथा उपन्यासों का संक्षिप्तिकरण किया। उक्त पुस्तक का उद्देश्य उभरते युवा मस्तिष्कों को वैज्ञानिकों, विज्ञान-विधियों, वैज्ञानिक आविष्कारों औरउनके समाज पर प्रभावों आदि के विषय में और अधिक अध्ययन करने की प्रेरणा देना है जिससे वे वैज्ञानिक ज्ञान संपन्न समाज के निर्माण के लिए संकल्प लें।

•

एम.एस-सी, डीफिल और पी.एच-डी शिक्षित डॉ. सुनंदा दास का जन्म 13 जून 1959 को इलाहाबाद में हुआ। उन्हें एकेडमिक एक्सीलेंस अवार्ड, शताब्दी सम्मान : विज्ञान परिषद, श्रीमती उमाप्रसाद विज्ञान लेखन सम्मान से सम्मानित डॉ. सुनंदा दास की रचनायें वैज्ञानिक, साइंस रिपोर्टर, विज्ञान और अविष्कार आदि में प्रकाशित होती रही हैं। ग्रीन हाउस गैसें, शोधपत्र, रिव्यू आर्टिकल, बुक चेप्टर आदि कृतियां प्रकाशित हैं। आप अकार्बनिक रसायन विज्ञान, चौधरी महादेव प्रसाद महाविद्यालय में एसोसियेट प्रोफेसर हैं। प्रस्तुत पुस्तक में प्रदूषण से जन्म लेने वाले रोगों का विश्लेषण है। पूर्णतः प्रदूषण युक्त विश्व संभव नहीं है, पर यह प्रयास तो किया जा सकता है कि हम भौगोलिक सीमाओं की परवाह किए बगैर उसे न्यूनतम करें। प्रदूषण और प्रदूषणजनित रोग एक ज्वलंत समस्या ही नहीं बल्कि एक तरह का नासूर है जो साल दर साल हमारे द्वारा की गई गलतियों का परिणाम है। पुस्तक हमें अपनी प्राकृतिक संसाधनों का इस्तेमाल सोच समझकर करने और प्रदूषण रोकने या कम करने की दिशा में सकारात्मक प्रयास करने के लिए जागरूक करती है।
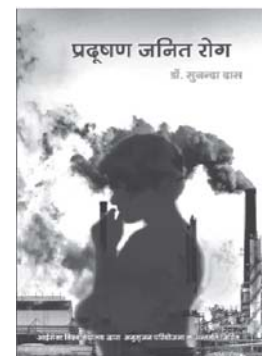
स्वर्ण-उत्पत्ति का रहस्य : चौथी गुरूत्वीय तरंग

डॉ. कपूरमल जैन

डॉ. कपूरमल जैन वरिष्ठ विज्ञान लेखक हैं। भौतिकी शास्त्र से संबंधित लेख लिखने में वे सिद्धहस्त हैं। घर-घर में विज्ञान जैसी लोकप्रिय शृंखला भी उन्होंने लिखी है। आण्विक भौतिकी के क्षेत्र में उन्होंने शोधकार्य किया है। अब तक 225 से अधिक लेख तथा 15 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकीं हैं। डॉ. कपूरमल जैन की लोक व्यापीकरण एवं विज्ञान की शिक्षण पद्धति में नवाचार लाने में गहरी रुचि है। वे भोपाल में निवास करते हैं तथा इस दिशा में कई वर्षों से कार्य कर रहे हैं।

17 अगस्त 2017 को 'चौथी गुरूत्वीय तरंग' को संसूचित किया गया, जिसकी अधिकारिक घोषणा सितम्बर 2017 में हुई। अब तक कुल 11 'गुरूत्वीय तरंगें' खोजी जा चुकी हैं। लेकिन, चौथी को छोड़ कर सभी 'गुरूवीय तरंगें', 'कृष्णविवर तारों' ('ब्लेक होल') की टक्करों से उत्पन्न हुई हैं। चौथी 'गुरूत्वीय तरंग' के 'न्यूट्रॉन तारों' की टक्कर से उत्पन्न होने के कारण इसकी खोज ने वैज्ञानिक जगत में एक नयी क्रांति की शुरूआत की है।

'गुरूत्वीय तरंगों' की खोज के लिए विशेष व्यवस्था स्थापित की गयी है। इसे 'लिगो' (Laser Interferometer Gravitational-Wave Observatory), जिसका नया संस्करण 'प्रगत लिगो' है, कहते हैं। इस पर काम रहे वैज्ञानिकों को गुरूत्वीय तरंग के प्रथम संकेत 14 सितम्बर 2015 को मिले। लेकिन, यह तुक्का भी हो सकती थी। अतः घोषणा के पूर्व अवलोकनों को ठीक से जाँचने-परखने के बाद जब वैज्ञानिकों को पक्का भरोसा हो गया तब उन्होंने 11 फरवरी 2016 को प्रथम गुरूत्वीय तरंग के खोजे जाने की घोषणा की। इसे गुरूत्वीय तरंग (GW150914) नाम दिया गया। इस खोज के आधार पर वैज्ञानिकों ने प्रकृति की उस भाषा को समझ लिया, जिससे हमारी जान सकने वाली सीमाओं से परे घट रही अगम्य घटनाओं को जानने की भी प्रबल संभवना जाग गयी। इस तरह 'गुरूत्वीय तरंगों' की यह खोज इतनी महत्त्वपूर्ण और क्रांतिकारी थी कि इसे मई 2016 में 'मूलभूत भौतिकी' का प्रतिष्ठित 'विशेष ब्रेकथ्रू प्राइज' के लिए चुना गया तथा इसके बाद सन् 2017 में भौतिकी के नोबेल पुरस्कार के लिए भी चुना गया। इस खोज के बाद इन तरंगों की खोज का सिलसिला आरंभ हो गया। प्रथम 'गुरूत्वीय तरंग' को प्राप्त करने के बाद 17 अगस्त 2017 तक तीन और 'गुरूत्वीय तरंगों' (GW151226, GW170104 तथा GW170814) को प्राप्त किये जाने की घोषणा हुई।

चौथी गुरूत्वीय तरंग की खोज

चौथी 'गुरूत्वीयतरंग' को पहले 'प्रगत लिगो' के 'लिविंगस्टोन' वेधशाला में और फिर इसके 6 मिलीसेकण्ड के बाद 'हेनफोर्ड' में रिकार्ड किया गया। इसके 6 मिली सेकण्ड के बाद इटली में स्थापित 'वर्गो' वेधशाला, जिसे इटली, फ्रांस, नीदरलैण्ड, पोलैण्ड, हंगरी और स्पेन ने मिल कर 'पीसा' के पास स्थापित किया है, के द्वारा भी संसूचित किया गया। सभी स्थानों पर यह तरंग सबसे अधिक शक्तिशाली संकेत के रूप में मिली।

चौथी 'गुरूत्वीय तरंग' को रिकार्ड करने के पूर्व 'एक्स किरणों' की एक चमक पृथ्वी के 'कृत्रिम उपग्रहों' द्वारा रिकार्ड की गई। और, फिर इसके लगभग दो सेकण्ड के बाद 'गुरूत्वीय तरंगें' पृथ्वी पर पहुँची। इन दोनों प्रकार की तरंगों का लगभग एक-साथ पहुँचना यह प्रमाणित करता है कि ये दानों एक समान वेग से चलती हैं, जैसा कि आईंस्टीन ने अपने 'सापेक्षता के सामान्य सिद्धांत' में बताया था।

घटना का पुर्नसृजन और चौथी गुरूत्वीय तरंग का विश्लेषण

वैज्ञानिकों ने घटना का पुनर्सृजन कर गणना की और बताया कि चौथी 'गुरूत्वीय तरंग' का स्रोत पृथ्वी से करीब 1300 लाख प्रकाशवर्ष दूर ही स्थित था। यह स्रोत दो 'न्यूट्रॉन तारों' की टक्कर के

बाद उनके एक होने की प्रक्रिया के दौरान निर्मित हुआ था। एक-दूसरे के परितः घूमते इन न्यूट्रॉन तारों को करीब सौ सेकण्ड तक ही वैज्ञानिक ट्रेक कर सकते थे। फिर, एक दूसरे के करीब आते हुए ये टकराये। इस दौरान इन्होंने ऊच्च-ऊर्जा के विकिरण उत्सर्जित किये।

इस तरह चौथी 'गुरूत्वीय तरंग' को उत्पन्न करने वाली यह घटना 'किलोनोवा' (Kilonova) से संबंधित थी। न्यूट्रॉन तारों के मिलन के समय होने वाले विस्फोट को 'किलोनोवा' कहते हैं। इसे वैज्ञानिकों ने उसी रात संसूचित किया। कुछ दिन बाद जब फिर उस 'लोकेशन' को देखा गया तब वह तारा मंद होता हुआ मिला, जिसमें विस्फोट हुआ था। इस 'लोकेशन' की सही-सही जानकारी मिलने का बहुत बड़ा लाभ तत्काल मिला। विश्व की विभिन्न वेधशालाओं को संदेश भेज दिया गया, ताकि सब अपने टेलीस्कोप की दिशा को उस ओर फोकस कर सकें, जहाँ टक्कर हुई है। इससे टक्कर के बाद मिलने वाले विद्युत चुम्बकीय ऊर्जा की विभिन्न 'स्पेक्ट्रल-परास' में मिलने वाले विकिरणों का अध्ययन कर अधिक से अधिक जानकारियाँ प्राप्त करने में सहायता मिल सके। इसके साथ ही वैज्ञानिकों ने अंतरिक्ष में स्थापित 'हबल टेलीस्कोप' तथा 'चंद्रा एक्सरे वेधशाला' को भी 'किलोनोवा' पर फोकस किया और इसकी सहायता से 'न्यूट्रॉन तारों' के मिलन से हो रहे सृजन की एक झलक देखी। हो सकता है कि मिलन के बाद यह 'कृष्णविवर' बन गया हो। लेकिन, अभी इस बारे में निश्चिततापूर्वक कुछ कहा नहीं जा सकता है।

वैज्ञानिकों ने महसूस किया कि 'न्यूट्रॉन तारे' से मिलने वाली तरंग का मापन उतना ही क्रांतिकारी है जितना 'कृष्णविवर' से उत्पन्न होने वाली पहली तीन तरंग का मापन था। क्योंकि, इस घटना के साथ जो विभिन्न विकिरण उत्सर्जित होते हैं, उन्हें 'कृष्णविवर' तो अपने में से बाहर निकलने नहीं देता है। लेकिन, 'न्यूट्रॉन तारों' से संदेशों के रूप में बहुत कुछ बाहर निकलता है। इसने 'मल्टी-मैसेंजर एस्ट्रोनॉमी' को जन्म दिया।

`मल्टी-मैसेंजर एस्ट्रोनॉमी'

चौथी 'गुरूत्वीय तरंग' की खोज से'खगोलिकी' के क्षेत्र में 'मल्टी-मैसेंजर एस्ट्रोनॉमी' नामक नयी विधा की शुरूआत हुई। यह किसी
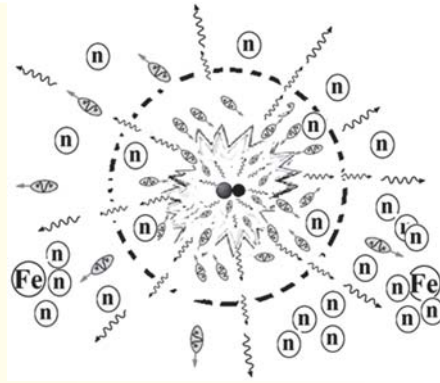
गुरूत्वीय तरंगों का महत्त्व निर्विवादित रूप से स्थापित हो गया। अब इनकी खोज के लिए वैज्ञानिक पृथ्वी के विभिन्न भागों में संसूचकों को स्थापित करना चाहते हैं। वर्तमान में ये अमरीका, इटली और जर्मनी में स्थापित है। `लिगो' की ही तरह भारत में भी एक वेधशाला के निर्माण का कार्य प्रगति पर है, जो वर्तमान में संचालित अमरीका की ऑब्जर्वेटरीज़ के साथ मिल कर कार्य करेगी। विश्व में कई और परियोजनाओं पर भी कार्य चल रहा है। इनके पूरा होते ही संसूचकों के जाल से इनके संसूचन में तेजी आएगी तथा क्षमता में वृद्धि होगी।

खगोलीय घटना के दौरान डाटा के रूप में मिलने वाले विभिन्न प्रकार के संदेशों को पढ़ने और विश्लेषित करने के लिए प्रयुक्त की जाने वाली समन्वित अध्ययन की विधा है। ये संदेश विद्युतचुम्बकीय तरंगों, ग्रेविटेशनल तरंगों, न्यूट्रिनो आदि में कोडित हो सकते हैं। इन संदेशों को डिकोड कर घटना से जुड़ी विभिन्न जानकारियों को विश्वासपूर्वक तरीके से हांसिल किया जाता है। घटना का संबंध सुपरनोवा, अनियमित न्यूट्रॉन तारे, तारों की टक्कर, गामा किरण प्रस्फोट (गामा रे बर्स्ट), सक्रिय मंदाकिनीय केंद्र (एक्टिव गेलेक्टिक न्यूक्लिया), आपेक्षिकीय प्रधार (रिलेटिविस्टिक जेट) आदि से हो सकता है। चौथी 'गुरूत्वीय तरंग' की खोज के दौरान प्राप्त डाटा और संदेशों से कई अहम जानकारियाँ मिली हैं।

`गामा रे बर्स्ट' के संबंध में बड़ा खुलासा

चौथी 'गुरूत्वीय तरंग' की खोज के दौरान प्राप्त डाटा और संदेशों के विश्लेषण अब तक रहस्य साबित हो रहे 'गामा किरण प्रस्फोट' के संबंध में एक बड़ा खुलासा हुआ। ये प्रस्फोट बहुत ही शक्तिशाली ऊर्जा-उत्सर्जन के केंद्र होते हैं। इन्हें जब-तब दूरस्थ आकाशगंगाओं में देखा गया है। ये बहुत कम समय (कुछ मिलीसेकेण्ड से लगा कर मिनट) तक अस्तित्व में रहते हैं। लेकिन, इस अल्पावधि में ही इनसे इतनी अधिक ऊर्जा उत्सर्जित हो जाती है, जितनी कि सूर्य अपने सम्पूर्ण जीवन-काल में करता है। अब वैज्ञानिकों को यह स्पष्ट समझ में आ गया कि उपग्रहों द्वारा अक्सर देखे जाने वाले 'गामा किरण प्रस्फोट' एक-दूसरे के करीब आ रहे 'न्यूट्रॉन तारों' और उनके टकराने की वजह से पैदा होते हैं।

पृथ्वी पर मिलने वाले भारी और बेशकीमती तत्वों के निर्माण की जन्म-स्थली

चौथी 'गुरूत्वीय तरंग' की खोज के साथ ही इस घटना के दौरान उत्पन्न होने वाली विद्युतचुम्बकीय तरंगों के अध्ययन से ऐसे स्पष्ट 'स्पेक्ट्रल संकेत' मिले, जिनसे यह तथ्य स्थापित हुआ कि 'किलोनोवा' लोहे से भारी 'सोने', तथा 'प्लेटिनम' जैसे पृथ्वी पर मिलने वाले भारी और बेशकीमती तत्वों के निर्माण का जन्म-स्थल भी है। 'किलोनोवा' की घटना के समय कुछ 'न्यूट्रॉन-पदार्थ' आसपास के वातावरण में बिखरता है। इस कारण यहाँ 'न्यूट्रॉनों' की संख्या में बहुत अधिक बढ़ोतरी हो जाती है। इस न्यूट्रॉन-आधिक्य वाले स्थान पर पहले से ही उपस्थित लोहे जैसे तत्वों के नाभिक तेजी से न्यूट्रॉनों का प्रग्रहण करने लगते हैं। अब अगर ये नाभिक रेडियोधर्मी तरीके से क्षय होने के पहले ही दूसरे न्यूट्रॉन को प्रग्रहण (केप्चर) करने में सफल हो जाते हैं तो लोहे से भारी तत्वों का निर्माण आरंभ हो जाता है। वैज्ञानिकों ने इस प्रक्रिया को आर-प्रोसेस (रेपिड न्यूट्रॉन केप्चर प्रोसेस) नाम दिया। चौथी गुरूत्वीय तरंग के मापन इस प्रोसेस के अस्तित्व को प्रमाणित कर दिया तथा स्पष्ट कर दिया कि 'किलोनोवा' की घटना के दौरान लोहे से भारी रासायनिक तत्वों का संश्लेषण होता है। अब तक वैज्ञानिकों को यह जानकारी तो थी कि तारों के केंद्र में 'नाभिकीय संलयन' की क्रियाओं से हीलियम, बेरीलियम, कार्बन आदि जैसे भारी तत्त्वों का निर्माण होता है। लेकिन,

लोहे से भारी 'सोने' तथा 'प्लेटिनम' का बनना रहस्य था। अब यह रहस्य खुल गया है।

संसूचकों का जाल -अन्य और वेधशालाएं

गुरूत्वीय तरंगों का महत्त्व निर्विवादित रूप से स्थापित हो गया। अब इनकी खोज के लिए वैज्ञानिक पृथ्वी के विभिन्न भागों में संसूचकों को स्थापित करना चाहते हैं। वर्तमान में ये अमरीका, इटली और जर्मनी में स्थापित है। 'लिगो' की ही तरह भारत में भी एक वेधशाला के निर्माण का कार्य प्रगति पर है, जो वर्तमान में संचालित अमरीका की ऑब्जर्वेटरीज़ के साथ मिल कर कार्य करेगी। विश्व में कई और परियोजनाओं पर भी कार्य चल रहा है। इनके पूरा होते ही संसूचकों के जाल से इनके संसूचन में तेजी आएगी तथा क्षमता में वृद्धि होगी।

अमरीका, इटली तथा जर्मनी की वेधशालाओं के साथ 'लिगोइंडिया' 5वीं वेधशाला होगी, जो सबसे अधिक सुग्राही होगी। आशा है कि सन् 2024 तक यह काम करना शुरू कर देगी। इस तरह आने वाले निकट भविष्य में 5 संसूचक ऑनलाइन तैयार रहेंगे। इनके साथ ही एक अति महत्वाकांक्षी परियोजना 'लिसा' (लेसर इंटरफेरोमीटर स्पेस एंटेना) पर कार्य चल रहा है। इसके अलावा 'यूनिवर्सिटी ऑफ टोक्यो' की 'इंस्टीट्यूट फार कॉस्मिक रे रिसर्च' में 'काग्रा' (कामिओका ग्रेविटेशनल वेव डिटेक्टर) परियोजना पर कार्य चल रहा है। यह इतने अधिक अंतरिक्ष के क्षेत्र को स्केन करेगा कि इससे हमें करीब 10 सिग्नल प्रति वर्ष मिलने लगेंगे। इस तरह आने वाले समय में जब अंतरिक्ष में स्थापित दूरदर्शी भी मौजूद रहेंगे, तब गुरूत्वीय तरंग खगोलिकी (एस्ट्रोनॉमी) अपनी पूरी क्षमता के साथ सम्पूर्ण रंग में नजर आएगी तथा प्रकृति के अकल्पनीय रहस्यों को उजागर करने लगेगी।

परवान चढ़ती आशाएं और संभावनाएं

गुरूत्वीय तरंगों की खोज से वैज्ञानिक बहुत उत्साह में हैं। आशा है कि अब उन्हें वे जानकारियाँ मिलने लगेंगी, जिनको अब तक वे मान कर बैठे थे कि इन्हें प्रकृति हमारे साथ बाँटना नहीं चाहती हैं। अभी तक वैज्ञानिकों द्वारा किये गये अध्ययन से कई नयी संभावनाएं सामने आई हैं। इनमें से कुछ इसप्रकार हैं –

- 'बिगबैंग' के बाद ब्रह्माण्ड तीव्र 'फुलाव' के दौर से गुज़रा है। अगर सभी दिशाओं में यह आरंभिक 'फुलाव' सममित नहीं रहा होगा तो इससे भी 'गुरूत्वीय तरंगें' पैदा हुई होंगी, जिसे आज भी 'अवशेषात्मक प्रतीक' के रूप में गुरूत्वीय विकिरण के रूप में मौजूद रहना चाहिए। वैज्ञानिकों को आशा है कि जिस तरह सन 1965 में पेंजिऑस तथा विल्सन ने बिगबैंग के 'अवशेषात्मक प्रतीक' को 'माइक्रोवेव पृष्ठभूमि' के रूप में प्राप्त किया था, उसीतरह 'गुरूत्वीय तरंग पृष्ठभूमि' के रूप में भी इसे संसूचित कर पाना संभव हो सकता है। ऐसा होने पर वैज्ञानिकबिगबैंग से 'बेबी- ब्रह्माण्ड' बनने की कहानी को गढ़ने में सफल हो सकेंगे।
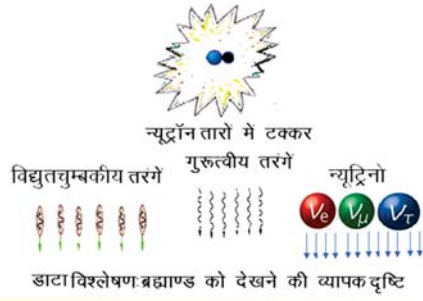
'मल्टी मैसेंजर एस्ट्रोनॉमी'

डाटा विश्लेषण:ब्रह्माण्ड को देखने की व्यापक दृष्टि

> अभी तक हमने जिन `गुरूत्वीय तरंगों' को प्राप्त किया है, वे प्राकृतिक घटनाओं से उत्पन्न हुई हैं। इन तरंगों का एक वृहद स्पेक्ट्रम होता है, जिसमें एक मीटर के करोड़वें भाग (10^{-7} मीटर) से ले कर दस अरब मीटर (10^{11} मीटर) लम्बी तरंगें होती हैं। वैज्ञानिकों को आशा है कि वे निकट भविष्य में इन्हें नियंत्रित तरीके से प्रयोगशाला में भी उत्पन्न करने में सफल होंगे।

- अभी तक 'कृष्णविवर' तथा 'न्यूट्रॉन तारों' जैसे अदृश्य खगोलीय पिण्ड भी अब दृश्य पिंड बन कर सामने आये हैं। अब वैज्ञानिकों को कुछ और नये आकाशीय पिण्डों तथा ऊर्जा स्रोतों को भी खोजे जाने की भी आशा है।
- इन तरंगों पर स्रोत या प्रेक्षक के बीच सापेक्षीय गति के कारण उत्पन्न होने वाले 'डॉप्लर प्रभाव' को भी देखे जाने की उम्मीद है।
- अभी तक के सारे प्रमाण आईंस्टीन के सापेक्षता के सामान्य सिद्धांत के पक्ष में ही हैं। लेकिन, हो सकता है कि अब ऐसा कुछ मिल सकता है जिससे इसे संशोधित करने तथा और बेहतर बनाने के सूत्र मिल जाएं।
- 'अंध पदार्थ' (डार्कमेटर) के बारे में अब तक कोई प्रामाणिक जानकारी नहीं मिली है। ब्रह्माण्ड में करीब 23 प्रतिशत पदार्थ 'अंध पदार्थ' के रूप में मौजूद है। चूंकि पदार्थ गुरूत्व पैदा करता है, अतः 'अंध पदार्थ' का पता लगाने में गुरूत्वीय तरंगों के अध्ययन से वैज्ञानिकों को बहुत आशा है।
- 'कॉस्मिक स्ट्रिंग' दिक्काल में सिलवट के रूप में होती है। इसमें बहुत अधिक ऊर्जा संघनित रह सकती है। वैज्ञानिकों को आशा है कि वे 'गुरूत्वीय तरंग एस्ट्रोनॉमी' से अध्ययन के दौरान इनके प्रमाण भी प्राप्त कर सकते हैं।
- अभी तक हमने जिन 'गुरूत्वीय तरंगों' को प्राप्त किया है, वे प्राकृतिक घटनाओं से उत्पन्न हुई हैं। इन तरंगों का एक वृहद स्पेक्ट्रम होता है, जिसमें एक मीटर के करोड़वें भाग (10^{-7} मीटर) से ले कर दस अरब मीटर (10^{11} मीटर) लम्बी तरंगें होती हैं। वैज्ञानिकों को आशा है कि वे निकट भविष्य में इन्हें नियंत्रित तरीके से प्रयोगशाला में भी उत्पन्न करने में सफल होंगे। इस तरह अब हम निश्चित ही एक नये दौर में प्रवेश कर रहे हैं जहाँ हम 'मल्टी-मैसेंजर एस्ट्रोनॉमी' के जरिये ब्रह्माण्ड की नई भाषाओं को पढ़ने और समझने लगे हैं। अतः इस सदी में हमारे सामने ब्रह्माण्ड के बारे में कई रहस्योद्घाटन होने जा रहे हैं। फिलहाल लीगो और वर्गो संसूचक का काम रोक दिया गया है। 2019 में ये फिर से अपना कार्य आरंभ कर देंगे। आशा है, इसके बाद कई और तरंगों की खोज होंगी तथा इनके सिग्नेचरों के विश्लेषण से ब्रह्माण्ड के उद्गम के बारे में कई रहस्य उजागर होंगे।

kapurmaljain2@gmail.com

पारंपरिक औषधीय पेड़-पौधों का महत्व

डॉ.कृष्ण कुमार मिश्र

घरेलू चिकित्सा में बहुत सारे पेड़-पौधों का इस्तेमाल समाज में सदियों से होता रहा है। ये पेड़-पौधे प्रायः हमारे आसपास सरलता से उपलब्ध रहे हैं तथा उनका औषधीय महत्व रहा है। साधारण चोट, मोच, सर्दी-जुकाम, खांसी, बुखार, उल्टी, दस्त, बदहजमी, जैसे सर्वसाधारण रोगों में ये पौधे बड़े उपयोगी रहे हैं। वास्तव में ये हमारी परंपरा में इतने घुलमिल गये हैं कि समाज का यह पारंपरिक ज्ञान तमाम घरेलू नुस्खों के रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी चलते हुए आज भी कायम है। इस लेख में इन्हीं कुछ पारंपरिक औषधीय वनस्पतियों की चर्चा की गयी है।

डॉ.कृष्ण कुमार मिश्र ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से रसायन विज्ञान में पीएच-डी. की उपाधि प्राप्त की। आप टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान मुंबई के होमी भाभा विज्ञान केन्द्र में एसोसिएट प्रोफेसर हैं। लोकप्रिय विज्ञान लेखक के रूप में आपकी अपार ख्याति है जोकि हिन्दी में आपके व्यापक लेखन से निर्मित हुई है। आपके 250 से अधिक लेख तथा 22 पुस्तकें प्रकाशित हैं। राजभाषा गौरव पुरस्कार, होमी जहाँगीर भाभा स्वर्ण पुरस्कार, शताब्दी सम्मान, राजभाषा भूषण पुरस्कार, इस्वा सम्मान सहित अनेक पुरस्कारों से सम्मानित डॉ.मिश्र मुंबई में निवास करते हैं।

तुलसी, वैज्ञानिक नाम
(Oscimum sanctum)

भारतीय संस्कृति में तुलसी का बहुत अद्वितीय महत्व है। इसे पूजनीय माना जाता है। तुलसी वास्तव में अनेक औषधीय गुणों से परिपूर्ण तथा सर्वाधिक लोकप्रिय पौधा है। प्रायः हर धर में तुलसी का बिरवा होना अपने आपमें इसके महत्व का द्योतक है। आयुर्वेद में तो तुलसी को उसके औषधीय गुणों के कारण विशेष महत्व दिया गया है। तुलसी ऐसी औषधि है जो ज्यादातर बीमारियों में काम आती है। इसका उपयोग सर्दी-जुकाम, खाँसी, दंत रोग और श्वास संबंधी रोग के लिए बहुत ही फायदेमंद माना जाता है। तुलसी पर आधारित तमाम तरह की स्वास्थ्यपरक औषधियाँ आजकल बाजार में उपलब्ध हैं तथा उनकी खूब बिक्री भी हो रही है। यह तुलसी की लोकप्रियता तथा गुणवत्ता का प्रमाण है।

तुलसी एक शाकीय तथा द्विबीजपत्री औषधीय पौधा है। यह झाड़ी के रूप में उगता है और एक से तीन फुट तक ऊँचा होता है। इसकी पत्तियाँ बैंगनी रंग की होती हैं। पत्तियाँ एक से दो इंच लम्बी, सुगंधित और अंडाकार या आयताकार होती हैं। पुष्प मंजरी अति कोमल एवं आठ इंच लम्बी और बहुरंगी छटाओं वाली होती है। इसके पुष्प बैंगनी और गुलाबी आभा वाले होते हैं। तुलसी के बीज चपटे पीले रंग के होते हैं। नए पौधे मुख्य रूप से वर्षा ऋतु में उगते है और शीतकाल में इनमें पुष्प लगते हैं। पौधा सामान्य रूप से दो-तीन वर्षों तक हरा भरा बना रहता है। इसके बाद यह पुराना तथा कमजोर पड़ने लगता है। समय के साथ पत्ते संख्या में कम और छोटे हो जाते हैं और शाखाएँ सूखी दिखाई देने लगती हैं। वास्तव में उस समय उसे हटाकर नया पौधा लगाने की आवश्यकता होती है।

तुलसी की दो मुख्य प्रजातियाँ होती हैं जो श्री तुलसी तथा कृष्णा तुलसी कहलाती हैं। ऐसा विभाजन इनके पत्तियों के रंग के आधार पर किया

गया है। गुणधर्म की दृष्टि से कृष्णा या श्यामा तुलसी को श्रेष्ठ माना गया है। तुलसी में अनेक रसायन पाए गए हैं, जिनमें ग्लाइकोसाइड और एल्केलाइड्स प्रमुख हैं। वैल्थ ऑफ इण्डिया' के अनुसार इस तेल में लगभग 71% यूजीनॉल, 20% यूजीनॉल मिथाइलईथर होता है। श्री तुलसी में श्यामा तुलसी की अपेक्षा कुछ अधिक तेल होता है तथा इस तेल का सापेक्षिक घनत्व भी कुछ अधिक होता है। तेल के अतिरिक्त पत्तों में विटामिन-सी एवं कैरीटीन होता है। तुलसी के बीजों में हरे पीले रंग का तेल लगभग 18 प्रतिशत होता है।

हल्दी, वैज्ञानिक नाम

(Curcuma longa)

हल्दी को औषधीय गुणों की खान कहा गया है। घरेलू नुस्खों में हल्दी को व्यापक तौर पर स्वीकृति मिली हुई है। भारतीय परंपरा में हल्दी को बहुत्व महत्व दिया गया है। हल्दी राइजोम का एक सूखा, साफ एवं पॉलिश किया गया भाग होता है। हमारे खानपान में हल्दी का एक अप्रतिम स्थान है। भोजन में दाल तथा सब्जियां बनाने में हल्दी का खूब प्रयोग होता है। हल्दी के बिना भोजन की कल्पना करना भी कठिन है। लोक परंपरा तथा लोकजीवन में इसे शुभ तथा मांगलिकता का द्योतक माना गया है।

बदन की सुंदरता बढ़ाने में भी हल्दी बहुत उपयोगी है। हल्दी का उबटन लगाने से शरीर में गोरापन आता है, तथा कांति बढ़ जाती है। इससे त्वचा पर अनेक तरह के

संक्रमण ठीक हो जाते हैं। इसका उपयोग कपड़ा उद्योग में रंजक के रूप में भी किया जाता है। साथ ही साथ हल्दी का उपयोग औषधीय तेलों एवं मलहम बनाने में भी किया जाता है। इसे भूख बढ़ाने वाला, वातहर, टॉनिक, रक्तशोधक एवं एंटीसेप्टिक गुण होने के कारण सौंदर्य प्रसाधनों में खूब उपयोग किया जाता है। हल्दी के इन्हीं गुणों के मद्देनज़र कुछ वर्ष पहले अमेरिका तथा पश्चिम के देशों की कुछ कंपनियों ने हल्दी के अनेक गुणों को पेटेण्ट करा लिया था। भारत सरकार ने इसके विरुद्ध याचिका दायर की थी। लम्बी अदालती लड़ाई के बाद सरकार ने इस बात को साबित किया कि हल्दी के औषधीय गुणों की जानकारी भारत के पारंपरिक ज्ञान में सदियों से शामिल है। भारत सरकार ने इस केस को जीता तथा उन कंपनियों का पेटेण्ट रद्द हुआ। समाचार माध्यमों ने तब इसे हल्दी घाटी की लड़ाई कहा था।

हल्दी एक बारहमासी पौधा है जो भरपूर औषधीय गुणों से संपन्न है। यह दो फीट से लेकर तीन फीट तक ऊंचा होता है। इसके तने की ऊँचाई बहुत ही कम होती है तथा

पत्तियां गुच्छेदार होती हैं जो कि लगभग दस से बारह तक की संख्या में होती हैं। यह पौधा उष्णकटिबंधीय दक्षिण एशिया का मूल पौधा है जिसके लिए 20°Cसे 30°Cतक तापमान तथा उपयुक्त वर्षा की आवश्यकता पड़ती है। यह भारतीय मूल का पौधा है। भारत के अलावा इसकी खेती पाकिस्तान, मलेशिया, म्यांमार, वियतनाम, थाईलैंड, फिलीपींस, जापान, कोरिया, चीन, श्रीलंका, नेपाल, पूर्व और पश्चिम अफ्रीका, दक्षिण प्रशांत द्वीपसमूह, मालागासी, कैरेबियन द्वीप समूह और मध्य अमेरिका में भी की जाती है। भारत में आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, तमिलनाडु, कर्नाटक और केरल राज्यों में इसकी खेती की जाती है। महाराष्ट्र के सांगली में पाई जाने वाली हल्दी दुनिया की बेहतरीन किस्म की हल्दी मानी जाती है। इसकी खेती के लिए काली एवं लाल रेतीली मिट्टी उपयुक्त होती है।

इसके पौधों से ही बीजों का निर्माण होता है और बीज से कई पौधे वृद्धि कर सकते हैं। हल्दी में एंटीसेप्टिक गुण पाये जाने के कारण इसका उपयोग धावों, जलने या कटने में किया जाता है। आहार अनुपूरक यानी फूड सप्लिमेंट के रूप में भी हल्दी का उपयोग होता है। कई रोगों के साथ-साथ यह पेट की बीमारियों की अचूक दवा मानी जाती है। कफ दोष के निवारण, तथा शीत के मौसम में ठंड से बचाव में गुनगुने दूध के साथ हल्दी पाउडर का प्रयोग बहुत लाभप्रद माना गया है।

सर्पगंधा, वैज्ञानिक नाम

(Rauwolfia serpentina)

यह एपोसाइनेसी कुल का द्विबीजपत्री, बहुवर्षीय झाड़ीदार, सपुष्पक औषधीय पौधा है। इस पौधे का पता सर्वप्रथम लियोनार्ड राल्फ ने 1582 में लगाया था। भारत तथा चीन की पारंपरिक चिकित्सा प्रणालियों में सर्पगंधा एक प्रमुख औषधि है। भारत में इसका इतिहास करीब तीन हजार साल पुराना है। सर्पगंधा के पौधे की ऊँचाई छः इंच से लेकर दो फुट तक होती है। इसकी पत्ती की संरचना सरल होती है। भारत में मैदानी और पर्वतीय प्रदेशों में इसकी खेती होती है।

सर्पगंधा का प्रयोग सर्पदंश में उपचार के तौर पर किया जाता है। इसमें रिसर्पिन तथा

राउल्फिन नामक उपक्षार पाया जाता है। इसके जड़, तना तथा पत्ती से औषधियों का निर्माण किया जाता है। सर्पगंधा को आयुर्वेद में निद्राजनक बताया गया है। इसका प्रमुख तत्व रिसर्पिन है। इसमें मिलने वाले क्षाराभों में रिसर्पिन, सर्पेन्टिन तथा एजमेलिसिन प्रमुख हैं, जिनका उपयोग उच्च्व रक्तचाप, अनिद्रा, उन्माद, हिस्टीरिया आदि रोगों को रोकने वाली औषधियों के निर्माण किया जाता है। इसकी जड़ों से निर्मित चूर्ण पेट के लिए काफी लाभदायक होता है। इसके सेवन से पेट के अन्दर के कृमि खत्म हो जाते हैं।

रम्फियस नामक एक अंग्रेज का विश्वास था कि सर्पगंधा ही वह पौधा है जिसका सेवन कर नेवला विषैले सर्प द्वारा काटे जाने पर भी अपने प्राणों की रक्षा कर लेता है। एसियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल के संस्थापक सर विलियम जोन्स (Sir William Jones) ने भी सर्पगंधा के विषय में कुछ ऐसे ही विवरण दिए हैं। यद्यपि आज की तारीख में उनके विचारों को विज्ञानसम्मत नहीं कहा जा सकता। भारतीय वनस्पतिशास्त्र के पिता विलियम्स राक्सबर्ग (William Roxburgh) के अनुसार 'तेलिंगा फिजिशियन' (वैद्य) सर्पगंधा का उपयोग ज्वरनाशक, विषनाशक तथा बच्चे के जन्म के दौरान विषम परिस्थितियों में किया करते थे। सर्पगंधा की जड़ों में क्षारों के अतिरिक्त ओलियोरेसिन, स्टेराल, असंतृप्त ऐल्कोहॉल, ओलिक एसिड, फ्यूमेरिक एसिड, ग्लूकोज, सुक्रोज, आक्सीमिथाइल एन्थ्राक्विनोन (oxymethyl anthraquinone) एवं खनिज लवण भी पाये जाते हैं। इन रसायनों में ओलियोरेसिन कार्यिकी रूप से सक्रिय यौगिक होता है तथा शामक (sedative) के तौर पर इस्तेमाल किया जाता है।

नीम, वैज्ञानिक नाम-

(Azadirachta indica)

भारत के लोकजीवन में नीम की बड़ी मान्यता है। नीम भारतीय मूल का पेड़ है जो आकार में बड़ा और छायादार होता है। यह मैलिएसी कुल का पौधा है जो भारत, पाकिस्तान, श्रीलंका, म्याँमार, बाँग्लादेश में बहुतायत से पाया जाता है। नीम तेज़ी से बढ़ने वाला पेड़ है और इसकी ऊँचाई पंद्रह से बीस मीटर तक होती है। यह सदाबहार और धना पेड़ होता है जिसकी पत्तियाँ छोटी होती हैं। इसके फूल सफेद, छोटे और खुशबूदार होते हैं। इसके फल को निबौरी कहते हैं जो हल्के हरे-पीले रंग का होता है तथा स्वाद में कड़वा-मीठा होता है।

नीम में ऐज़ाडिरैक्टिन (Azadirachtin) नामक रासायनिक यौगिक पाया जाता है जिसमें कीटनाशक तथा फफूँदनाशक गुण पाए जाते हैं। इसका तेल मच्छररोधी के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। कील मुँहासों को ठीक करने में इसका तेल बहुत उपयोगी होता है। इसके हर भाग का इस्तेमाल दवा के रूप में किया जाता है। इसकी छाल, पत्ती तथा जड़ से औषधियाँ बनती हैं। नीम की पत्तियों को उबालकर चाय बनाकर पीने से आँतों के कृमि मर जाते हैं। इसकी जड़ बुखार में बहुत लाभदायक होती है और त्वचा सम्बन्धी रोगों के उपचार में काम आती है। यह जैवकीटनाशक का अनुपम उदाहरण है। शास्त्रों में नीम की महत्ता का विविध रूप में वर्णन मिलता है।

फोड़े-फुंसी में नीम की छाल को पीसकर लगा देने का चमत्कारिक लाभ मिलता है। आयर्वेद में नीम के गुणों का विशद् वर्णन मिलता है।

आँवला, वैज्ञानिक नाम-

(Phyllanthus emblica)

आँवला एक पर्णपाती वृक्ष है। इसकी ऊँचाई लगभग आठ से अठारह मीटर तक होती है। यह यूफोर्बिएसी कुल का पौधा है। इसकी शाखाएँ फैली हुई होती हैं और फूल हरे-पीले रंग के होते हैं। इसके फल आकार में गोल, हल्के हरे रंग के तथा अंदर से ठोस होते हैं। आँवले का प्रयोग आयुर्वेद में काफी प्रसिद्ध है। इसकी शाखों, पत्तियों तथा फल आदि हर भाग का उपयोग औषधि के रूप में होता है। इसका फल बुखार, दमा, कफ, हृदय रोगों में लाभदायक है तथा शरीर की रोगप्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने में काम आता है। यह बालों को मज़बूती देता है तथा हमारी आँखों के लिए भी लाभदायक होता है। आंवला विटामिन-सी (ऐस्कॉर्बिक एसिड) का उम्दा स्रोत है। ऐस्कॉर्बिक एसिड शरीर में प्रति-आक्सीकारक की भूमिका निभाता है तथा शरीर में निर्मित होने वाले हानिकारक रसायनों को निष्क्रिय करता है। आंवले में मिलने वाला विटामिन-सी टिकाऊ भी होता है। ध्यान देन की बात है कि आयुर्वेदिक औषधि च्यवनप्राश अवलेह का मुख्य धटक आंवला ही होता है।

पुदीना, वैज्ञानिक नाम-

(Mentha)

पुदीना एक अद्भुत औषधीय पौधा है। यह हाजमे के लिए बिलकुल रामबाण है। इसके सेवन से पाचनक्रिया दुरुस्त रहती है। पुदीने की चटनी बेहद स्वादिष्ट होती है। पेट संबंधी किसी भी प्रकार का विकार होने पर एक चम्मच पुदीने के

रस को एक प्याला पानी में मिलाकर पिएँ। अधिक गर्मी या उमस के मौसम में जी मिचलाए तो एक चम्मच सूखे पुदीने की पत्तियों का चूर्ण और आधी छोटी इलायची के चूर्ण को एक गिलास पानी में उबालकर पीने से लाभ होता है। पुदीना प्रतिजैविक का काम करता है। पुदीने की पत्तियों का ताजा रस नींबू और शहद के साथ समान मात्रा में लेने से पेट की अनेक बीमारियों में आराम मिलता है। पुदीने का रस कालीमिर्च और काले नमक के साथ चाय की तरह उबालकर पीने से जुकाम, खाँसी और बुखार में राहत मिलती है। इसकी पत्तियाँ चबाने या उनका रस निचोड़कर पीने से हिचकियाँ बंद हो जाती हैं।

सिरदर्द में ताजी पत्तियों का लेप माथे पर लगाने से दर्द में बहुत आराम मिलता है। पुदीने की पत्तियों को सुखाकर बनाए गए चूर्ण को मंजन की तरह प्रयोग करने से मुख की दुर्गंध दूर होती है और मसूड़े मजबूत होते हैं। पुदीने का स्वाद अद्भुत होता है। इसकी सुगंध तरोताजा करने वाली होती है। पुदीना एक अच्छा माउथफ्रेशनर भी है। पुदीने को ग्रीष्म ऋतु की संजीवनी बूटी कहा गया है। स्वाद, सौन्दर्य और सुगंध का ऐसा सुन्दर सम्मिलन बहुत कम पौधों में दखने को मिलता है। इसके पौधे की आयु बहुत लम्बी होती है। पुदीना मेंथा वंश से संबंधित एक बारहमासी, खुशबूदार जड़ी है। इसकी विभिन्न प्रजातियाँ का उत्पादन भारत में बड़े पैमाने पर किया जाता है।

इसके पत्तों में मैन्थोल और पेपरमिंट तेल होता है। इसकी गंध बहुत तीव्र होती है। जापानी मिन्ट, मैन्थोल का प्राथमिक स्रोत है। पुदीने की ताजी पत्ती में 0.4-0.6% तेल होता है। तेल का मुख्य धटक मेन्थोल (65-75%), मेन्थोन (7-10%) तथा मेन्थाइल ऐसीटेट (12-15%), तथा टरपीन (पाइपीन, लिकोनीन तथा कॉम्फीन) है। तेल का मेन्थोल प्रतिशत वातावरण के प्रकार पर भी निर्भर करता है। पुदीने में विटामिन 'ए', 'बी', 'सी', 'डी' और 'ई' के अतिरिक्त लोहा, फॉस्फोरस और कैल्शियम भी प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं।

अदरक, वैज्ञानिक नाम- Zingiber officinale

अदरक एक भूमिगत रूपान्तरित तना है। यह खानपान में मसाले के तौर पर इस्तेमाल किया जाता है। अदरक में तमाम औषधीय गुण पाये जाते हैं। अदरक में जिंजेरॉल नामक प्रतिआक्सीकारक पाया जाता है। सर्दी, खाँसी, जुकाम एवं दमा के उपचार में यह लाभप्रद होता है। अदरक शक्ति एवं स्फूर्ति का भंडार माना जाता है। अदरक की खेती दक्षिण एशिया से शुरू हुई जो बाद में पूर्वी अफ्रीका से कैरेबियन क्षेत्र तक फैल गयी। यह एक वार्षिक पौधा है। पूरे पौधे से एक विशेष प्रकार की खुशबू आती है। यह एक बारहमासी प्रकंद है जो कि तीस से पचास सेमी। तक बढ़ता है। यह मुख्यतया भारत और मलेशिया में उगाया जाता है। अदरक की खेती के लिए डेढ़ सौ से तीन सौ सेमी। तक वार्षिक वर्षा की आवश्यकता होती है। यह लगभग हर प्रकार की मिट्टी में उगाया जा सकता है।

मधुमेह (डायबिटीज) के उपचार में भी अदरक का इस्तेमाल किया जाता है। इसके सेवन से गठिया के दर्द से राहत मिलती है। रक्त कोलेस्टेरॉल को कम करने में भी अदरक बहुत गुणकारी है। डायरिया के उपचार में भी यह उपयोगी है। अदरक का उपयोग खानपान में मसाले के रूप में व्यापक तौर पर होता है। इसके अलावा भी यह भोजन में कई तरह से उपयोग किया जाता है। इसमें कई पौष्टिक तत्व जैसे प्रोटीन, खनिज, कार्बोहाइड्रेट, रेशा इत्यादि पाए जाते हैं। अदरक आँतों के लिए एक टॉनिक की तरह कार्य करता है। अदरक को सूख जाने पर सोंठ कहा जाता है जो कि अदरक की तरह ही फायदेमंद होता है।

उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट होता है कि हमारे परिवेश में मौजूद उपरोक्त पेड़-पौधे कितना औषधीय महत्व रखते हैं। ये हमारे सामाजिक तथा लोक जीवन में इतना रच बस गये हैं कि वे हमारी परंपरा का अभिन्न अंग हो गये हैं। इसलिए हमें इनके महत्व को पहचानना होगा।

vigyan.lekhak@gmail.com

नवनीत कुमार गुप्ता ने एम.एससी. विज्ञान संचार तक शिक्षा ग्रहण की और विज्ञान प्रसार से संबद्ध हुए। आपका जन्म 15 अगस्त 1982 को पचौर जिला रायगढ़ में हुआ। अब तक आपने जैव विविधता संरक्षण एवं जलवायु परिवर्तन तथा पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूकता संबंधी 10 पुस्तकें लिखीं। साथ ही 11 पुस्तकों का संपादन तथा अनेक लेखों का अनुवाद किया। राजीव गांधी ज्ञान-विज्ञान लेखन पुरस्कार, मेदनी पुरस्कार, राजभाषा पुरस्कार, श्रीतरूशनपाल पाठक स्मृति बाल विज्ञान पुरस्कार से सम्मानित नवनीत कुमार गुप्ता ने महासागरों की विशेषताओं की संक्षिप्त जानकारी के साथ पृथ्वी ग्रह को सुन्दर और जीवनदायी ग्रह बनाए रखने में इनकी पर प्रकाश डाला गया है। महासागरों के अनोखेपन से परिचित कराने के साथ ही महासागरों एवं सागरों को प्रदूषणरहित बनाए रखने की आवश्यकता पर ध्यान आकर्षित किया गया है।

नींद
कितनी जरुरी है?

सुभाष चंद्र लखेड़ा

नींद से हम सभी परिचित हैं। हम अपनी जिंदगी का एक तिहाई हिस्सा नींद में बिताते हैं। आखिर, हमें नींद क्यों आती है अथवा हम क्यों सोते हैं? यह सवाल वैज्ञानिकों को हजारों वर्षों से परेशान करता रहा है और ताज्जुब की बात है कि आज भी नींद से जुड़ी कई बातें वैज्ञानिकों के लिए अबूझ पहेलियाँ बनी हुई हैं। मजेदार बात यह भी है कि विभिन्न प्राणियों में नींद की समयावधि भी भिन्न - भिन्न है। अपने आलसीपन के लिए मशहूर चमगादड़ और अजगर प्रतिदिन क्रमश बीस और अठारह घंटे सोते है तो बाघ, बिल्ली, चिंपांज़ी, भेड़, हाथी और जिराफ प्रतिदिन औसतन क्रमशः 15.8, 12.1, 9.7, 3.8, 3.3, एवं 1.9 घंटे नींद में बिताते हैं।

नींद के दौरान हमारे शरीर में अनेक परिवर्तन होते हैं। हमारा धमनीय रक्तदाब कम हो जाता है। नाड़ी की धड़कने की दर कम हो जाती है। त्वचा की रक्त-वाहिकाएं विस्तारित हो जाती हैं। आमाशय पथ की क्रियाशीलता बढ़ जाती है। मासपेशियां पूर्णतया विश्रामावस्था में रहती हैं और चयापचय (मेटाबोलिज्म) की दर में दस से बीस प्रतिशत की गिरावट आ जाती है। नींद के अभाव में प्रारंभ में तंत्रिका तंत्र के अति सूक्ष्म कार्य प्रभावित होते हैं। फलस्वरूप भावदशा, अभिप्रेरणा और ध्यान पर बुरा प्रभाव पड़ता है। लम्बे समय तक नींद से वंचित रखे जाने पर व्यक्ति विशेष की प्रमस्तिष्कीय एवं स्वचालित, दोनों तरह की क्रियाएं प्रभावित होती हैं। प्रकंपन, उच्चारण दोष, अक्षि दोलन के साथ - साथ पलकें भी असामान्य रूप से बंद होने लगती हैं। नींद हमारी स्मरण शक्ति को मजबूत करती है।

मिस्र के निवासी आज से तीन हजार वर्ष पूर्व अनिद्रा के उपचार के लिए अफ़ीम का प्रयोग करते थे। लगभग छह सौ वर्ष ईसा पूर्व जन्मे आचार्य सुश्रुत के अनुसार "निद्रा स्वभाव से ही सब प्राणियों में होती है। तम की प्रधानता वाले प्राणियों में दिन और रात में नींद आती है। रजोगुण की अधिकता वालों को बिना कारण के नींद आती है। सत्त्वगुण की प्रधानता वालों को नींद आधी रात के समय आती है। क्षीण कफ़ वाले, वात प्रधानता वाले, मानसिक और शारीरिक दुःख से पीड़ित व्यक्तियों को अच्छी नींद नहीं आती।" चार सौ साठ वर्ष ईसा पूर्व जन्मे प्रसिद्ध दार्शनिक- चिकित्सक हिपोक्रेटीज़ स्वस्थ तन और मन के लिए नींद के महत्त्व से परिचित थे। नींद के विषय में तीन सौ वर्ष ईसा पूर्व जन्मे महर्षि चरक ने कहा था- "सुखं शेते सत्यवक्ता सुखं शेते मितव्ययी। हितभुक् मितभुक् चैव तथैव विजितेन्द्रियः। अर्थात सत्य बोलनेवाला, मर्यादित व्यय करने वाला, हितकारक पदार्थ आवश्यक प्रमाण में खाने वाला, तथा जिसने इन्द्रियों पर विजय पायी हो, वह चैन की नींद सोता है।"

जब हम सोते हैं तो हमें एक ही तरह की नींद नहीं आती है। उसका स्वरुप बदलता रहता है। सोते हुए व्यक्तियों के विद्युत-मस्तिष्क लेख (इलैक्ट्रोऐंसिफेलोग्राम) से पता चला है कि मुख्यतः हमारी नींद दो प्रकार की होती है। सोते समय जब बंद पलकों के भीतर हमारे नेत्रगोलक तीव्रता से घूमते हैं तो उस नींद को वैज्ञानिक 'तीव्र नेत्रगोलक संचलन नींद (रैपिड आई मूवमेंट स्लीप) कहते हैं। नींद के शेष भाग को 'तीव्र नेत्रगोलक संचलन रहित नींद (नॉन-रैपिड आई मूवमेंट स्लीप)' कहते हैं। आठ घंटे की नींद के दौरान 'नेत्रगोलक संचलन' वाली नींद बीच-बीच में थोड़ी-थोड़ी देर के लिए छह-सात बार आती है। ऐसी नींद का कुल समय लगभग डेढ़-दो घंटे होता है। हमारी नींद

रक्षा शरीरक्रिया एवं संबद्ध विज्ञान संस्थान (डिपास), डीआरडीओ से वरिष्ठ वैज्ञानिक के पद से सेवानिवृत सुभाष चंद्र लखेड़ा लोकप्रिय विज्ञान लेखक और बेबाक वक्ता हैं। डिजिटल मंचों पर वे पिछले कुछ वर्षों से अपने यात्रा संस्मरणों को समय-समय पर लिखते रहे हैं। ये संस्मरण वैज्ञानिक आधार पर इतने खरे उतरते हैं कि पाठकों ने इसे एक नई विधा का स्वरूप मान लिया। सुभाष चंद्र लखेड़ा हार्डकोर विज्ञान संबंधी शोध के समानान्तर आम जन को विज्ञान की गूढ़ बातें सरल भाषा में साझा करते आये हैं। आप दिल्ली में रहते हैं।

का शेष समय यानी कुल निद्रा अवधि का 75-80 प्रतिशत भाग 'नेत्रगोलक संचलन रहित नींद' में गुजरता है।

वैज्ञानिक अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि 'तीव्र नेत्रगोलक संचलन नींद' हमारे मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। नींद के इस हिस्से के दौरान हम स्वप्न देखते हैं। नींद का शेष भाग हमारे शरीर के लिए बहुत अधिक उपयोगी प्रतीत नहीं होती है। यदि हम किसी व्यक्ति को 'नेत्रगोलक संचलन' वाली नींद के दौरान जगाते रहें तो शेष नींद लेने के बावजूद वह निद्रा अभावों का शिकार बन जाता है।

सामान्यतया एक स्वस्थ वयस्क व्यक्ति प्रतिदिन लगभग आठ घंटे का समय नींद में बिताता है। नवजात शिशु अपने जन्म से लेकर तीन-चार महीने तक प्रतिदिन औसतन 14 से लेकर 18 घंटे सोते हैं। उम्र बढ़ने के साथ-साथ उनके सोने का समय कम होता चला जाता है। किशोरावस्था से लेकर लगभग वृद्धावस्था में पहुँचने तक सामान्य परिस्थितियों में सभी लोग लगभग छह से लेकर आठ घंटे प्रतिदिन के हिसाब से सोते हैं। बुढ़ापे में लोग अपेक्षाकृत कम सोते हैं। जब किसी वजह से कोई व्यक्ति किसी दिन अपनी नींद पूरी नहीं कर पाता है तो वह अगले दिन या मौका मिलते ही नींद की उस कमी को सामान्य से कुछ अधिक देर तक सोकर पूरा कर लेता है। हम सब बखूबी जानते हैं कि कोई भी इंसान लगातार जागा नहीं रहता है। जहाँ तक नींद न आने या इसकी कमी से होने वाले प्रभावों का सवाल है, गौरतलब है कि नींद मनुष्य के लिए महज एक प्राकृतिक जरूरत नहीं अपितु एक मजबूरी है। हम निरंतर जागना भी चाहें तो भी एक समय सीमा के बाद अपने आसपास की घटनाओं से बेसुध होकर हम निद्रा देवी की गोद में पहुँच जाते हैं।

बहरहाल, हम सभी को कभी न कभी किसी वजह से निद्रा अभाव झेलना पड़ता है। लंबी यात्रा, विवाह एवं रात्रि-जागरण जैसे रात भर चलने वाले सामाजिक और धार्मिक समारोह; दर्द, तनाव अथवा सामान्य दिनचर्या में खलल डालने वाला कोई कारण व्यक्ति विशेष को सामान्य अवधि से अधिक समय तक जागने के लिए विवश कर सकता है। जागने की इस अवधि के लगभग 18 घंटे से अधिक होने पर ऐसे व्यक्ति को नींद की आवश्यकता महसूस होने लगती है। वह व्यक्ति यदि किसी मजबूरी के चलते तब भी न सो पाए तो वह एक विशेष तरह की थकावट का अनुभव करता है। ऐसी स्थिति में पहुँचने पर उसे नींद के झोंके आने लगते हैं। अपने दैनिक जीवन में सदैव रात को सोने वाले व्यक्तियों को जब कारणवश कभी रात भर जागना पड़ता है तो उन्हें अपनी नींद पर काबू करने पर सबसे अधिक कठिनाई रात में दो बजे से लेकर चार बजे के बीच में आती है। यूं थोड़े समय का निद्रा अभाव का हमारे शरीर पर कोई उल्लेखनीय प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है। शरीर में रक्त ग्लूकोज स्तर, रक्तदाब, हृदय गति एवं सांस की प्रक्रिया सामान्य बने रहते हैं। मूत्र और रक्त में कोई विशेष जैव रासायनिक परिवर्तन भी नहीं होते हैं। इतना जरूर है कि नींद में व्यवधान आने से व्यक्ति विशेष की दर्द महसूस करने की संवेदनशीलता में अस्थाई वृद्धि हो सकती है।

'यहां यह तथ्य उल्लेखनीय है कि यदि हम रोज जरूरत से काफी कम सोने लगें तो उससे हमारी मानसिक क्षमता प्रभावित होने लगती है। संकटकालीन परिस्थितियों में राजनीतिज्ञ या सैन्य अधिकारी निद्रा अभाव के शिकार हो सकते हैं और इसका प्रभाव उनके द्वारा लिए जाने वाले महत्त्वपूर्ण निर्णयों पर पड़ सकता है। सामान्य व्यक्तियों पर भी अल्पकालिक निद्रा अभाव का कुप्रभाव पड़ सकता है। उदाहरण के लिए यदि आप देर रात तक जागने के बाद कोई पत्र लिखें तो उसे सुबह पोस्ट करने से पहले जरूर पढ़ें। हो सकता है कि निद्रा अभाव या नींद में खलल पड़ने की वजह से आपने उस पत्र में ऐसा कुछ लिख दिया हो जिसे आप सामान्य अवस्था में कभी नहीं लिखते।

वैज्ञानिकों ने निद्रा अभाव के प्रभावों का अध्ययन करने के लिए मनुष्यों और जानवरों पर कई तरह के प्रयोग किए। ऐसे प्रयोगों के दौरान दीर्घावधि तक जगाये रखने पर कुत्तों के पिल्ले, खरगोश शावक एवं नवजात चूहे मौत के शिकार बन गए। मनुष्यों पर भी उनकी स्वेच्छा से इस तरह के कुछ प्रयोग किए गए। मैदानी क्षेत्रों से ऊंचे पर्वतीय स्थानों में जाने वाले लोगों पर भी निद्रा अभाव का अध्ययन किया गया। ऑक्सीजन के आंशिक दबाव में कमी होने की वजह से तीन हजार मीटर से ऊंचे पर्वतीय स्थानों पर निद्रा अभाव से बचना चाहिए अन्यथा उससे हमें अधिक नुकसान हो सकता है। सीमित प्रयोगों से ज्ञात हुआ है कि सामान्यतया कोई भी स्वस्थ वयस्क मनुष्य लगातार दस दिन से अधिक जागा नहीं रह सकता है। ऐसे ही एक प्रयोग के दौरान एक 27 वर्षीय युवक लगातार 220 घंटे तक जागता रहा। बहत्तर धंटे तक जागे रहने के बाद उस युवक को नींद से बचने के लिए अगले कुछ समय तक खुद से काफी जद्दोजहद करनी पड़ी। जागरण के पांचवे दिन वह युवक अत्यधिक चिड़चिड़ा हो गया और उसके बाद वह मानसिक भ्रान्ति का शिकार होने लगा। दृष्टि भ्रम के कारण उसे अजीबोगरीब दृश्य नजर आने लगे। कभी उसे मेज के ऊपर कोहरा दिखने लगा तो कभी कुछ और। एक दिन उसने सामने की दीवार से एक ऐसी औरत प्रकट

होती हुई देखी जिसके पूरे शरीर से नीली रोशनी निकल रही थी। अपने इस दीर्घकालिक जागरण के अंतिम दिन तक पहुंचते-पहुंचते वह युवक बातचीत करने में कठिनाई अनुभव करने लगा। उसे थोड़ा सा चलने के लिए भी सहारे की जरूरत महसूस होने लगी। ऐसा ही एक दूसरा व्यक्ति सात-आठ दिनों तक जागने के बाद अपने को भूल गया और वह खुद को कोई दूसरा व्यक्ति समझने लगा। उसे यह समझाने के लिए कि वह कौन है, उसके मित्रों को काफी मशक्कत करनी पड़ी।

अमेरिकी शरीरक्रिया वैज्ञानिक नेथेनियल क्लेटमन (Nathaniel Kleitman) की पुस्तक 'स्लीप एंड वैकफुलनेस' में निद्रा अभाव को लेकर चौबीस वर्षीय एक ऐसे युवक का जिक्र है जिसके मानना था कि हम सिर्फ आदत की वजह से सोते हैं अन्यथा हमारे लिए नींद कतई जरूरी नहीं है। अपनी इस धारणा की पुष्टि के लिए उसने दो अमेरिकी निद्रा वैज्ञानिकों (Katz SE and Landis C) से संपर्क किया। वह युवक अपनी प्रारंभिक दृढ़ इच्छा शक्ति के बावजूद कुल 231 घंटे तक ही जाग सका। अपने जागरण के चौथे दिन से ही यह युवक दिवास्वप्न देखने लगा। इसके बाद वह उन दोनों वैज्ञानिकों पर व्यर्थ के दोषारोपण करने लगा। फलस्वरूप, उसकी बेतुकी बातों और अनियंत्रित हरकतों से परेशान होकर उन वैज्ञानिकों ने अपना वह अध्ययन दसवें दिन बंद कर दिया था।

कुल मिलाकर, अब तक किए गए सभी अध्ययनों से यही मालूम हुआ है कि नींद के अभाव में प्रारंभ में हमारे तंत्रिका तंत्र (नर्वस सिस्टम) के अति सूक्ष्म कार्य प्रभावित होते हैं। लंबे समय तक जागे रहने पर हमारे शरीर की प्रमस्तिष्कीय और स्वचालित, दोनों तरह की क्रियाएं प्रभावित होती हैं। ऐसे व्यक्ति में प्रकंपन, उच्चारण दोष, पलकों का असामान्य रूप से बंद होना, स्थिति और दृष्टि भ्रम तथा विचार शून्यता के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। कई दिनों से जागे हुए एक सिपाही से जब उसके कमांडर का नाम पूछा गया तो उसने जवाब दिया कि वह विवाहित है। निद्रा अभाव से पीड़ित एक व्यक्ति को जब दूध पीने को दिया गया तो उसने दृष्टि भ्रम के कारण उस दूध में बालों के गुच्छे नज़र आ रहे थे।

दरअसल, नींद की कमी हमारे मूड, संज्ञानात्मक कार्यों के निष्पादन और सतर्कता को हानि पहुंचाती है। चौबीस घंटे तक जागते रहने के बाद मानसिक कार्यों को करने की हमारी योग्यता में 25 प्रतिशत का ह्रास होता है और 48 घंटे तक जागे रहने पर यह क्षमता लगभग आधी रह जाती है। नींद का संबंध हमारी स्मरण शक्ति से है। नींद के दौरान हमारा दिमाग जागरण के दौरान प्राप्त सूचनाओं को अल्पकालिक स्मृति से दीर्धकालिक स्मृति में संचित करता है। फलस्वरूप, निद्रा अभाव का दुष्प्रभाव इस प्रक्रिया पर भी पड़ता है।

ऐसे संकेत भी मिले हैं जिनसे लगता है कि दीर्घकालिक निद्रा अभाव से संबंधित व्यक्ति के स्वभाव में स्थाई परिवर्तन हो सकते हैं। न्यूयॉर्क का 'डिस्क जॉकी' पीटर ट्रिप के मामले को देखकर तो ऐसा ही लगता है। जनवरी 1959 में पीटर लगातार 8.4 दिनों यानी 201 घंटों तक जागता रहा। इस दौरान वैज्ञानिक उस पर निद्रा अभाव से होने वाले प्रभावों का अवलोकन करते रहे। अपने जागरण के तीन दिन बाद पीटर ने पागलों की तरह हँसना शुरू किया। इसके बाद उसे कीड़े - मकोड़े और लोगों के चेहरे नजर आने लगे। उसे इस दौरान ऐसा भी लगा जैसे उसके कमरे में बिल्ली - चूहा धूम रहे हैं। वह अर्ध विक्षिप्त इंसान की तरह व्यवहार करने लगा। उसने तरह-तरह के अनर्गल आरोप लगाने शुरू कर दिए। उसका कहना था कि वह पीटर ट्रिप नहीं है। दो सौ एक धंटे तक जागने के बाद वह खुद को सोने से न रोक (पाया था। वह 13 घंटे तक गहरी नींद में सोता रहा। खैर, इस घटना के बाद पीटर के घरवालों के अनुसार उसका व्यक्तित्व पूरी तरह से बदल गया था। वह अवसाद में रहने लगा था। वह अपने बॉस के साथ झगड़ा करने की वजह से अपनी नौकरी से हाथ धो बैठा। उसकी अपनी पत्नियों से भी नहीं पटी। उसे एक के बाद एक, अपनी चार पत्नियों से तलाक का दर्द भोगना पड़ा।

खैर, पीटर का निद्रा अभाव का यह रिकॉर्ड कुछ समय बाद सन् 1959 में ही होनोलूलू के डिस्क जॉकी टॉम राउंड्स ने तोड़ दिया। सन् 1936 में जन्मे टॉम राउंड्स की उम्र उस वक़्त 23 वर्ष थी। उनकी मृत्यु 77 वर्ष की आयु में सन् 2014 में एक जून के दिन अमरीका के कैलिफोर्निया प्रांत के लॉस एंजेल्स शहर में हुई। कहते हैं रिकॉर्ड टूटने के लिए बनते हैं। दीर्घावधि तक जागते रहने के टॉम के इस रिकॉर्ड को सन् 1963-64 में सान डिएगो के एक हाईस्कूल के छात्र रैंडी गार्डनर ने तोड़ा। रैंडी वैज्ञानिकों और चिकित्सकों की देखरेख में 28 दिसंबर 1963 से लेकर 8 जनवरी 1964 के दौरान 11 दिन यानी 264 घंटे तक नहीं सोया। ग्यारह दिन की अवधि के पूरे होने से कुछ पहले उसे नेवी के एक अस्पताल में ले जाया गया। वहां पहुँचने के बाद उसे नींद आई। वह 14 घंटे 40 मिनट तक गहरी नींद में सोने के बाद जब जागा तो वह पहले की तरह चुस्त - दुरुस्त नजर आया। सन् 1948 में जन्मे रैंडी गार्डनर इस वक़्त 71 वर्ष के हैं और स्वस्थ हैं। जहाँ तक गिनीज़ बुक ऑफ़ वर्ल्ड रिकॉर्ड्स का सवाल है, दुनिया में सबसे लंबे समय तक जागे रहने का रिकॉर्ड ब्रिटिश नागरिक मौरीन वेस्टन के नाम दर्ज था लेकिन अब नींद अभाव की अपनी नीति के तहत उन्होंने इसे रिकॉर्ड्स से हटा दिया है। उनका यह रिकॉर्ड 449 घंटे का था। खैर, रैंडी के बाद कुछ और लोगों ने भी उसके रिकॉर्ड को तोड़ने का दावा किया लेकिन उनकी प्रमाणिकता सदैव संदेहास्पद रही है।

गौरतलब है कि नींद हमारे जीवन के लिए एक जरूरी प्रक्रिया है और यह हमारे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए बेहद जरूरी है। हम कभी भी अपने को जबरदस्ती जगाए रखने की कोशिश न करें अन्यथा हमें उसका खामियाजा भुगतना पड़ सकता है। अगर हमें किसी वजह से नींद को लेकर कोई परेशानी हो तो उसके लिए विशेषज्ञों से परामर्श लेने में संकोच अथवा टालमटोल करना उचित नहीं होगा।

subhash.surendra@gmail.com

दुनिया की नदियों में

एंटीबायोटिक प्रदूषण

प्रमोद भार्गव

यह हैरान कर देने वाली खबर है कि दुनिया की नदियां एंटीबायोटिक दवाओं के अपशिष्ट से खतरनाक स्तर तक प्रदूषित होने लग गई हैं। इन नदियों में लंदन की टेम्स से लेकर भारत की गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र और महानदी शामिल हैं। इस सर्वेक्षण में वे नदियां शामिल की गई हैं, जिनकी लंबाई 1000 किलोमीटर से ज्यादा है। ब्रिटेन के यार्क विवि के शोधकर्ताओं ने छह महाद्वीपों के 72 देशों की नदियों पर पहुंचकर यह सर्वेक्षण किया है। सर्वे के मुताबिक कई नदियों में एंटीबायोटिक्स की मात्रा सुरक्षित स्तर से 300 गुना से भी अधिक हो गई है। यह प्रदूषण भविष्य में बैक्टीरिया जीवन रक्षक दवाओं को बेअसर कर सकते हैं। खतरे की इस घंटी ने आशंका जताई है कि 2050 तक एक करोड़ लोगों की इस प्रदूषण से मौतें हो सकती हैं। हालांकि भारत के लिए यह कोई नई बात नहीं है, क्योंकि हमारी जीवनदायी नदी गंगा पर महाजीवाणु यानी 'सुपरबग' ने वर्चस्व कायम करके मानव समुदायों पर आतंक का कहर ढाना एक दशक पहले से ही शुरू कर दिया है। जीएम फसलों के अपशिष्ट भी इस प्रदूषण को बढ़ाने का काम कर रहे हैं। यह स्थिति इसलिए भी बनी है, क्योंकि दुनिया की 37 प्रतिशत नदियों की धारा रोककर करीब 28 लाख बांध बना दिए गए हैं।

ब्रिटेन के एक्सेटर विवि के प्रोफेसर विलियम गेंज ने बताया है कि मानव शरीर में मिलने वाले कई एंटीबायोटिक दवाओं को बेअसर करने वाले बैक्टीरिया इन्हीं पर्यावरणीय बैक्टीरिया से पैदा हुए हैं। इन बैक्टीरिया का पैदा होना खतरनाक है, क्योंकि ये भविष्य में रोग-प्रतिरोधक दवाओं के प्रति रेजिस्टेंट (विरोधी) क्षमता पैदा कर लेंगे। नतीजतन दवाएं प्रभावी नहीं रह जाएगी और मामूली बीमारियों से पैदा हो जाने वाले संक्रमण से भी लोगों की मौतें होने लग जाएंगी।

संयुक्त राष्ट्र संघ की हालिया रिपोर्ट में भी एंटीबायोटिक प्रतिरोधी जीवाणु में वृद्धि को वैश्विक स्वास्थ्य आपातकाल बताया है। जिसके चलते 2050 तक 1 करोड़ मौतें हो सकती हैं। नदियों में ये दवाएं मानव और पशु मल के जरिए पहुंच रही है। यह शोध नदियों के 711 स्थलों पर किया गया है। जिसके नतीजे में 65 प्रतिशत नदियों में एंटिबायोटिक प्रदूषण की मात्रा खतरनाक स्तर पर पहुंच गई है।

भारत की नदियों की स्थिति बहुत पहले से ही प्रदूषण के मामले में चिंताजनक है। देश की जीवन-रेखा मानी जाने वाली गंगा में तो एंटीबायोटिक रोधी जीन 'सुपरबग' कई बीमारियों के जन्म का कारक बन रहा है। यह एक प्रकार का जीवाणु अर्थात बैक्टीरिया है। सुपरबग ने गंगा किनारे बसे शहरों और कस्बों को अपनी चपेट में ले लिया है। पवित्र गंगा में पुण्य लाभ के लिए जब तीर्थयात्री जलधार में डुबकी लगाते हैं, तब सुपरबग सीधे मनुष्य के फेफड़ों पर हमला बोलकर श्वसन-तंत्र को कमजोर बनाने का सिलसिला शुरु कर देता है। यह महाजीवाणु इसलिए ज्यादा खतरनाक है, क्योंकि यह दो जीन के संयोग से बना है। हालांकि एंटीबायोटिक के खिलाफ प्रतिरोधी क्षमता विकसित कर लेने वाले सुपरबग के अस्तित्व को लेकर भ्रम की स्थिति है। लेकिन हाल ही में ब्रिटेन के न्यूकैसल विश्वविद्यालय और दिल्ली आरआइटी के वैज्ञानिकों ने गंगा जल पर जो शोध किए हैं, उनमें दिए ब्यौरे गंगा में सुपरबग की उपस्थिति का विश्वसनीय दावा करने वाले हैं। गंगा को कचरे के नाले में बदलने वाले उपाय आखिर इसे कब तक निर्मल बनाए रख पाएंगे ?

प्रमोद भार्गव एक पत्रकार और विज्ञान संचारक के रूप में देशभर में जाने जाते हैं वहीं उनका दूसरा पक्ष एक लोकप्रिय कथाकार का भी है। समकालीन परिदृश्य और समसामयिक विषयों जिनमें विज्ञान भी शामिल है, पर प्रमोद भार्गव की गहरी नज़र रहती है। वे तात्कालिक विज्ञान-अनुसंधान और हलचल पर लिखने के लिये खासे चर्चित हैं। प्रमोद भार्गव म.प्र. के शिवपुरी में निवास करते हैं।

गंगा के निर्मलीकरण की महत्वाकांक्षी योजनाएं अब तक थोथी साबित हुई हैं। लिहाजा गंगा-यमुना के प्रदूषण से जुड़ी खबरें अब झकझोरती नहीं हैं। अब तक यह माना जाता था कि गंगा मैदानी इलाकों में कहीं ज्यादा प्रदूषित है। किंतु गंगा कानपुर, इलाहबाद, वाराणसी जैसे नगरों से कहीं ज्यादा ऋषिकेष और हरिद्वार में दूषित हो चुकी है। मसलन गंगा इसके उद्गम स्थल गोमुख (गंगौत्री) से लेकर समापन स्थल गंगासागर तक सभी जगह मैली हो चुकी है। यही मैल महाजीवाणु की उत्पत्ति और उसकी वंश वृद्धि के लिए सुविधाजनक आवास सिद्ध हो रहा है। वैज्ञानिकों ने इसे ताजा उत्पत्ति माना है और दिल्ली के पानी में इसकी मौजूदगी पाए जाने से इसका नाम नई दिल्ली मेटालाबीटा लैक्टोमस-1 (एनडीएम-1) रखा है। यह भी माना गया है कि एंटीबायोटिक के अत्यधिक उपयोग से यह पैदा हुआ है। गंगा में मिले सुपरबग की अलग पहचान बनाए रखने की दृष्टि से इसे बीएलएएनडीएम-1 का नाम दिया गया है। वैज्ञानिकों का मानना है कि यह भविष्य में कायांतरण करके अन्य कोई नए अवतार में भी सामने आ सकता है। इस पर नियंत्रण का एक ही तरीका है कि गंगा में गंदे नालों के बहने, सीवर का मल-मूत्र जाने और कचरा डालने पर सख्ती से रोक लगाई जाए।

अंतरराष्ट्रीय वैज्ञानिकों ने भारत को सुपरबग की हकीकत सामने आने पर चेताया था कि प्रतिरोधात्मक क्षमता का असर कम करने वाला जीन जरुर भारत में पहले से मौजूद रहे हों, लेकिन जो जीवाणु दो जीन के मेल से बना है, वह पहली मर्तबा ही देखने में आया है। हालांकि इस जानकारी के आने से पहले भारत में सुपरबग की खोज हो चुकी थी। मुंबई के पीडी हिंदुजा नेशनल चिकित्सालय और चिकित्सा शोध केंद्र के शोधार्थी पायल देशपांडे, कैमिला रोडिग्स, अंजलि शेट्टी, फरहद कपाडिया, असित हेगड़े और राजीव सोमण ने मार्च 2010 में 'ऐसोसिएशन ऑफ फिजीशियन ऑफ इंडिया' के जर्नल में सुपरबग के वजूद का विस्तृत ब्यौरा पेश किया था। यह अध्ययन 24 मरीजों पर किए शोध का निष्कर्ष था। जिसमें बताया गया था कि एनडीएम-1 ऐसा महाजीवाणु है, जो अंधाधुंध एंटीबायोटिक के इस्तेमाल के कारण सूक्ष्म जीवों में जबरदस्त प्रतिरोधात्मक क्षमता विकसित कर रहा है।

शोध-पत्र में दावा किया गया था कि कार्बपीनिम दवा से मुठभेड़ करने में सक्षम इस सुपरबग का बहुत छोटे समय में विकसित हो जाना आश्चर्यजनक है। कार्बोपीनिम एक एंटीबायोटिक है, जो मल्टी ड्रग प्रतिरोधी दवाओं के संक्रमण के इलाज में प्रयोग की जाती है। हालांकि सुपरबग का भारत या गंगा नदी में पाया जाना कोई अपवाद नहीं है, ये सूक्ष्म जीव दुनिया में कहीं भी मिल सकते हैं। किसी नगर, देश या क्षेत्र विशेष में ही इनके पनपने के कोई तार्किक प्रमाण नहीं हैं। लेकिन गंगा में इन सूक्ष्म जीवों का पाया जाना इसलिए हैरत में डालने वाली घटना है, क्योंकि गंगा दुनिया की नदियों में सबसे शुद्धतम जल वाली नदी है और करोड़ों लोग गंगा-जल का सेवन करके अपने जीवन को धन्य मानते हैं।

गोमुख से गंगासागर तक गंगा पांच राज्यों से होकर बहती है। इसके किनारे 29 शहर 10 लाख से ज्यादा आबादी वाले बसे हैं। 23 नगर ऐसे हैं, जिनकी आबादी 50 हजार से एक लाख के बीच है। कानपुर के आसपास मौजूद 350 चमड़ा कारखाने हैं, जो इसे सबसे ज्यादा दूषित करते हैं। 20 प्रतिशत औद्योगिक नाले और 80 प्रतिशत मल विर्सजन से जुड़े परनालों के मुंह इसी गंगा में खुले हैं। मसलन आठ करोड़ लीटर मल-मूत्र और कचरा रोजाना गंगा में बहाया जा रहा है। यही कारण है कि गंगा का जीवनदायी जल, जीवन के लिए खतरा बन रहा है। इसीलिए गंगा की गिनती आज दुनिया की सबसे प्रदूषित नदियों में हो रही है। यही वजह है कि गंगा जल परीक्षण के नमूने किसी भी नगर से लिए जाएं, उनके नतीजे भयावह ही आ रहे हैं।

1985 में राजीव गांधी की सरकार ने 2526 किमी लंबी गंगा को स्वच्छ बनाने की ऐतिहासिक पहल की थी। यह कार्यक्रम दो चरणों में चला और इन 27 साल में भी सार्थक परिणाम नहीं निकले। 2009 में संप्रग सरकार ने प्रधानमंत्री की अध्यक्षता वाले राष्ट्रीय गंगा नदी घाटी प्राधिकरण का भी गठन किया। इसकी पहली बैठक में गंगा को अगले 10 सालों में अधिकतम स्वच्छ बनाने का संकल्प लिया गया और नए सिरे 15 हजार करोड़ रुपए खर्च करने की योजना को मंजूरी दी गई। पांच साल पहले जब नरेंद्र मोदी ने पहली बार प्रधानमंत्री का दायित्व संभाला, तब अन्होंने बढ़े जोर-शोर से गंगा के शुद्धिकरण के लिए 'नमामि गंगे' अभियान चलाया। इस पर अब तक 20,000 करोड़ रुपए खर्च हो चुके हैं, लेकिन इस अनुपात में भौतिक सुधार जमीन पर दिखाई नहीं देता है। देश की अनेक नदियां भी वेंटिलेटर पर रहते हुए प्रदूषण का चरम भोग रही हैं। इनमें यमुना, चंबल, सिंध, नर्मदा, गोदावरी, ताप्ती, महानदी और बनास जैसी नदियां शामिल हैं। औद्योगिक विकास व भवन निर्माण भी इन नदियों पर संकट ढहा रहा है। नतीजतन नदियों की निर्मल अविरलता खत्म हो गई है। नदियों की धारा में इतना प्रवाह नहीं रहा है कि वह भारी प्रदूषण को समुद्र तक बहा ले जाएं। इस कारण नदियों के जल में घुलनशील ऑक्सीजन की मात्रा भी घट रही है और कई तरह के रसायनों के विलय होते रहने से पानी भारी हो गया है। बावजूद चिंतनीय पहलू यह है कि देश के किसी भी राजनीतिक दल के घोषणा-पत्र में नदियों और पर्यावरण के सरंक्षण का मुद्दा सिरे से गायब है।

pramod.bhargava15@gmail.com

□□□

सफर अब तक...

50 वां अंक

संतोष चौबे, गुणाकर मुळे, विनीता चौबे, शरदचन्द्र बेहार एवं अनुज सिन्हा

100 वां अंक

डॉ. ओम विकास, अनुज सिन्हा विनीता चौबे, गुणाकर मुळे एवं संतोष चौबे

150 वां अंक

डॉ. मनमोहन बाला, विनीता चौबे, माननीय लक्ष्मीकांत शर्मा, संतोष चौबे एवं अनुज सिन्हा

200 वां अंक

पुष्पेन्द्र पाल सिंह, संतोष चौबे, डॉ.अखिलेश पांडे,डॉ. ए. एस. झाड़गांवकर, डॉ. मनोज पटैरिया, डॉ.के. एस.तिवारी एवं विनीता चौबे,

250 वां अंक

250वें अंक विमोचन समारोह का शुभारंभ

250 वां अंक

250वें अंक का विमोचन करते आमंत्रित अतिथि

पुरस्कार एवं सम्मान

सम्मान छत्तीसगढ़ के राज्यपाल महामहिम श्री ई. एस. एल. नरसिम्हन पत्रिका को अक्टूबर 2009 में 'राष्ट्रीय राजभाषा शील्ड सम्मान' प्रदान करते हुये

सम्मान पत्रिका को अक्टूबर 2009 में 'राष्ट्रीय राजभाषा शील्ड सम्मान' से पांडिचेरी के ले. गवर्नर श्री इकबाल सिंह द्वारा सम्मनित किया गया

पुरस्कार प्रमुख उप-संपादक श्रीमती विनीता चौबे दुष्यंत कुमार स्मारक पाण्डुलिपि संग्रहालय द्वारा ''भारतेन्दु पुरस्कार'' प्राप्त करते हुये

पुरस्कार संपादक श्री संतोष चौबे 'रामेश्वर गुरु पुरस्कार' प्राप्त करते हुये

सम्मान राष्ट्रीय हिन्दी अकादमी रुपाम्बरा द्वारा राजभाषा शील्ड सम्मान

सम्मान सह-संपादक रवीन्द्र जैन विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा 'सारस्वत सम्मान' प्राप्त करते हुये

'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' : 250वां अंक कुछ झलकियां ...

250 वां अंक 250वें अंक विमोचन समारोह के अवसर पर संबोधित करते डॉ. अनुज सिन्हा

250 वां अंक 250वें अंक विमोचन समारोह के अवसर पर शरदचन्द्र बेहार

250 वां अंक 250वें अंक विमोचन समारोह के अवसर पर सुभाषचन्द्र लखेड़ा

250 वां अंक 250वें अंक विमोचन समारोह के अवसर पर देवेन्द्र मेवाड़ी

250 वां अंक 250वें अंक विमोचन समारोह के अवसर पर मनोज पटेरिया

250 वां अंक 250वें अंक विमोचन समारोह के अवसर पर वक्तव्य देते संपादक -संतोष चौबे

आईसेक्ट को सम्मान

पुरस्कार श्री संतोष चौबे, अध्यक्ष, आईसेक्ट, डॉ ए. पी. जे. अब्दुल कलाम, पूर्व राष्ट्रपति, से इंडियन इनोवेशन अवार्ड के प्राप्त करते हुए

पुरस्कार श्री संतोष चौबे, अध्यक्ष, आईसेक्ट, डॉ ए. पी. जे. अब्दुल कलाम, पूर्व राष्ट्रपति, से नैसकॉम आईटी इनोवेशन अवार्ड प्राप्त करते हुए

पुरस्कार श्री सिद्धार्थ चतुर्वेदी और सुश्री पल्लवी राव चतुर्वेदी निदेशक, आईसेक्ट, सुश्री स्मृति ईरानी, मानव संसाधन विकास मंत्री द्वारा प्रतिष्ठित ई-गर्वेनेन्स इंडिया पुरस्कार प्राप्त करते हुए

पुरस्कार श्री सिद्धार्थ चतुर्वेदी, निदेशक, आईसेक्ट, प्रशिक्षण और कौशल विकास में उत्कृष्टता के लिए इंडियन सोसायटी द्वारा पुरस्कार ग्रहण करते हुए

पुरस्कार श्री संतोष चौबे, अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक, आईसेक्ट, श्री कपिल सिब्बल, पूर्व मानव संसाधन विकास मंत्री एवं श्रीमती हिल्डे श्वाब, से श्वाब फाउंडेशन सम्मान प्राप्त करते हुए

पुरस्कार श्री सिद्धार्थ चतुर्वेदी और सुश्री पल्लवी राव चतुर्वेदी निदेशक, आईसेक्ट, प्रतिष्ठित ई-इंडिया वित्तीय समावेशन उत्कृष्टता पुरस्कार प्राप्त करते हुए

डिजिटल माध्यमों द्वारा
विज्ञान संचार
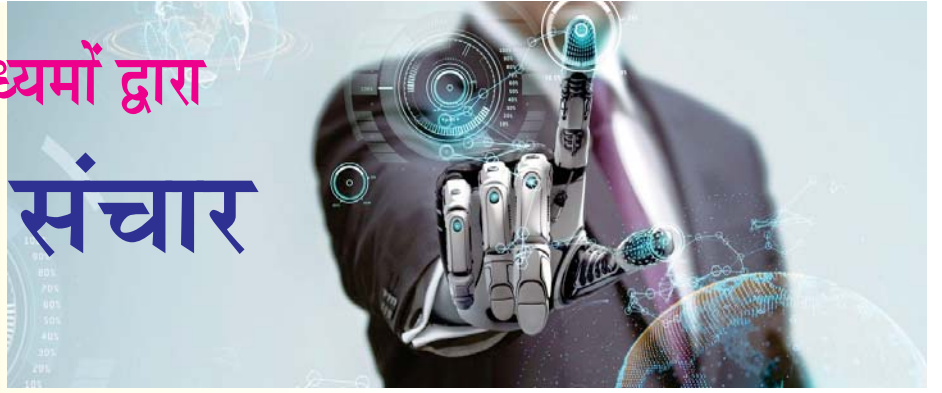
शशांक द्विवेदी

इंटरनेट के बढ़ते उपयोग की वजह से पूरी दुनियाँ एक ग्लोबल विलेज में तब्दील हो गई है।. साथ ही डिजिटल तकनीक ने विश्वभर में संचार क्रांति में अभूतपूर्व परिवर्तन ला दिया और वर्तमान हालात यह है कि यह तेजी से मानव गतिविधियों के प्रायः सभी क्षेत्रों में व्याप्त होती जा रही है, चाहे वह अनुसंधान या विकास का क्षेत्र हो या कृषि, उद्योग, व्यापार, शिक्षा, स्वास्थ्य और चिकित्सा का या फिर मनोरंजन ही क्यों न हो। आनलाइन और डिजिटल संचार माध्यम में निहित अपार संभावनाओं की वजह से यह विज्ञान संचार के किये काफी उपयोगी साबित हो सकता है। डिजिटल माध्यमों के सही उपयोग से युवा वर्ग के बीच में विज्ञान लोकप्रियकरण किया जा सकता है। साथ ही विज्ञान को सरल और सहज तरीके से जनसामान्य तक पहुँचाया जा सकता है ।

वैज्ञानिक जागरूकता और जन सशक्तीकरण के परिप्रेक्ष्य में डिजिटल माध्यमों के द्वारा हिंदी में विज्ञान संचार की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। लेकिन हम विज्ञान से जुड़े व्यक्ति और वैज्ञानिकों को ही विज्ञान के क्षेत्र में कुशल मानते हैं। इसलिए आम आदमी द्वारा डिजिटल माध्यम से हिंदी में विज्ञान संचार करने पर उसे कमोबेश कम विश्वसनीय माना जाता है। जबकि हिंदी में विज्ञान संचार और स्थानीय स्तर पर देशी वैज्ञानिकों की जानकारी देने वाले लेखन का सामने आना जरूरी है। विज्ञान और शोध से सम्बंधित खबरे प्रिंट मीडिया में तो जगह बना रही है लेकिन इलेक्ट्रॉनिक मीडिया इससे काफी दूर है। प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं है आप खुद देखिये कि इस क्षेत्र में इलेक्ट्रानिक मीडिया कितना संजीदा है। सिर्फ विज्ञान और तकनीक से जुड़ी सनसनीखेज खबरें ही चैनलों में जगह बना पाती है। देश की प्रगति और आर्थिक सुरक्षा से जुड़ा यह क्षेत्र देश में काफी हद तक उपेक्षित है। ऐसें में अब डिजिटल माध्यमों और डिजिटल मीडिया के द्वारा स्थानीय भाषाओं खासकर हिंदी में बड़े पैमाने पर विज्ञान संचार किया जा सकता है क्योंकि बड़े पैमाने पर जनसामन्य तक इंटरनेट की पहुँच हो चुकी है।

राजस्थान मेवाड़ यूनिवर्सिटी के उपनिदेशक शशांक द्विवेदी 'टेक्नीकल टुडे' नामक पत्रिका का संपादन कर रहे हैं। वे विगत दो दशकों से विज्ञान संचारक और विज्ञान लेखन के रूप में भी कार्य कर रहे हैं। देश के प्रतिष्ठित विज्ञान पत्रिकाओं में आपके लेख नियमित रूप से प्रकाशित एवं चर्चित हुए हैं।

उम्मीदें

संचार माध्यमों द्वारा अब पूरी दुनिया एक गांव हो गई है। ग्लोबल विलेज की अवधारणा पर आधारित इस दृष्टिकोण का आधार यह है कि इंटरनेट ने पूरी दुनिया को एक साथ जोड़ दिया है। डिजिटल माध्यमों में विज्ञान संचार के लिए इंटरनेट की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। डिजिटल संचार माध्यमों के संवाहक आमजन, लेखक, पत्रकार, विश्लेषक, प्रोड्यूसर तथा कैमरामैन हैं। रेडियो, टेलीवीज़न, इंटरनेट, सेटेलाइट, कैमरे, कागज़, कलम, प्रेस, प्रचार व प्रसार माध्यम इसके साधन है। इंटरनेट की पहुँच आज जन सामान्य तक हो चुकी है और दुनिया में इसके उपयोगकर्ता बहुत तेजी से बढ़ रहें हैं। आज कोई यदि ज्ञान की खोज में निकलता है तो वो पुस्तकालय के साथ साथ इंटरनेट को भी प्राथमिकता देने लगा है। तो फिर ऐसे में विज्ञान शिक्षा क्यों पीछे है जबकि आज हर घर, हर विद्यालय में शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों इंटरनेट के माध्यम से विज्ञान शिक्षण-अधिगम की बुलंदियों को छू सकते हैं।

भारत में तेजी से बढ़ रहें हैं इंटरनेट उपयोगकर्ता

बाजार शोध एजेंसी कंटर आईएमआरबी के अनुसार देश में इंटरनेट उपयोग करने वालों की संख्या

दहाई अंक की वृद्धि के साथ बढ़कर 2019 के अंत तक 62-70 करोड़ पर पहुंच जाएगी। ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट का इस्तेमाल बढ़ने से पहली बार देश में इंटरनेट यूजर्स की संख्या 56-60 करोड़ के पार हो गई है। एजेंसी ने आईक्यूब 2018 रिपोर्ट में कहा कि देश में इंटरनेट यूजर्स की संख्या में 18 प्रतिशत की दर से वृद्धि दर्ज की गई और ये दिसंबर 2018 तक बढ़कर 56-60 करोड़ पर पहुंच गई। यह कुल आबादी का 40 प्रतिशत है। रिपोर्ट में कहा गया कि इनमें 87 प्रतिशत यानी 49.30 करोड़ लोग इंटरनेट का नियमित उपयोग करने वाले हैं। नियमित उपयोगकर्ता उन लोगों को कहा जाता है जिन्होंने पिछले 30 दिन में इंटरनेट का इस्तेमाल किया हो। करीब 29-30 करोड़ नियमित उपयोगकर्ता शहरी क्षेत्रों में हैं, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में 20 करोड़ नियमित इंटरनेट उपयोग करने वाले शामिल हैं।

एजेंसी ने कहा कि शहरी क्षेत्रों में 2018 में इंटरनेट उपयोग करने वालों की संख्या सात प्रतिशत की दर से बढ़कर 31-50 करोड़ पर पहुंच गई। उसने कहा कि अब इंटरनेट अपनाने की अगुआई ग्रामीण क्षेत्र कर रहे हैं। पिछले साल ग्रामीण क्षेत्र में इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या 35 प्रतिशत बढ़ी है। रिपोर्ट में कहा गया है कि अनुमान है कि ग्रामीण भारत में अभी 25-10 करोड़ इंटरनेट यूजर्स हैं, जिनके 2019 के अंत तक बढ़कर 29 करोड़ हो जाने का अनुमान है। राज्यों के मामले में शहरी एवं ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में बिहार में इंटरनेट यूजर्स की संख्या सर्वाधिक 35 प्रतिशत बढ़ी है। कुल इंटरनेट यूजर्स में महिलाओं की भी 42 प्रतिशत हिस्सेदारी है।

डिजिटल साक्षरता

दुनिया भर में इंटरनेट के बढ़ते उपयोग की वजह से डिजिटल साक्षरता तेजी से बढ़ी है। भारत में इंटरनेट का उपयोग बढ़ने के साथ ही समाचार पोर्टल और अखबारों के इंटरनेट संस्करण भी बढे। सबसे पहले अंग्रेजी के समाचार पोर्टल और अखबारों के इंटरनेट संस्करण ही शुरू हुए थे, सोशल मीडिया के साथ ही यह वेब पोर्टल भी अपना विस्तार कर रहे हैं। समाचार और वेब पोर्टलों की संख्या का बढ़ने का एक कारण यह भी है कि इसे बहुत कम जमापूंजी से भी शुरू किया जा सकता है। अखबार, पत्रिका या टेलीविजन चैनल शुरू करने के लिए बहुत बड़ी पूंजी की जरुरत पड़ती है, प्रकाशन और प्रसार का बहुत बड़ा नेटवर्क खड़ा करना पड़ता है जबकि वेब पोर्टल शुरू करने का खर्च इतना बड़ा नहीं है।

डिजिटल माध्यम द्वारा जनसंचार

डिजिटल माध्यम द्वारा हिंदी में विज्ञान संचार का उद्देश्य लोगों को विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में होने वाली गतिविधियों और खोजों की समग्र जानकारी प्रदान करना है। अनेक ऐसे वैज्ञानिक और वैज्ञानिक खोजें, पद्धतियां, पारंपरिक ज्ञान और नवाचार के प्रयोग तब अज्ञात रह जाते हैं, जब उन्हें अखबारों या पारंपरिक मीडिया में जगह अथवा कोई मंच नहीं मिलता। तो ऐसे में डिजिटल मीडिया या डिजिटल माध्यम से ऐसे लोगों को सामने लाया जा सकता है। आज भारत की स्थिति आश्चर्यजनक रूप से बदल गई है, फ़िलहाल मोबाइल पर ही सब कुछ सहजता से उपलब्ध है। मोबाइल पर किताबें पढ़ी जा रहीं है, लगभग दो घंटे की फिल्म, लंबे टी.वी। कार्यक्रम मात्र आधे मिनट में डाउनलोड किए जा सकतें हैं। विश्व के सर्वश्रेष्ठ विद्वानों के मल्टी मीडिया व्याख्यान भी मोबाइल पर जब चाहे देख, सुन सकतें हैं। मोबाइल जी.पी.एस. तकनीक से युक्त हो गए हैं। संभावना है कि सन 2020 तक इन्टरनेट किसी न किसी रूप में हर व्यक्ति से जुड़ जाएगा। यह हमारे त्वचा के भीतर भी पाया जाएगा। मानव शरीर स्वयं इंटरनेटयुक्त होगा। नैनो टेक्नॉलॉजी इंटरनेट के स्वरूप में संपूर्ण परिवर्तन कर देगी। अत्याधुनिक नैनो स्केल मशीन इंटरनेट को अणु के आकार का बना देगी जिसे इंजेक्शन के द्वारा त्वचा के अंदर डाला जा सकेगा।

विगत वर्षों में भारत ने सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में जबरदस्त कामयाबी हासिल की है और इसने जीवन के तमाम क्षेत्रों को प्रभावित किया है। जन संचार माध्यमों में इलेक्ट्रॉनिक माध्यम का दायरा बहुत व्यापक है। इसमें रेडियो, टेलीविजन, फिल्म, प्रोजेक्टर तथा बाईस्कोप शामिल हैं। विगत कुछ वर्षों में तरक्की के चलते डिजिटल माध्यम एक सशक्त तथा प्रभावी विधा के रूप में उभरा है जिसमें दृश्य, श्रव्य, वीडियो, एनिमेशन और अनुरूपण के द्वारा सूचना को प्रभावी तरीके से लक्ष्य वर्ग तक पहुंचाया जा सकता है। शिक्षा में बेहतर अधिगम के लिए ई-सामग्री बहुत उपयोगी पायी गयी है तथा इन दिनों ई-सामग्री के विकास पर काफी बल दिया जा रहा है। हिन्दी में विज्ञान संचार तथा उसकी आवश्यकताएँ बहुत बड़ी और व्यापक है।

डिजिटल माध्यम द्वारा हिंदी में विज्ञान संचार के लिए ब्लॉग लेखन अभी भी एक बेहतर विकल्प हैं। ऐसे में इसके द्वारा विज्ञान संचार की अपार संभावनाएं छिपी हुई हैं। ब्लॉग लेखन की सबसे बडी विशेषता यह है कि यह पूरे विश्व में पढा जा सकता है और अनन्त समय तक अंतर्जाल पर सुरक्षित रहता है। इसके साथ ही साथ विश्व के किसी भी कोने से किसी भी सर्च इंजन द्वारा खोजने पर ब्लॉग में उपलब्ध सामग्री तत्काल ही इच्छुक व्यक्ति तक पहुंच जाती है। यही कारण है कि ब्लॉग लेखन द्वारा विज्ञान संचार की अपार सम्भावनाएं बनती हैं। यदि ब्लॉग लेखकों और विज्ञान संचारकों को इसके महत्व एवं प्रक्रिया की समुचित जानकारी प्रदान की जाए, तो विज्ञान संचार के लिए यह एक महत्वपूर्ण क्षेत्र साबित हो सकता है।

चुनौतियाँ

हमारे देश में 3500 से भी अधिक हिन्दी विज्ञान लेखकों का विशाल समुदाय है परन्तु प्रतिबद्ध लेखक मुश्किल से 5 या 7 प्रतिशत ही होंगे। इन लेखकों ने विज्ञान के विविध विषयों और विधाओं में 8000 से भी अधिक पुस्तकें लिखी हैं परन्तु इनमें से अधिकतर पुस्तकों में गुणवत्ता का अभाव है। मौलिक लेखन कम हुआ है और संदर्भ ग्रंथ न के बराबर हैं। लोकप्रिय विज्ञान साहित्य सृजन में प्रगति अवश्य हुई है परन्तु सरल, सुबोध विज्ञान साहित्य जो जन साधारण की समझ में आ सके कम लिखा गया है। इंटरनेट पर आज भी हिन्दी में गुणवत्तापूर्ण विज्ञान सामग्री का अभाव दिखता है। विश्वविद्यालयों तथा राष्ट्रीय वैज्ञानिक संस्थानों में कार्यरत विषय विशेषज्ञ अपने आलेख शोधपत्र अथवा पुस्तके अंग्रेजी में लिखते हैं। वह हिन्दी अथवा अन्य भारतीय भाषा में विज्ञान लेखन में रुचि नहीं रखते। संभवत भाषागत कठिनाई तथा वैज्ञानिक समाज की धोर उपेक्षा उन्हें आगे नहीं आने देती।

आज के युग को विज्ञान का युग कहें तो अतिश्योक्ति नहीं होगी परन्तु इसके साथ-साथ आज का युग जन साधारण का भी युग है। इस युग को अधिकतम उपादेय एवं प्रभावी बनाने के लिए जन साधारण को विज्ञान के साथ जोड़ देना ही आज विज्ञान लेखन का परम लक्ष्य होना चाहिए। इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु जन साधारण के बीच वैज्ञानिक दृष्टि तथा वैज्ञानिक मनोवृत्ति विकसित करने की अर्थात वैज्ञानिक जागरूकता जगाने की विशेष आवश्यकता है। वैज्ञानिक जागरूकता को विकसित करने का सबसे सशक्त तथा समर्थ माध्यम है विज्ञान लेखन। पर आज भी हमारे पास विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी की अपनी भाषा नहीं है। यदि विज्ञान को जनमानस की संवेदना का हिस्सा बनाना है तो हमें भारतीय भाषाओं की और विशेष रूप से राजभाषा हिन्दी की महत्ता को समझना ही पड़ेगा।

हिन्दी अनौपचारिक रूप से हमारे देश की सम्पर्क भाषा है। उत्तर भारत के लगभग सब लोग हिन्दी जानते हैं। दक्षिण भारत में भी लगभग 30 प्रतिशत लोग हिन्दी जानते हैं और मोटे तौर पर 80 करोड़ लोग हिन्दी से परिचित हैं फिर भी हमारे देश में हिन्दी का कोई भविष्य नहीं है क्योंकि हम अंग्रेजी मानसिकता के गुलाम हैं। जब तक सरकार द्वारा विज्ञान विषयों में उच्च शिक्षा, चिकित्सा, प्रौद्योगिकी जैसे व्यावसायिक पाठयक्रमों की पढ़ाई हिन्दी माध्यम में नहीं होती अर्थात जब तक हिन्दी को रोजी-रोटी से नहीं जोड़ा जाता तब तक हिन्दी में विज्ञान लेखन की बात करना बहुत सार्थक सिद्ध नहीं होगा।

विद्वानों को वैज्ञानिक लेखन की विषय-वस्तु और उसके प्रस्तुतीकरण, सरलीकरण, मानकीकरण, शैलीकरण आदि पर विचार-विमर्श करना चाहिए, एक स्पष्ट नीति बनानी चाहिए। वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी के विभिन्न विषयों के ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद की चर्चा होती है। वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी के विभिन्न विषयों के विशेषज्ञ विद्वानों के हिन्दी में व्याख्यानों की योजना बननी चाहिए। विद्वानों को अंग्रेज़ी के तकनीकी शब्दों के प्रयोग की छूट मिलनी चाहिए। इन व्याख्यानों को टेपाँकित किया जाना चाहिए। इस सामग्री को आधार बनाकर ग्रन्थों के निर्माण की योजना बनाई जानी चाहिए। साथ ही इस पूरी सामग्री को डिजिटली (ई माध्यम) संग्रहित और प्रसारित करने के लिए भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय एवं विज्ञान एवं अभियांत्रिकी अनुसंधान परिषद् को मिलकर पहल करनी चाहिए। आज भी देश के करोड़ों बच्चे 12वी तक अपनी शिक्षा हिंदी में ही करते है, विज्ञान भी हिंदी में ही पढाया जाता है लेकिन बाद की पढाई का माध्यम बदलनें से इसकी उपयोगिता ठीक के हो नहीं पाती है इसके साथ यह भी सच है कि हम अभी तक विज्ञान को ही आम आदमी से नहीं जोड़ पाए है।

आज भी वैज्ञानिक विषयों पर हिंदी में लेखन बहुत ही कम और अपर्याप्त है। इसका कारण भाषा की अशक्तता कदापि नहीं है बल्कि वैज्ञानिकों का इस दिशा में रुझान न होना ही हमारी दरिद्रता का कारण बना हुआ है। जैसा कि कहा जाता है, भारत ऐसा देश है जो संपन्न होते हुए भी दरिद्र है। वैज्ञानिक लेखन के क्षेत्र में भी यही बात सच है। इसका निराकरण तभी संभव है जब एक तो, शिक्षा के माध्यम के रूप में भारतीय भाषाओं को अपनाया जाय तथा दूसरे, वैज्ञानिकों को हिंदी में बोलने और लिखने के लिए प्रेरित किया जाए। यहाँ पारिभाषिक शब्दावली की दुरूहता की बात उठाई जा सकती

है, परंतु सच यही है कि भारतीय व्यक्ति के लिए भारतीय भाषाओं की शब्दावली अंग्रेज़ी की अपेक्षा अधिक पारदर्शी और बोधगम्य है।

यदि ऐसा किया जा सके तो निश्चय ही हिंदी के माध्यम से वैज्ञानिक चेतना भारत के जनगण तक पहुँच सकती है क्यों कि यह ऐतिहासिक तथ्य है कि विज्ञान तभी लोकप्रिय हुआ है जब उसने लोकभाषा को अपनाया। इटली में गेलीलियो ने पहले लैटिन में लिखा लेकिन उन्हें प्रचार-प्रसार इतालवी में लिखने (1632) पर ही मिला। न्यूटन ने भी 1637 में शिंप्रसिपियाश् की रचना लैटिन में की परंतु उन्हें लोकव्याप्ति 1704 के अंग्रेज़ी लेखन से मिली जिसका बाद में लैटिन में भी अनुवाद हुआ। इतना ही नहीं डार्विन ने भी अपने सिद्धांत अंग्रेज़ी में प्रस्तुत किए और कालांतर में यूरोप में लैटिन में वैज्ञानिक लेखन बंद हो गया। विज्ञान के इस माध्यम परिवर्तन में यदि यूरोप के वैज्ञानिकों की भूमिका इतनी महत्वपूर्ण रही, तो क्यों नहीं भारत के वैज्ञानिक भी भारत की जनता की खातिर भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक लेखन को समृद्ध बना सकते। बाद में इसी वैज्ञानिक लेखन को जनसामन्य तक डिजिटल माध्यमों से प्रसार कर सकतें है .

विज्ञान संचार को रोजगार परक बनाना होगा

देश में हिंदी में विज्ञान संचार बहुत उन्नत स्थिति में नहीं है। इसकी सबसे बड़ी वजह शायद हिंदी में विज्ञान संचार रोजी -रोटी से नहीं जुड़ पाया है। इसमें कैरियर की दृष्टि से भी पूर्णकालिक रूप में बहुत ज्यादा अवसर नहीं है। देश के अधिकांश हिंदी अखबारों और इलेक्ट्रॉनिक चैनलों में विज्ञान पत्रकार नहीं है। न ही इन माध्यमों में निकट भविष्य में विज्ञान पत्रकारों के लिए कोई संभावनाएं दिखती है। देश में इस समय जितना भी विज्ञान लेखन और पत्रकारिता हो रही है अधिकांशतया पार्ट टाइम हो रही है। वही लोग ज्यादातर विज्ञान लेखन कर रहें है जो हिंदी के उत्थान के लिए सरकारी विभागों से जुड़े है या वो लोग जो पद और पैसे से सम्रद्धिशाली है। कहने का मतलब आर्थिक रूप से संपन्न व्यक्ति ही हिंदी में विज्ञान लेखन कर रहें है। कुछ सार्थक करने का प्रयास स्वतंत्र और पूर्णकालिक रूप से हिंदी में विज्ञान लेखन के लिए बहुत कम अवसर है। इसलिए हिंदी में विज्ञान संचार या पत्रकारिता को सबसे पहले आकर्षक रोजगार से जोड़ना पड़ेगा तभी यह उन्नत दिशा में पहुँचेगा ।

विज्ञान की सरल भाषा के प्रयोग के साथ साथ आम आदमी की विज्ञान में रूचि को बढ़ाना पड़ेगा और अपने घर-परिवार के बच्चों को डिजिटल माध्यम द्वारा हिंदी में विज्ञान संचार तकनीकों की जानकारी देते हुए बड़े पैमाने पर उन्हें प्रोत्साहित करना पड़ेगा। हिंदी में विज्ञान संचार के लिए डिजिटल माध्यम के क्षेत्र में असीम संभावनाएं है लेकिन चुनौतियां भी है जिनसे मुकाबला करते हुए इस क्षेत्र को आम आदमी से जोड़ना होगा ।

dwivedi.shashank15@gmail.com

डॉ. जाकिर अली 'रजनीश' का जन्म 1 जनवरी 1975 को लखनऊ में हुआ। हिन्दी में स्नात्कोत्तर, पी.एच-डी. उपाधि प्राप्त की और इन दिनों राज्य कृषि उत्पादन मंडी परिसर उत्तरप्रदेश में कार्यरत हैं। आपने दूरदर्शन तथा आकाशवाणी के लिये भी लेखन किया। वैज्ञानिक उपन्यास, विज्ञान कथा संग्रह, पटकथा लेखन पुस्तक, वैज्ञानिकों की जीवनी सहित आपने अनेक वैज्ञानिक पुस्तकों का सृजन किया। आपको जर्मनी सहित देश-विदेश दो दर्जन संस्थाओं से सम्मानित - पुरस्कृत किया गया है। पुस्तक में नौ बाल विज्ञान कथाएँ एवं ह्यूमन ट्रांसमिशन नामक एक लघु बाल उपन्यास सम्मिलित हैं। विज्ञान कथाओं के माध्यम से समाज में व्याप्त अंधविश्वासों का खुलासा बड़े रोचक तरीके से किया गया है जबकि उपन्यास में एक वैज्ञानिक के स्थानांतरित होने का सजीव चित्रण किया गया है।

महेन्द्र कुमार माथुर का जन्म 20 जुलाई 1940 को हुआ। वे बीएचईएल भोपाल के सेवानिवृत्त उपमहाप्रबंधक हैं। अनेक प्रशासन अकादमी और इंस्टीट्यूट और विज्ञान सेन्टर के संकाय सदस्य होने के साथ आपने प्रबंध की विषयों पर दर्जनों लेख लिखे। हिन्दी अंग्रेजी अनुवाद पर आपका वृहद काम है। इस पुस्तक में ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति पर प्राचीन भारतीय एवं आधुनिक अवधारणाओं का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। साँख्य दर्शन ब्रह्माण्ड के रहस्यों को समझने की दिशा में 'मील का पत्थर' है। आइंस्टीन के सिद्धांत, स्टीफन हाकिंग के विचार एवं बिग बैंग थ्योरी का समुचित समावेश किया गया है।

भाषा के परिप्रेक्ष्य में विज्ञान संचार

राग तेलंग

विज्ञान की आड़ में अवैज्ञानिक और प्रतिगामी मूल्य वैश्विक स्तर पर क्यों पनपते हैं और कैसे पश्चिम से चली आधुनिक अंधविश्वास की बयार तीसरी दुनिया की मौलिक खोज और वैज्ञानिक सोच की प्रगति में सोची-समझी बाधाएं खड़ी करती है, भाषा के परिप्रक्ष्य में विज्ञान संचार को कैसे देखा जाना चाहिए? इन सब पहलुओं पर नज़र डालता यह विशेष आलेख।

आज हम रेडियो - टीवी, स्मार्ट फोन, कम्प्यूटर से चौबीसों घंटों घिरे हुए हैं। लेकिन अगर रेडियो तरंगों के आसमान पर विहंगम नज़र डालें तो साफ़ होगा कि संवाद के लिए ईजाद की गई तकनीकी ने अपने व्यावसायिक हितों की खातिर मनुष्य की जिज्ञासु प्रवृत्ति का दोहन करना शुरू कर दिया है और अपना एक विशाल बाज़ार निर्मित कर लिया है। आपने गौर किया होगा कि संसार के मीडिया के विशाल साम्राज्य पर पश्चिम का ज़बरदस्त नियंत्रण है, इसी का सहारा लेकर पश्चिम से सोच -समझकर अवैज्ञानिक कंटेंट की जो हवा बहाई जाती है जिसे आप आधुनिक अंधविश्वास की संक्रामक हवा भी कह सकते हैं, तीसरी दुनिया की मौलिक खोज और वैज्ञानिक सोच की प्रगति में सोची-समझी बाधाएं खड़ी करती है और यही उस हवा का एक उद्देश्य भी है जो पश्चिम की विज्ञान और तकनीक की तरक्की की रफ़्तार बढाती है।

विज्ञान के उन्नत क्षेत्र दूरसंचार से जुड़े रहे राग तेलंग ने समय-समय पर विज्ञान लेखक और विज्ञान संचारक की भूमिका निभाई। स्वभाव से कवि और कर्म से वैज्ञानिक राग तेलंग रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय के विज्ञान संचार केन्द्र में निदेशक के रूप में कार्य कर रहे हैं। उनकी कई किताबें प्रकाशित हुई हैं तथा वे महत्वपूर्ण सम्मान और पुरस्कारों से सम्मानित हुए हैं।

पहले बात करें कि इतनी भौतिक तरक्की के बावजूद हमारा नज़रिया दिन-प्रतिदिन प्रतिगामी क्यों होता जा रहा है। रोज़ाना हम जिन चीज़ों और ख़बरों से दो-चार होते हैं वे अवैज्ञानिकता की चाशनी में लिपटी हुईं हमारे सामने आतीं हैं। उनका यही आकर्षण हमें दूसरे पक्ष की ओर से अनभिज्ञ रखता है। दरअसल अंधविश्वास से जकड़े हमारे समाज में अंधविश्वासों को बरकरार रखने के लिए अक्सर विज्ञान का सहारा लिया जाता रहा है और हम अपने दैनंदिन जीवन में इतने रहस्यवादी होते जा रहे हैं कि जानकारी बांटना तो दूर जानकारी पर रहस्य का ताला लगाने में हमें ज्यादा मजा आता है। हमारा मानस इतना वैयक्तिकतावादी है कि हमें रहस्यों के आवरण में लिपटी चीज़ें संभालकर रखने की आदत-सी पड़ी हुई है। इससे हमें लगता है कि हमारे व्यक्तित्व में चार चाँद लग जाएंगे और हम विशिष्ट हो जाएंगे। यह विशिष्टताबोध विज्ञान के लिए और विज्ञान प्रसार के लिए घातक है। आम जन और विज्ञान पसंद करने वालों से हम संकोच भरी नैतिक उम्मीद करते हैं कि विज्ञान को रहस्यलोक की ओर ले जाने वाला वाहन न मानकर रहस्यों से पर्दा उठाने वाला सेवक मान कर जीवन में आगे बढ़ें। दरअसरल सारे रहस्यों का रहस्य यह है कि कहीं कोई रहस्य नहीं है। चीजों- धटनाओं को हम ही बंद आंखों से, बंद दिमाग से, बंद दिल से देखते हैं। प्रकृति के साथ एकाकार हो जाने के बाद आप पाएंगे आपके भीतर से प्रकृति बोलने लगी है। बड़े-बड़े वैज्ञानिकों और आविष्कारकों की रचना प्रक्रिया ऐसी ही रही है। देखा जाए तो दैनिक जीवन में हम जो गणित अपनाते हैं उसमें हमें यह ध्यान ही नहीं रह पाता कि हम अत्यल्प संभावना वाली चीज़ों और घटनाओं को बहुत अधिक तूल दे देते हैं और उसी तथ्य या घटना से जुड़ी अधिकाधिक

संभावनाओं की उपेक्षा कर देते हैं। ज़रा सोचिये ऐसा क्यों है ? हमारे मस्तिष्क की बनावट कहें या बुनावट कुछ ऐसी है कि यह नई चीजों के लिए एकदम से तैयार नहीं होता। प्रतिरोध करता है। यह हिचक निश्चित ही उसकी रिफ्लेक्स एक्शन/प्रतिरक्षा प्रणाली से जुड़ी हो सकती है लेकिन मनुष्य के विकास में इसे बाधक के रूप में भी दर्ज किया जा सकता है। आप गौर करें तो यह हिचक तोड़ने के कारण ही चकमक पत्थर से दुनिया चमकीली हुई, आग को काबू में करना सीखा गया, पहिए का आविष्कार हुआ, मशीनी पंख बने और अंततः आज राकेट बनने तक की यात्रा पर हम आ पहुँचे। जिन्होंने हिचक-भय पर काबू पाया उन्होंने नायकों का दर्जा हासिल किया, इतिहास बनाया। ऐसा मानस जब एक बड़े समूह या समाज का बन जाता है तो प्रतिगामी धाराओं का पहिया उलट जाता है और नवोन्मेषी समाज की संरचना प्रारंभ होती है।

आधुनिक भारतीयता के मायने कतई यह नहीं हैं कि हम भौतिक संसाधनों से समृद्ध हों या पश्चिम की परिभाषा के अनुसार ही विकसित कहे जाएँ, दरअसल सवाल नज़रिए का है। आधुनिक तकनीकी युग में भी अतार्किक आस्था और अंधविश्वास जिस तरह से अब भी जड़ें जमाए बैठे हैं यह केवल आश्चर्य का विषय नहीं है बल्कि हर खुली सोच वाले के लिए विश्लेषण का मुद्दा है। जन-सामान्य में भूत-प्रेत, झाड़-फूंक, ढोंगी संत-बाबा विषयक घटनाओं से हम आए दिन परिचित होते ही रहते हैं परंतु क्या विज्ञान जगत में भी सब कुछ साफ-सुथरा है? क्यों भारत और एशिया के ऐसे देश, जहां की विज्ञान चिंतन-दर्शन परंपरा समृद्ध रही है, मौलिक खोजों की दिशा से भटक जाते हैं? विज्ञान की आड़ में अवैज्ञानिक और प्रतिगामी मूल्य वैश्विक स्तर पर क्यों पनपते हैं और कैसे पश्चिम से चली आधुनिक अंधविश्वास की बयार तीसरी दुनिया की मौलिक खोज और वैज्ञानिक सोच की प्रगति में सोची-समझी बाधाएं खड़ी करती है।

वैज्ञानिक दृष्टि या वैज्ञानिक सोच (साइन्टिफ़िक टैम्पर) में मस्तिष्क खुला रहता है और घटनाओं को समझने के लिये वह किसी पूर्वाग्रह से ग्रस्त नहीं रहता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि वह खोज करते समय किसी मान्यता या योजना, जो कि खोज के लिये आवश्यक होती है, के तहत कार्य नहीं करता, वरन वह ऐसा करते समय इसके प्रभाव के प्रति सचेत रहता है, और विपरीत तथ्यों के मिलने पर उस मान्यता में परिष्कार के लिये तैयार रहता है।

पश्चिम में विज्ञान तथा धर्म के अंतरर्संबंधों में शुरू से ही विरोध है, प्रसिद्ध विज्ञान संचारक कार्ल सैगन ने कहा ही है कि ऐसे समाज का निर्माण, जो विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी पर निर्भर करता है किन्तु विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी को समझता नहीं है, आत्मधाती है । इसे यदि पूर्व के सन्दर्भों में देखा जाए तो आज यहाँ की दो धाराओं क्रमशः विज्ञान तथा साहित्य के अनार्समाबंधों में संधर्ष है, एक दूसरे का नकार है। आर्य भट्ट सहित कई प्रकांड पंडितों-मनीषियों को शिक्षाविद-नीतिशास्त्र के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त रही। मैं समझता हूँ इसे विज्ञान के पक्ष की अंतर्धारा के रूप में देखा जाना चाहिए।

आज जो साहित्य हिन्दी में रचा जा रहा है, उसकी उम्र सीमित ही है, हम देख ही रहे हैं कि भारत में शिक्षा के अंग्रेजी माध्यम में होने से विज्ञान संचार की राह कितनी दुष्कर है। कुछ ही समय बात आज की पीढी हमारे लिए भाषा के मामले में अजनबी हो जायेगी।

आज के ग्लोबल वार्मिंग की तपती बहस के बीच और बाजारवाद-भोगवाद की चपेट में फंसे हम भारतीयों की जीवन व विचार शैली को देखते हुए यह कहना सामयिक ही होगा कि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी सहित सभी भारतीय भाषाओं की संभावनाओं का अन्त निकट ही है। मनोरंजन की भाषा व्यापक स्तर पर हिन्दी ज़रूर है मगर वह विकृति और अपसंस्कृति के प्रसार का माध्यम भर होकर रह गई है, मैं यहाँ बोध की भाषा के विकास की बात कर रहा हूँ। आशा है आप मेरा मंतव्य समझ ही रहे होंगे और सहमत भी होंगे कि यह समावेशी दृष्टि से ही हो सकेगा।

हमारे जैसे अल्पज्ञात लेखक हिन्दी लेखन के लिए बाजार के न रहते हुए भी साहित्य और विज्ञान हिन्दी में लिख ही रहे हैं। हमारा मानना है कि विज्ञान प्रौद्योगिकी में प्रगति करना है तो हमारी सोच की भाषा में लिखना होगा ताकि मूल कथ्य आसानी से पाठक में हृदयंगम हो सके। इससे होगा यह कि हमारे जीवन में हमारी सोच में विज्ञान सतत प्रवाहित हो सकेगा। हिन्दी या मातृभाषाओं में दी गई विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी शिक्षा भविष्य की खिड़कियाँ खोल सकती है क्योंकि आधुनिकतम ज्ञान, विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी का संचार करने की शक्ति मां की जुबान में ही है और यह भी कि उन्नति का तरक्की का यही रास्ता है ऐसा मेरा अनुभव बोलता है। अमल किया जाए तो निस्संदेह भारतीय भाषाएं ज्ञान के मामले में पुनः भारत को विश्व की अग्रणी पंक्ति में ला सकती हैं ।

चलते-चलते एक सुझाव मैं यहाँ रखना चाहता हूँ, भारत में विज्ञान के चिंतन और उसके व्यवहारिक पक्ष पर दो हिस्सों में शिक्षण

हमारी भारतीय मेधा परंपरा को हम ही उपेक्षा की नज़र से देखते हैं। इस पर चिंता के साथ सोचने की जरूरत है। एक वरिष्ठ लेखक ने कहीं एक रोचक टिप्पणी की कि हमारी परंपरा में बहुतेरे वैज्ञानिक ग्रंथ संस्कृत में है। इनको डिकोड करने वाले विद्वानों की आज कमी है। आज स्थिति यह है कि जिन्हें संस्कृत का ज्ञान है, वे विज्ञान नहीं जानते और जिन्हें विज्ञान का ज्ञान है वे संस्कृत नहीं जानते। इस सन्दर्भ में कहना होगा कि मध्यप्रदेश में गत तीस वर्षों में आईसेक्ट ग्रुप के प्रणेता संतोष चौबे जी व आइसेक्ट के विज्ञान कर्मियों की टीम ने विभिन्न अंचलों में विज्ञान प्रसार का महती कार्य अनथक रूप से किया है और हिन्दी में लोकप्रिय विज्ञान विषयक विपुल साहित्य प्रकाशित-प्रसारित किया है और इससे आगे जाकर ऑडियो-विजुअल सामग्री भी तैयार की है, जिससे आप सभी भलीभांति परिचित हैं ही इसके बाद जिन संस्थाओं से मेरा जुड़ाव रहा उनमें विज्ञान प्रसार सहित म.प्र.विज्ञान सभा, एकलव्य साइंस सेंटर ग्वालियर, स्टेट रिसोर्स सेंटर भोपाल, रीजनल साइंस सेंटर भोपाल जैसी अनेक यशस्वी संस्थाओं के नाम भी प्रमुखता से लिए जा सकते हैं जिन्होंने हिन्दी भाषा में विज्ञान प्रसार के कार्य के दायित्व का बखूबी निर्वाह किया है।

होना चाहिए : पहला प्राचीन भारत में विज्ञान जिसके तहत प्राचीन भारत में धातुकर्म, स्थापत्य, भवन निर्माण, खगोल ज्ञान, गणित विज्ञान आदि ऐसे क्षेत्रो को प्राथमिक रूप में बताया जाए जिनमे भारत का लोहा आज भी लोग मानते हैं। दूसरे हिस्से में आधुनिक भारत में तकनीके विकास और सॉफ्टवेर स्किल से लैस भारतीय मेधा की बातें हों साथ ही साथ अन्तरिक्ष में जारी विकास की यशस्वी यात्रा की बातें भी समाहित हों। इससे होगा यह कि भारतीय छात्रों में विज्ञान को भारतीय सन्दर्भों में समझाने में मदद मिलेगी और वे समझ सकेंगे कि आज की वैज्ञानिक दृश्यावली में फंडामेंटल स्तर पर भारत का भी बड़ा योगदान है और भारतीय मेधा का यह योगदान अन्तरराष्ट्रीय वैज्ञानिकों ने व्यापक स्तर पर स्वीकार भी किया है, पश्चिमी विज्ञान जगत शुरू से ही भारतीय दर्शन का ऋणी रहा है। वहाँ के शीर्षस्थ वैज्ञानिक हाइजनबर्ग, बोहर, श्रोडिंगर जैसी हस्तियों ने अपने वैज्ञानिक सिद्धांतों को मूर्त रूप देने में भारतीय विज्ञान दर्शन के प्रभावों को स्वीकारा है। इसके लिए हिग्ग्स बोसॉन पार्टिकल की खोज की कहानी से बड़ा उदाहरण और कोई नहीं है। भारत के उज्ज्वल अतीत और परंपरा को हमें पुनर्जीवित-पुनर्स्थापित करने की आवश्यकता है। अन्तरिक्ष में सौ से अधिक उपग्रहों को स्थापित करना, मंगल पर सबसे कम खर्च पर यान योजना, नैनो सेटेलाइट स्थापित करना आदि क्या इस बात की गवाही नहीं देते कि भारतीय विज्ञान अब एक नई करवट ले चुका है और यह अब उसके पुनर्जागरण का दौर है। आईये हम सब एक संकल्प के साथ इस अभियान में शामिल हों। आज आज़ाद भारत की प्रगति और विकास को उसकी विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में हुई तरक्की के आधार के साथ-साथ चिंतन और दर्शन की सुदीर्घ परम्परा को भी देखा जाना चाहिए ।

raagtelang@gmail.com

❑❑❑

13 सितम्बर 1931 में जन्में शिवगोपाल मिश्र एम.एस-सी, डी.फिल, साहित्य रत्न में शिक्षित डॉ. मिश्र विज्ञान परिषद् प्रयाग इलाहाबाद के प्रधानमंत्री हैं। वे शीलाधर मृदा विज्ञान शोध संस्थान के निदेशक भी रहे। उन्होंने कई विज्ञान कोश व ग्रंथों की रचना की जिसमें हिन्दी में 26 तथा अंग्रेजी में 11 पुस्तकों सहित 5 पाठयपुस्तकें, नौ साहित्यिक पुस्तकें, महाकवि निराला पर तीन पुस्तकें उल्लेखनीय हैं। आपको आत्माराम पुरस्कार, भारत भूषण सम्मान आदि से विभूषित किया गया है। विज्ञान को समझने-समझाने के लिए हिन्दी विज्ञान लेखन के क्रमिक विकास का विहंगावलोकन आवश्यक है। वस्तुतः ऐसी ही सोच के कारण हिन्दी विज्ञान लेखन के भूत, वर्तमान तथा भविष्य विषयक यह पुस्तक गम्भीरता से विचार करके रोचक तरीके से लिखी गई है।

सन 1951 में कानपुर में जन्में प्रदीप कुमार श्रीवास्तव वरिष्ठ विज्ञान संचारक और विजिटिंग एसोसिएट हैं। उन्होंने अनेक विज्ञान लेख और पुस्तकें लिखी हैं जिनमें एलिमेंट्री बायोफिजिक्स, मेकेनिक्स, ऑप्टिक्स आदि उल्लेखनीय हैं। पिछली सदी के प्रारंभ से ही क्वांटम-भौतिकी ने पदार्थ व ऊर्जा की मूलभूत रचना व कार्यशैली के एक नये तथा विस्मयकारी सिद्धान्त की नींव डाल दी थी। क्वार्क, ब्लैक-होल, बिग-बैंग, जीन्स, एंटी मैटर आदि शब्द पिछली सदी की सबसे महत्वपूर्ण खोजों के परिचायक हैं। इनका रोचक एवं परिचयात्मक वर्णन, एक झलक, देने का प्रयास सरल सुबोध भाषा में किया गया है।
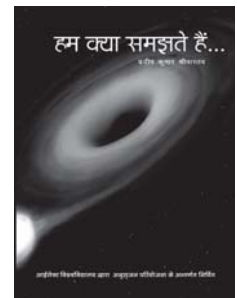
कविता में विज्ञान

नरेश सक्सेना
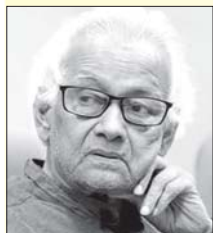
पेशे से इंजीनियर रहे नरेश सक्सेना हिन्दी के ख्यातिलब्ध और महत्वपूर्ण कवि हैं। आपने जबलपुर में बी.ई. (आनर्स) और कलकत्ता के ऑल इंडिया इंस्टीट्यूट ऑफ हाइज़ीन से एमई-पीएच का प्रशिक्षण प्राप्त किया। उत्तर प्रदेश जल निगम में उपप्रबंधक, टेक्नॉलॉजी मिशन के कार्यकारी निदेशक और त्रिपोली (लीबिया) में वरिष्ठ सलाहकार के रूप में काम करने के बाद सरकारी सेवा से निवृत्त हुये।

मुझे मेरे भीतर छुपी रोशनी दिखाओ

सूर्यास्त के बाद भी
बहना बंद नहीं करतीं नदियाँ
बल्कि और तेजी से, गहन अंधकार में
छलाँगें लगातीं काई लगी चिकनी चट्टानों पर
खतरनाक ऊँचाइयों से
कूद पड़तीं अंधी गहरी खाइयों में
झाड़ियों दरारों और जंगलों के आर पार

लगता है
उनके भीतर छुपी कोई रोशनी
जरूर उनके साथ साथ चलती है।

रामगाड में
टरबाइन के पंखों से जूझकर हमने उसे
प्रकट होते देखा और उसी रोशनी में काम करती
नौ बरस की राजी के लिए कई ''शौट''

पहले सकुचाई, फिर पूछने लगी राजी
यह हमारी नदी की रोशनी है?
हाँ
पानी घट जाए तो रोशनी भी घट जाएगी
हाँ
गिलास के पानी में भी रोशनी है
नहीं, बहते हुए पानी की ताकत में है रोशनी
जिस ताकत से तुम करती हो काम
उसमें है रोशनी।
मेरे भीतर रोशनी है, साबजी?
हाँ
कितनी? सूरज जितनी मैंने कहा
नहीं, झूठ!
चाँद जितनी
नहीं, राजी बोली
अच्छा दिये जितनी मैंने कहा
दिये जितनी क्यों? पूछा राजी ने
दिये जितनी क्यों नहीं? मैंने कहा
बल्ब जितनी क्यों नहीं?
बल्क जितनी क्यों?
क्योंकि उससे टीवी चल सकता है।
हाँ उतनी तो होगी, मैं सोचता हुआ कहता हूँ

'तो दिखाओ मुझे मेरे भीतर की रोशनी'
मैं स्तब्ध!
फिल्म के दृश्य में
फिल्म के दृश्य में
नैनीताल की पहाड़ियों से टकराता
गूँजता है राज़ी का प्रश्न

'तो दिखाओ मुझे मेरे भीतर की रोशनी'

दुनिया की करोड़ों करोड़ राजियाँ
और नदियाँ कहती हुई एक साथ
दिखाओ मुझे मेरे भीतर की छुपी हुई रोशनी
सूरज जितनी नहीं
चाँद जितनी नहीं
सिर्फ एक बल्ब जितनी रोशनी।

nareshsaxena68@gmail.com

अरुण कमल

अरुण कमल का नाम हिन्दी साहित्य में एक लोकप्रिय और उल्लेखनीय कवि के रूप में है। 'केवल अपनी धार' आपकी उल्लेखनीय कृति है। आप बिहार में रहते हैं।

सूर्यग्रहण : एक

बहुत सुन्दर लगेगा सूर्य

धीरे-धीरे गिरेगा प्रकाश
और अन्त में रह जाएगी एक काली पुतली
रोशनी के वर्क़ में लिपटी,
कभी बस हीरे के नग-सा दमकता सूर्य
कभी मोतियों की माला-सा झिलमिल
कभी गरी की एक फाँक-भर उज्ज्वल
और एक क्षण को धरती पर बिछेगी
प्रकाश और अँधेरे से बुनी चटाई

बहुत सुन्दर, बहुत भव्य है ब्रह्मांड का यह दृश्य
जो लूट सके सो लूट ।

ऐसी सुन्दरता कौन काम की
जिसके देखे दीदा फूटे ?

सूर्यग्रहण : दो

धीरे-धीरे हो गया सर्वग्रास
पर एक काला गोल पिण्ड
रहा दीप्त
विराजता पूरे आकाश में--
ग्रहण के बावजूद सूर्य ही रहा सूर्य
ग्रहण के बावजूद सूर्य ही होता है सूर्य !

arunkamal@gmail.com

संतोष चौबे
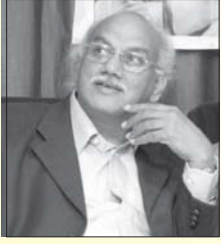
विज्ञान संचारक संतोष चौबे ने कम्प्यूटर शिक्षा पर आधारित अपनी पहली ही किताब 'कम्प्यूटर एक परिचय' के माध्यम से अपूर्व ख्याति अर्जित की और इसी किताब ने विक्रय के कीर्तिमान स्थापित किये। विज्ञान लेखन के लिए उन्हें मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी का डॉ.शंकरदयाल शर्मा पुरस्कार और भारत सरकार का मेघनाद साहा पुरस्कार मिला। उन्हें भारत सरकार का राष्ट्रीय विज्ञान प्रचार पुरस्कार, राष्ट्रपति द्वारा इंडियन इनोवेशन अवार्ड तथा नेसकॉम आईटी इनोवेशन अवार्ड, एवं एशियन फोरम का प्रतिष्ठित i4d अवार्ड प्राप्त हुआ है। सामाजिक उद्यमिता के लिए श्वॉब फॉउन्डेशन अवार्ड मिला तथा वे अशोका फैलोशिप प्राप्त कर चुके हैं। भारतीय इंजीनियरिंग सेवा तथा भारतीय प्रशासनिक सेवा में चयनित हुए। संतोष चौबे का हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान है।

आईना

कविता के शुरू में ही बता दूँ
कि मैं आईना शब्द का प्रयोग
उर्दू कविता के शिल्प में
नहीं करना चाहता
न लाना चाहता हूँ उसे
हिन्दी ग़जल की परंपरा में
अपनी कविता में बार बार

पर मजबूरी है
कि पुनरावृत्ति के तमाम खतरों के बावजूद
मुझे लाना ही पड़ेगा
उसे अपनी कविता में
क्योंकि यह कविता
खुद आईने के बारे में ही है

जिस दिन की यह बात है
उस दिन खड़ा था मैं
अपने आईने के सामने
देखने आत्मसंतुष्टि से भरा
अपना प्रतिबिंब
पर जो मुझे दिखा
वह चेहरा मेरा नहीं था।
मैंने चौंक कर देखा
मैं कब से पहनने लगा
यह सोने के बटनों वाला
लाल रंग का मिलिटरी कोट
और सेना के जनरलों की तरह
छाती पर तमगे और फीते
इस तरह की तिरछी बेल्ट
तो मैंने कभी बाँधी ही नहीं
न वह नुकीली नाक मेरी थी
और न ही कठोर बाज सी आँखें।

मैं थोड़ा पीछे हटा-थोड़ा आगे
फिर दाएँ-कुछ बाएँ
नहीं वह सपना नहीं था
आईना वहीं था
और चेहरा भी वहीं था
पर निश्चित ही वह मेरा नहीं था।

तभी आईने ने मुझसे कहा
देखते हो इस बेल्जियम के राजा को
जो सोचता है दुनिया इसने बनाई
और इसकी तरह सैकड़ों हैं मुझमें कैद
जिनके मुस्कुराने में भी
देती है उनकी अकड़ दिखाई
पर देखो मैं तुम्हें दिखाता हूँ मेरे भाई
हमारी ये दुनिया किसने बनाई

तब चलने लगे
किसी चलचित्र की तरह
ढेरों चित्र उस आईने में।

प्राचीन मिस्र के कारीगर
बनाते काँच के शानदान बर्तन
या सीरिया के मजदूर मारते नली में फूंक
बनाते पिघले काँच से
पतली सतह वाली गोलाइयाँ
रोम के काँच कारीगर
जिन्होंने बनाई थी पहली पहली बार

धुँधली काँच की मटमैली दीवार
भट्टियों और धुएँ से घिरा
बेनिस शहर
जहाँ शीशे ने बदली अपनी शक्ल आइने में
और इस जादू के बाद
भेज दिया गया था जहाँ से
सभी काँच कारीग़रों को
मुरानो द्वीप मे
उनके पारे और टीन के साथ

उन्हीं में से एक कारीगर
बनाता काँच को उत्तल
कि बन सके न्यूरेमबर्ग में
हज़ारों हज़ार चश्मे
और देख सकें करोड़ों लोग
अपनी पुरानी आँखों से नई दुनिया
मिडिल बर्ग में काम करता
हेंस लिपरशे
जिसने अपनी दूरबीन से

कम कर दी थीं दूरियाँ
फिर उसी दूरबीन से आकाश देखता गैलीलियो
जिसने जानी चंद्रमा की
सुंदर असुंदरता
नापी ग्रहों की गति
ढूँढ़े गुरु के चंद्रमा
और अपदस्थ कर दिया धरती को
ब्रह्मांड की सत्ता से

तब जब पादरी रोक रहे थे विचार
कि उससे ईश्वर भी हो सकता था अपदस्थ
एक आदमी बदल रहा था दुनिया
कर रहा था ब्रह्मांड को उलट पलट
दिखा रहा था सूरज पर दाग़

और आकाश में अनामिकाएँ
सिर्फ एक दूरबीन के सहारे

उसी समय हॉलैंड में लूवेन होक
सूक्ष्मदर्शी पर झुका
खोज रहा थे लघु ब्रह्मांड
पौधों और पत्तियों में जीवन
मनुष्य के रक्त में उसके जीवन का आधार।

तभी निकले थे
कोलंबस और मैगलॉन
एक नक्शे, कंपास और दूरबीन के सहारे
अपनी समुद्री यात्राओं पर
खोजने नई दुनिया
और जेम्स कुक
बर्फ के ढँके दक्षिणी ध्रुव में
पाने नई धरती

मैं खोया था पूरी तरह
इस चल चित्र में
कि आईने ने मुझसे कहा
यही थे वे हज़ारों हज़ार कारीगर
जिन्होंने शीशे को बदला आईने में
कठिनाइयों से लड़ते जहाजी
प्रतिभा से दमकते वैज्ञानिक
जिन्होंने देखा शीशे के पार
और बदल दी दुनिया
असल में उन्हीं ने बदला धरती को

जो ताकते रहे आकाश
अब आईना पूरी तरह साफ था
मेरे मन की तरह
एक बारगी तो मुझे लगा
कि उसकी यह चित्र कथा
मेरे और आपके बारे में थी
तभी आईना मुस्कुराया
और मुझे याद आया
असल में यह कविता
आईने के बारे में ही थी।

choubey@aisect.org

ओम भारती

ओम भारती ने अपना कॅरियर इंजीनियर के रूप में आरंभ किया तथा बाद में वे बैंकर्स हुए। हिन्दी कविता में विज्ञान विषय और विज्ञान शब्दावली के शुरुआत ओम भारती ने की। उनकी कविता में वैज्ञानिकता प्राथमिक तौर पर आती है। अब तक वे दस से अधिक पुस्तक लिख चुके हैं जिन पर उन्हें कई शासकीय और संस्थानिक पुरस्कार प्राप्त है।

सुपर कम्प्यूटर का राष्ट्र के नाम पहला संदेश

हलो बीप् बीप टेस्टिंग हलो
हलो चैनल उन्नीस-बी
हाँ, अब यह ठीक है, स्टार्ट!

पृथ्वी का यह पोर्शन, जो इंडिया कहलाता है
उसमें बसने वाले उपभोक्ताओं सुनो
सुनो, सावधान हो, हम जो कुछ बोलते हैं
हम सुपर कम्प्यूटर बोलते हैं सुनो सब
एंड माइंड यू, हम भारतीय कंप्यूटर नहीं हैं
फुली इम्पोर्टेड हैं, ध्वान रहे
पहली बार तुमसे मुखातिब हैं आज
एंड रियली, हमें बहुत खुशी है
तुम्हें यों सम्बोधित करने की

वेरी गुड, पास आओ बच्चो आ जाओ,
आओ कि तुम्हारे खिलौने अब व्यर्थ हैं
अब तुम ही खिलौने हो, हम तुमसे खेलेंगे
बनाएँगे भविष्य का खिलौना तुम्हीं से
बेवकूफ चींटो, बैठ जाओ, फाइन!

गुड्डों का ब्याह छोड़ कम ऑन लड़कियो
इधर आओ, बाँहों में हमारी
और याद रहे, अब तुम्हारे सपनों में
न राजकुमार आएगा, न राक्षस,
हम आएँगे, ओक्के
इक्कीसवीं सदी के सुपर हीरो हम
हम डिजाइन करेंगे तुम्हारे सपने अबसे

युवतियाँ हमारे लिए छोड़कर भागो ऐ नवयुवको
प्यार अब तुम्हारा अधिकार नहीं, पुश ऑफ
हम करेंगे प्रेम, तुम देखना
प्यार के कितने रंग, आयाम कितने
कैसा प्रिसाइज और परफेक्ट
लव किया जाता है यह हम दिखाएँगे
अस्तबल में हममें से एक सिर्फ इसीलिए होगा
अनुभव के दुशालों को फेंककर उठ जाओ बूढ़ो
करोड़ो बुजुर्गों का ज्ञान है हममें
छोड़ दो सलाह देना, भूल जाओ फैसले
अब तमाम मसले हम देखेंगे, निबटेंगे
वी, द वाइजेस्ट
हम देंगे निर्णय, आदेश, उपदेश
सलाह, मशविरा, राय या गाइडेंस
अब हम ही देंगे, दूसरा कोई नहीं

खेतों से निकल आओ भारत के फूहड़ किसानो
हाड़ फूँककर भी तुम
दस परसेंट यील्ड भी न ले सके
स्टॉप इट जाहिलो
हम करेंगे खेती अब वैज्ञानिक तरीके की
तो प्रोडक्शन आसमान छुएगा

खदानें खाली कर दो काहिल मजदूरो तुम
इस प्लेनैट पृथ्वी के गर्भ से
मूल्यवान मिनरल्स उलीचना
तुम्हें नहीं फकत हमें आता है
असाधारण दक्षता से खोदेंगे पृथ्वी हम
पूरी निचोड़ लेंगे
खासकर वो मेटल्स जिनसे
हम बनते हैं या बनते हैं सिक्के
फैक्ट्रियाँ अब तुम्हारे भरोसे नहीं हैं
बाहर हो जाओ ऐ कामगार
कान पक चुके हैं, सब फेडअप हैं तुम्हारे नारों से
वेतन बढ़ाने की माँगों को भूल जाओ
छोड़ दो मिलों का कम्पाउंड यू ईडियट्स
हम मशीन चलाएँगे, लोहा लगाएँगे,
सब कुछ बनाएँगे, कामचोर रास्कल्स, मालिक ने तुम्हारी जगह हमें काबिज किया है

सट्टे और ट्यूशन के युगपात समीकरण
हल करते मास्टरो
निकल आओ शिक्षा-संस्थानों से
ली द कैम्पस एंड गेट लॉस्ट

साबित हैं तुम्हारी असफलताएँ
व्यवस्था नहीं दोषी
वेल, चाहो तो बैठे रह सकते हो छात्रों में
देख भी सकते हो हमारा पढ़ाना
सीखना कि पढ़ाया किस तरह जाता है

बस करो कलाकारो
कवियो, तुम चुप करो
लिसन यू स्टुपिड्स, नो रूम
आई मीन दुनिया में जगह नहीं
जगह नहीं तुम्हारे लिए कोई अब
धरती पर कौन है हम-सा क्रिएटिव अब
अब सारी कृतियाँ हम रचेंगे
कर लेंगे हम ही समीक्षाएँ
हममें से एक बहुत होगा
तुम जैसे सौ-सौ की एवज में

रिक्शा-ताँगा-गाड़ीवान
ड्राइवर ऑपरेटर पायलट कप्तान
कुली या डॉक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक, वकीलो
किसी भी विशेषण के कर्मियो
अपनी औकात में आ जाओ सबके सब
दुनिया को हमारी बिरादरी चलाएगी अब

अरे आप कहाँ चले रुकिए,
मुनीमजी, सेठजी आप भी
अभी तक मैं इससे मुखातिब था,
इस भेड़ जनता से, आप तो बिराजिए महामहिम
योर एक्सलेंसीज

निवेदन की अनुमति हो यदि तो
बताऊँ मैं दौलत पर दुनिया की
कुंडली मारने का लेटेस्ट स्टाइल
माडर्न फूल-प्रूफ तकनीक, नया और सही ढंग
बताऊँ कि कहाँ दाम बढ़ा दे, कहाँ माल दबा दें
किसमें क्या मिला दें कि प्रॉफिट ही प्रॉफिट हो
बोलिए मेरे आका, कहाँ की
सरकारें बदल दूँ और कहाँ की जनता
कहाँ दंगा-महामारी, हुक्म हो
हुक्म हो तो समूची पृथ्वी से
मनुष्य ही मिटा दूँ
तिस पर भी जब कहें आप ही को
अपार बहुमत से जिता दूँ
आज्ञा तो कीजै प्रभु
आप ही के पैसे से क्रीत हूँ

यस माई मास्टर, आपका खरीदा हूँ
आपके इशारे पर चलना है मुझे तो
तनिक भी न डरें स्वामी
प्रभुता उसी की है तकनीकी जिसकी है
बटन दबाएँ आप तो
रिमोट कंट्रोल है आप ही के हाथ में
आखिर हम कंप्यूटर
टाप ही के अकिंचन सेवक हैं श्रेष्ठिवर
हमें आप इंस्ट्रक्शन दें मालिक, और देखें

सुधीर सक्सेना
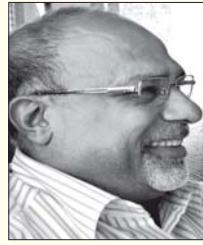
लखनऊ में जन्म। वैज्ञानिक दृष्टि के साथ कविता, पत्रकारिता, अनुवाद, संपादन और इतिहास-लेखन में एक साथ सक्रिय। 'बहुत दिनों के बाद', 'कभी न छीने काल', 'समरकंद में बाबर' चर्चित काव्य-संग्रह। रूस, ब्राजील और स्वीडन आदि देशों की कविताओं का अनुवाद। 'सोमदत्त पुरस्कार' और 'पुश्किन सम्मान' से सम्मानित। संप्रति-प्रधान संपादक, दुनिया इन दिनों।

सुनो अपूर्वानंद

सुनो अपूर्वानंद!
अपूर्व कुछ भी नहीं है
कुछ भी नहीं है अपूर्व

आपकी हथेली में सूर्योदय के पहले भी
हुआ था सूर्योदय,
मुंडेर पर खगकुल का कलरव
झरी थीं बूँदें निर्झर-सी
एक नहीं, अनेक बार

अपूर्व कुछ भी नहीं होता
दिन के पहले भोर
भोर के पहले रात्रि
रात्रि के पहले संझा।
अनुवाद के पहले नाद
गीत के पहले आलाप
जन्म के पहले निषेचन

अपूर्व क्या होता है? अपूर्वानंद!
प्रत्युत्तर के पहले उत्तर होता है
और उत्तर के पहले प्रश्न
और प्रश्न क पहले जिज्ञासा
स्वप्न के पहले नींद होती है
और नींद के पहले जागरण
और तन्द्रा के बारे में
तुम जानते ही होगे, अपूर्वानंद!

कहो तो, कौन अपूर्व है?
आकाशगंगा के पहले से
चली आ रही हैं आकाशगंगाएँ
धरती के पहले से था सूर्य
और चंद्रमा के पहले पृथ्वी

पुत्र के पूर्व पिता थे, पिता के पूर्व प्रपितामह
इस तरह एक शृंखला की कड़ी हो तुम
अपूर्वानंद

सुनो, अपूर्वानंद!
मेंडलीफ के पहले भी थे तत्व
तत्वों की सारणी में
यहाँ तक कि पहले आवर्त के पहले
शून्य आवर्त
आइजक न्यूटन के पहले भी था गुरुत्वाकर्षण
सेबों के खिलने से बहुत-बहुत पहले भी
धरती में ओर-छोर,
आइंस्टाइन के पहले भी थी सापेक्षता,
और मार्क्स-एंगेल्स के पहले था
द्वंद्वात्मक भौतिकवाद
डार्विन से पीढ़ियों पहले हो चुका था
मानव का विकास
और गांधी के सत्याग्रह से
सहस्राब्दियों पहले से है, धरती पर सत्य।

सुनो, अपूर्वानंद!
जीवन गूढ़ है,
कहना कठिन है
कि अमुक ज्ञानी है, या मूढ़ है?
देखो अपूर्वानंद!

धरती पर अभी भी है कुतूहल
कि धरती घूमती है प्रदक्षिणा-पथ में
और अपनी धुरी पर भी
जड़ता है, मृत्यु है, स्थिरता।
कोई नहीं जानता
धरती की देहरी आवृत्ति
एक युग से दूसरे युग में
प्रवेश के वास्ते

न काल ही जानता है
कल का पता-ठिकाना
सुनो!
काल-यात्री है कवि
माना कि आलोचना में
मूल्य है, सार है
मगर
बिना कृति के असंभव है आलोचना,
आलोचना के लिए, अपूर्वानंद।
कृति अनिवार्य है।

यूरेका

अगर पानी में छपाक से
कूदता नहीं आर्किमिडीज
तो भला कहाँ
होता एथेंस की सड़कों पर
यूरेका-यूरेका का शोर

लोग सचमुच भूल गये होते
आर्किमिडीज को

फख्र करो
हर आर्किमिडीज पर
जिसने खोजा और पा लिया
नफरत करो उससे
जिसने मार डाला
अपने भीतर के आर्किमिडीज को

और
तरस खाओ उस पर
जो बंद कमरे में
अथवा खुली सड़क पर
कभी नहीं चिल्लाया
'यूरेका... यूरेका... यूरेका...'

sudheersaxena54@gmail.com

शरद कोकास
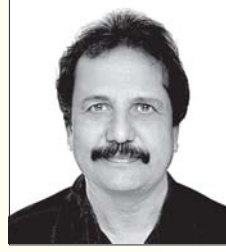
शरद कोकास विज्ञान विषयों पर पिछले वर्षों में निरंतर लिखते और छपते रहे हैं। उनके कई लेख 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' सहित अन्य विज्ञान पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। शरद ने विज्ञान कविताओं पर बहुत गहराई से ठहरकर काम किया है। 'देह' उनकी चर्चित विज्ञान कविता है। शरद शासकीय नौकरी से सेवानिवृत्त होकर पूर्णतः लेखन में रमे हुए हैं। वे भिलाई में रहते हैं।

देह

'दिन' जैसा दिन नहीं था न रात जैसी थी रात
धरती की तरह धरती नहीं थी वह
न आसमान की तरह दिखाई देता था आसमान
ब्रह्मांड में गूँज रही थी
कुछ बच्चों के रोने की आवाज़
सूर्य की देह से गल कर गिर रही थी आग
और नए ग्रहों की देह जन्म ले रही थी

'अपने' भाईयों के बीच अकेली बहन थी पृथ्वी
जिसकी उर्वरा कोख में भविष्य के बीज थे
और चांद उसका इकलौता बेटा
जन्म से ही अपना धर अलग बसाने की तैयारी में था

'इधर' आसमान की आँखों में अपार विस्मय
कि सद्यप्रसूता पृथ्वी की देह
अपने मूल आकार में वापस आने के प्रयत्न में
निरंतर नदी पहाड़ समंदर और चट्टानों में तब्दील हो रही है
रसायनों से लबालब भर चुकी है उसकी छाती
और मीथेन,नाइट्रोजन,ओजोन युक्त हवाओं में सांस ले रही है वो

'यह' वह समय था देह के लिए
जब देह जैसा कोई शब्द नहीं था
अमीबा की शक्ल में पल रहा था देह का विचार

अपने ही ईश्वरत्व में अपना देहकर्ता था वह
जिसने हर देह में जीन्स पैदा किए
डी ऑक्सी राइबो न्यूक्लिइक एसिड' [1]अपनी सघनता में
रचते गए पाँव के नाखून से बालों तक हर अंग
जो हर सजीव में एक जैसे होते हुए भी कभी एक जैसे नहीं हुए
जो ठीक पिता की तरह उसकी संतानों में नहीं आए
और न संतानों से कभी उनकी संतानों में
'शिशिर' की सर्द रातों में हमारी देह में सिहरन पैदा करती
शीतल हवाएँ कल कहाँ थी
कल यही मिट्‌टी नहीं थी नहीं था यही आकाश
आज नदी में बहता हुआ जल कल नहीं था
उस तरह देह में भी नहीं था वह अपने वर्तमान में
कहीं कुछ तय नहीं था कि उसका कौन सा अंश
किस देह में किस रूप में समाएगा
कौन सा अंश रक्त की बूंद बनेगा कौन सा माँस
पृथ्वी की प्रयोगशाला में
किस कोशिका के लिए कौन सा रसायन
उत्तरदायी होगा कुछ तय नहीं था

'पंछियों' की चहचहाहट और मछलियों की गुड़गुड़ाहट में
देह के लिए जीवन की वह पहली पुकार थी
कभी अंतरिक्ष से आती सुनाई देती जो
कभी समुद्रतलों के छिछले पानी से
आग्रह था जिसमें भविष्य की यात्राओं के लिए साथ का

'देह' और जीवन की सहयात्रा जो सहस्त्राब्दियों से जारी है
जहाँ एकाकार हो चली मनुष्य की शक्लों में झिलमिलाता है
किसी जाने पहचाने आदिम पुरखे का चेहरा
आज के मनुष्य की देह तक पहुँचने से पहले
जाने कितनी यंत्रणाओं से गुजरी होगी उसकी देह
किस तरह अपनी क्षमता और आश्चर्यों से उबरकर
दैहिक नियमों के सूत्र रचे होंगे उसने
किस तरह सिध्द की होगी देह में जीवन की उपयोगिता
कैसे गढ़े गए होगें स्त्री-पुरुष अंगों के अलग अलग आकार
और जीवन में उनकी भूमिका तय की गई होगी

'आइने' में अपने चेहरे पर तिल देखते हुए
क्या हम सोच सकते हैं हमारे किसी पूर्वज के चेहरे पर
ठीक इसी जगह रहा होगा ऐसा ही तिल
हमारे हँसने मुस्कराने खिलखिलाने में
हमारी किसी दादी नानी की मुस्कुराहट छिपी होगी
हमारे किसी परदादा के माथे पर
ठीक उसी जगह बल पड़ते होंगे

जिस तरह हमारे माथे पर पड़ते हैं
'समय' के आंगन में अभी कल तक तो थीं
हमारे विस्मृत पुरखों की परछाइयाँ
जो उनकी देह के साथ ही अदृश्य हो गईं

जानना तो क्या सोचना भी बहुत मुश्किल
कि वे ठीक हमारी तरह दिखाई देते थे
हमारे अवयवों की तरह हरकतें होती थीं जिनके अवयवों में
हमारे देहलक्षणों की तरह थे जिनके देहलक्षण
और उनका भी वही देहधर्म था जो आज हमारा है

'एक' पहेली है मनुष्य की यह देह
संत - महात्माओं वैज्ञानिकों और विचारकों के लिए
देह जो सदियों से स्वयं अपना हल ढूंढने की कोशिश में है
जो सजीवों की तरह जन्म लेती है बढ़ती है

अपने आसपास से आहार लेकर
पुनरुत्पादन की प्रक्रिया से गुजरती निरंतर

हर जिज्ञासु की आँख को आमंत्रित करती
अपनी अंधेरी गुफाओं और रहस्यमय घाटियों में
अपनी ओर खींचती है जो अपने अजनबीपन में
समाप्त होते ही आकर्षण जो ऊब पैदा करती है

'इधर' प्रयोगशाला में शीशे के मर्तबानों से झांकती भ्रूण देह
जिसे किसी देह ने ही दान किया होता है
अपने जन्म से पूर्व की कथा का बयान करती है
माइक्रोस्कोप के नीचे प्लेट में मुस्कराती हैं कोशिकाएँ
हमसे है जीवन हमीं से है देह

कोशिकाएँ जो सजीव हैं सजीव देह के भीतर
और निर्जीव बाहर इस देह के
फिर भी वे जन्म दे सकती हैं नई कोशिकाओं को
किसी आत्मा के सहयोग के बगैर ही
'मोटी' मोटी किताबों और रपट के पन्नों की
घुमावदार सीढ़ीयों से उतरती हैं कुछ शोधकथाएँ
कि देह का न जन्म संभव है एक बार में न मरण
जन्म के साथ जन्म लेती हैं कुछ कोशिकाएँ
बढ़ते अंगों के अनुपात में बढ़ती हैं
चाँद बढ़ता है जैसे धूप बढ़ती है देह बढ़ती है
अपने चरम में होती है जो देह के चरम में
'फिर' पहाड़ की चोटी से उतरती देह की थकान में
धीरे धीरे दम तोड़ती है देह की कोशिकाएँ
अंगों के साथ छोड़ने की उम्र में साथ छोड़ती हैं

1. 'डी ऑक्सी राइबो न्यूक्लिइक एसिड' - देह की जीवित कोशिकाओं के गुणसूत्रों में पाए जाने वाले तंतुनुमा अणु या डी.एन.ए.।

और एक दिन उसी देह के साथ मर जाती हैं
मस्तिष्क के घोंसले में बैठी इच्छाएँ भावनाएँ
देह के साथ मर जाती वासनाएँ मनुष्य की
और दोबारा कभी जन्म नहीं लेती हैं
फिर भी डरती है हर देह मरने से
और इस भय के चलते हर रोज़ मरती है

'अजूबों' का संसार है इस देहकोश के भीतर
अपनी आदिमाता पृथ्वी की तरह गर्भ में लिए कई रहस्य
आँख जिसे देखती है और बयान करती है जिव्हा
आँसुओं के अथाह समंदर लहराते हैं जिसमें
इसकी किलकारियों में झरने का शोर सुनाई देता है

माँसपेशियों मे उभरती हैं चटटानें और पिघलती हैं
हवाओं से दुलराते हैं हाथ त्वचा महसूस करती है
पाँवो से परिक्रमा करती यह अपनी दुनिया की
और वे इसमें होते हुए भी इसका बोझ उठाते हैं
अंकुरों से ऊगते रोम केश घने जंगलों में बदलते
बीहड़ में होते रास्ते अनजान दुनिया में ले जाने वाले
नदियों सी उमड़ती यह अपनी तरुणाई में
पहाड़ों की तरह उग आते उरोज
स्वेदग्रंथियों से उपजती महक में होता समुद्र का खारापन
होंठों पर व्याप्त होती वर्षावनों की नमी
संवेदना एक नाव लेकर उतरती रक्त की नदियों में
और शिराओं के जाल में उलझती भी नहीं
असंख्य ज्वालामुखी धधकते इसके दिमाग़ में
हदय में निरंतर स्पंदन और पेट में आग लिए
प्रति के शाप और वरदान के द्वंद्व में
यह ॠतुओं के आलिंगन से मस्त होती जहाँ
वहीं प्रकोपों के तोड़ देने वाले आघात भी सहती है

'सिर्फ' देह नहीं मनुष्य की यह वसुंधरा है
और इसका बाहरी सौंदर्य दरअसल
इसके भीतर की वजह से है
पृथ्वी की भीतरी सुरंगों में जब खदबदाता है लावा
मचल उठता है किसी क्षण फूट पड़ने के लिए
करोड़ों प्राणों का शोर लिए उठता है वह अपने साथ
जिसे अपने तल की गहराइयों में जगह देता है सागर
जिसके शांत जल से संयोग कर वह देह रचता है।

sharadkokas60@gmail.com

डॉ. राकेश पाठक

पेशे से पत्रकार राकेश पाठक सैन्य विज्ञान और इतिहास में परास्नातक हैं। उन्होंने सैन्य विज्ञान में पीएच.डी. की है। राकेश ने न्यूयार्क, लाओस, कंबोडिया, कोसोवो, यूगोस्लाविया आदि की सांस्कृतिक यात्राएं की हैं तथा यूरोप यात्रा पर 'काली चिड़िया के देश में' संस्मरण किताब लिखी है। वैज्ञानिक दृष्टि के चलते उन्होंने विज्ञान लेखन को अपनाया है। उनके कुछ लेख यत्र-तत्र प्रकाशित हैं। 'बसंत के पहले दिन से पहले' किताब पर्याप्त चर्चित हुई तथा उन्हें कई सम्मान और पुरस्कार प्राप्त हैं। डॉ. राकेश पाठक इन दिनों एडिटर इन चीफ डीएनएन न्यूज चैनल हैं।

ई-मेल 1

नहीं लिखे हमने प्रेम पत्र
पकड़े जाने के डर से

बना लिए ई-मेल आईडी
प्यार के नाम से
रखा अनूठा और
एक सा पासवर्ड

दिन भर बतिया कर भी
बाकी रह जाता जो कुछ
वो सब लिखते मेल में
जिनमें होती कुछ अनकही ख्वाहिशें
और छोटी छोटी शिकायतें

अबोले के दिन कटते ई-मेल पर
कभी दिन बीतते पुराने मेल पढ़ते हुए।

ई-मेल 2

भूल जाना चाहता हूँ
अपने ई-मेल का पासवर्ड
दर्ज है जिसमें
हमारे प्रेम का अथाह चिट्ठा

रूठने-मनाने की तारीखें
देह का राग और व्याकरण
मिलने के समय की अव्यक्त अनुभूतियाँ
बहुत दिनों तक न मिल पाने की व्यथाएँ

सतरंगी ख्वाहिशें, कुछ मीठे दर्द
तन्हाइयों के उदास संदेशे
एक दूसरे की पसंद के गीत और गज़लें
प्रेम की इस अथा पूँजी को
बार-बार टटोलने-निहारने की
आदत सी हो गयी

लेकिन, अब कहीं रख कर भूल जाना चाहता हूँ
इस खजाने की चाभी।

ई-मेल 3

हमारे बाद भी
बचा रहेगा प्रेम

ई-मेल में दर्ज
प्रेम की बहुत गहरी दास्तान
हमेशा रहेगी सुरक्षित

आग, पानी कुछ भी
नहीं बिगाड़ सकेंगे

सायबर स्पेस में
हमेशा बचा रहेगा
हमारा प्रेम।

rakeshpathak0077@gmail.com

एकांत श्रीवास्तव
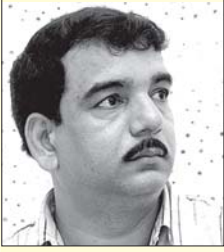
एकांत श्रीवास्तव की पहचान एक गंभीर कवि के रूप में है। उनकी कविताओं में विज्ञान की बानगी मिलती है। एकांत की कविताएं कोरी भावुकता से हटकर वैज्ञानिकता की हामी हैं। एकांत श्रीवास्तव के कविता संग्रहों में अन्न है मेरे शब्द, मिट्टी से कहूँगा धन्यवाद, धरती अधखिला फूल है और बीज से फूल तक शामिल हैं। उन्हें शारद बिल्लौरे पुरस्कार, रामबिलास शर्मा पुरस्कार, ठाकुर प्रसाद स्मृति पुरस्कार, दुष्यंत कुमार पुरस्कार, केदार सम्मान, सूत्र सम्मान, हेमंत स्मृति सम्मान, जगत ज्योति स्मृति सम्मान, माखन सिंह सिसौदिया सम्मान और डॉ. नरेंद्र देव सम्मान प्राप्त हैं। उन्होंने कई महत्वपूर्ण पत्रिकाओं का संपादन भी किया।

गुरुत्वाकर्षण

समुद्र हमें अपनी तरफ खींचता है
अपनी तरफ खींचती है पृथ्वी

वह खींचता है और हमें शामिल कर लेता है
अपने स्वप्न और संघर्ष में
अपने हर्ष और विषाद में

करोडों-करोड़ बूँदों का
एक बड़ा समाज है समुद्र
अजस्र नदियों और मेघों का प्रताप
इसमें किसी इंद्र की कोई भूमिका नही

पर अलग नहीं है बूँद की कथा
वह समुद्र की कथा में अंत तक
साथ-साथ चलती है
जैसे एक पत्ती की कथा
पेड़ की कथा में
मनुष्य की कथा
समाज की कथा में

एक बड़ी कथा छोटी कथा को
अपनी तरफ़ खींचती है
जैसे पृथ्वी खेंचती है हमें अपने गुरुत्वाकर्षण में
जब हम उससे दूर जाने लगते हैं
वह बचाए रखती है
हमारे पाँवों को विस्थापित होने से

अजेय है वह जो विशाल है
अभेद्य है वह जो विशाल है
अलंघ्य है वह जो विशाल है

बचा रहे समुद्र
उसकी विशालता बची रहे
बची रहे पृथ्वी
इसका गुरुत्वाकर्षण बचा रहे

बचा रहे जीवन का स्वप्न झिलमिल
अपने गुरुत्वाकर्षण में

समुद्र हमें अपनी तरफ़ खींचता है
अपनी तरफ़ खींचती है पृथ्वी।

shrivastava.ekant@gmail.com

संजय अलंग

संजय अलंग वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी हैं। उनके दो काव्य संग्रह तथा गद्य की पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। छत्तीसगढ़ पर लिखी उनकी कविता शृंखला प्रकाशित और चर्चित हुई है। वसुधा के हिन्दी सिनेमा विशेषांक में लिखे उनके लेख ने पहले-पहल हिन्दी पाठक का ध्यान खींचा था। उन्हें विषय विशेष विशेषज्ञ सम्मान, ई-गवर्नेंस पुरस्कार और कई प्रशासनिक सम्मान प्राप्त हुए हैं। उन्होंने एशिया और अफ्रीका की कई सांस्कृतिक यात्राएं की हैं। इन दिनों संजय बिलासपुर छत्तीसगढ़ में जिला प्रमुख हैं।

कृमि

पेट में मेरे
कृमि पल रहा है
परजीवी है वह
चिकित्सक ने बताया
वह खाना माँगता है
खाने से उसे पौष्टिकता मिलती है
जीता है वह उस पर

न मिलने पर काटता है, झिंझाड़ता है
वह पुष्ट हो रहा है
बढ़ रहा है
पेट भरा है मेरा
उसका भी
भोजन दो तो और बढ़ता जाता है
भोजन रोका नहीं जा सकता
जीने का अनिवार्य तत्व जो है यह

इसके साथ जीना होगा
यह चिकित्सक बताता है
खाना दो तो बढ़ता जाता है
चिकित्सक कहता है
उसके साथ जीना होगा
या
उसे चीर-फाड़ कर
निकालना होगा

कृमि अभी जीवित है
लगातार बढ़ रहा है
पुष्ट हो रहा है
उसे खाना मिल रहा है।

अकेला

निर्वात ही रहा वहाँ
सब कुछ दूर
चाँद-तारों की उपस्थिति मात्र
दृष्टि का विस्तार था अवश्य, पर खोई सी
कल्पना और सृजन विहीन
समाज विहीन, मनुष्य होने से दूर
सितारों के चमकने के बाद भी
अकेले में कुछ नहीं था
जीवितता विलुपत थी
सृजन और आशा भी डाँवाडोल
अकेले में जीवन नहीं था।

sanjay.alung@nic.in

सौमित्र
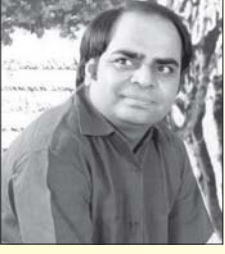
सौमित्र का पूरा नाम सौमित्र सक्सेना है। मौजूदा दौर के भारतीय वैज्ञानिकों में उनका गहरा मान है। मोतीलाल नेहरू नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नॉलॉजी, इलाहाबाद से मैकेनिकल इंजीनियरिंग में स्नातक एवं भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली से ऊर्जा अध्ययन में परा स्नातक हैं। शिकागो स्थित इलियान विश्वविद्यालय से आपने कैमिकल इंजीनियरिंग में पी-एच.डी. की डिग्री ली। चार वर्षों तक आप यूनिवर्सिटी ऑफ डेटन में पोस्ट डॉक्टोरल फेलोशिप के तहत कार्य करते रहे। आठ वर्षों के अमेरिका प्रवास के बाद तकरीबन चार वर्ष पूर्व भारत आये और बहुराष्ट्रीय कंपनी बैंगलोर में वैज्ञानिक की हैसियत से कार्य किया। इन दिनों साउदी अरब में वैज्ञानिक हैं।

क्वांटम भौतिकी

बिजली का करंट क्या होता है?
सोचता हूँ कि एक दिन
उन तारों में धुसूं
और पता करके आऊं।

ऐसे बाहर से तो छुआ है कई बार
झटके से अलग हो जाता है हाथ।

पता नहीं कौन देता है
वह स्पर्श और
कौन जला देता है त्वचा।

तारों के भीतर
ताम्बे और अलमुनियम के
पिंजरा-घरों में सूक्ष्म
कि जहाँ ना हवा मिले और
ना चला सके कोई नाव-
वहां किस सहारे से चलते हैं
वे इलेक्ट्रॉन?
क्यों चलते हैं?
क्यों आकर्षित हो जाते हैं?
यहाँ वहाँ की लुभावनी शक्तियों से?
और बह निकलते हैं,
सारा बल समेटकर अपना।

देखना चाहता हूँ कैसे लगते हैं वो यूँ
सामूहिक
हिटलर की आर्यसेना से
या फिर बंग्लादेश के बाढ़ से तबाह
किसानों से

शरण केम्पों को जाते!
मुझे मालूम है
मैं ढूंढ लूँगा उनमें
अपने कुछ साथी पुराने
यूँ वो होंगे भी वहीं
जहाँ थे वो
सृष्टि के आरंभ या निरंतरता के समय।

ऐसे में
उस दुष्ट का भी ख्याल आयेगा
जो खुला छोड़ देता है
नंगे तार
इतनी पुरानी वायरिंग के बिना
कोई टेप चिपकाये
और टपक गिरूंगा मैं कहीं से कहीं भी
किसी झोपड़ी के बल्ब के पास
या ए-सी की ठंडी हवा के नजदीक
किसी टेलीविजन की कोंख से
कि जिसमें चलचित्र हो उनका
जिनसे चकित रहता हूँ मैं
हमेशा
वैसे ही।

बिजली चले जाने पर
हो सकता है कि
ठिठक जाऊं मैं अधर में
अपने पिंड की खोहों में
भटकूँ
अस्तित्व की संभावनाओं के बीच
कभी-कभार
अंतर्ध्यान होते हुए भी।

saumitra.saxena@gmail.com
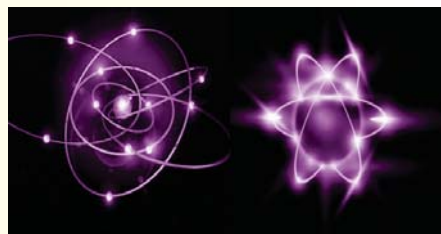
प्रदीप मिश्र

युवा कवियों में प्रदीप मिश्र एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने अपनी कविता का आधार विज्ञान को बनाया। उन्होंने विज्ञान विषयक कई महत्वपूर्ण कविताएं लिखी जिनमें विज्ञान की सूत्रात्मकता और इबारत का समावेश देखने को मिलता है। प्रदीप का काम विज्ञान की थ्योरिकल पोएट्री के क्षेत्र में खासा चर्चित है। प्रदीप मिश्र मध्यप्रदेश के इंदौर शहर में रहते हैं

हमारे समय का विज्ञान-एक

सदियों तक सूरज डूबने के बाद
रोशनी चाँदनी और चाँद से आती रही
अमावस्या की काली रात में भी
रोशनी होती थी
जुगनुओं की पूंछ से चिपकी
सब कुछ दिखाई देता था
अँधेरे में भी

अचानक एक दिन मनुष्यों ने
आग पैदा कर ली
और लगा कि आग ने
अँधेरे को जलाकर राख कर दिया

फिर लट्टुओं ने तो
सूरज की जरूरत ही खत्म कर दी
अंधेरे के खिलाफ
विज्ञान की यह
सबसे बड़ी जीत थी

विज्ञान को अपने हृदय से चिपकाए
हम ललकार रहे थे अँधेरे को
और वह दुम दबाए खिसक गया था
पृथ्वी के बाहर

पृथ्वी के बाहर
पृथ्वी के छोर पर खड़े हम
तल्लीन थे विजय उत्सव में

और विज्ञान हमारे हाथ से छूटकर गिर गया
अंतरिक्ष में कहीं
छूटकर गिर गया या उसका अपहरण हो गया
इस पहेली को इतिहास के संग्रहालय में
रख दिया गया है सुरक्षित

यह भी सुनिश्चित कर दिया गया है कि
विकास की डुगडुगी पर वे ही नाच सकते हैं
जिनके वर्तमान और भविष्य का कोई
इतिहास नहीं होगा।

हमारे समय का विज्ञान-दो

विज्ञान ने
खेल-खेल में
परीक्षण कर लिया
परमाणु बम का

विज्ञान ने
बात-बात में
तैयार कर दिया
संहारक हथियारों का ज़खीरा

विज्ञान ने
जिद-जिद में
बढ़ा दिया तापमान
दक्षिणी ध्रुव का

विज्ञान ने अभ्यास-अभ्यास में
खड़ा कर दिया
आँकड़ों का प्रतिसंसार
जिसमें झूठ
ऑक्सीजन की जगह होती है
विज्ञान ने
जिज्ञासा-जिज्ञासा में
बदल दिया रोबोट ने हमें
जिसका रिमोट
धनाढ्यों के हाथ में थमा दिया

हम चूक गए यह समझने में कि
हमारा प्रिय विज्ञान तो
छूट कर गिर गया था
अंतरिक्ष में कहीं।

mishra508@gmail.com

राघवेन्द्र तिवारी

वैज्ञानिक दृष्टिसंपन्न राघवेन्द्र तिवारी देश के विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छपते रहे हैं। उनकी दो पुस्तकें प्रकाशित तथा रेखांकन जैसी विधा में भी वे पारंगत हैं। राघवेन्द्र तिवारी की रचनाओं में वैज्ञानिकता अपनी पूरी प्रामाणिकता दर्ज होती है। भोपाल में निवास कर रहे राघवेन्द्र तिवारी विज्ञान अनुरागी और अच्छे अध्येता हैं।

सिर्फ दस ख़रब पेड़ चाहिए

यह परिवर्तन जलवायु का
बहुतसारी कुशंकाएँ घेरती हैं
इस वाली जैवविविधता को
-अब हमें आ पड़ी जरुरत
दस ख़रब पेड़ों की
फिर अकेली ओजोन की
इस परत में भी,
नहीं तो
फिर कई कई छेद होंगे
कई लोगों की समझ में
कई भेद होंगे

कार्बन से मुक्ति कैसे मिल सकेगी
ग्रीनहाउस गैसों में कटौती करनी होगी
लगभग अस्सी प्रतिशत
कार्बन से मुक्ति कैसे मिल सकेगी
बस यही अब उपाय शेष है
लगाओ दस ख़रब पेड़
यही धरती का आदेश है
सोख सकेंगे जो कि
आठ सौ तीस अरब टन कार्बन डाईऑक्साइड
आखिर पच्चीस वर्ष के
प्रदूषण का होता है कुछ मतलब

जलवायु परिवर्तन से जैव विविधता में
आ रहे बदलाव
जीवजंतु तो क्या मछलियां तक
बदल रही हैं अपना स्वाभाव

तो आइये हम ये बीड़ा उठायें
और कम से कम दस पेड़ लगाएं

पेड़ सभ्यता की सुरक्षित और जागरूक मूरत है
हमारे देश के दस प्रतिशत हिस्से में,
और पेड़ हों ये जरुरत है
तभी तापमान स्थिर होगा
हमारी खुशियों का आगमन
वैसा ही फिर होगा

हम भले ही कितने अनजान हैं
पर सच मानिये
वृक्ष हमारी ही संतान हैं
इस की एक कहावत की
है आज भी शान
एक वृक्ष दस पुत्र समान

तभी मिल सकेगी
कार्बन डाई ऑक्साइड से मुक्ति
हमें करनी होगी सही अर्थों में
वनभक्ति।

raghvendra53tiwari@gmail.com

किशोर दिवसे

पेशे से पत्रकार किशोर दिवसे ने पिछले दशकों में विज्ञान से संबंधित कई लेख और कविताएं लिखीं हैं जो यत्र-तत्र प्रकाशित हुई हैं। विज्ञान विषयक उनकी एक फुटकर गद्य की किताब प्रकाशित है जिस पर पर्याप्त चर्चा भी हुई है। किशोर दिवसे इन दिनों पुणे में रह रहे हैं

सुन रहे हो आर्किमिडीज

सीने पर रखकर अपने
साइंस की किताब मैं
नींद के आगोश में गुम
सपनों के सागर में
उछाल मारती लहरों ने
जल सतह पर लाया मुझे

तट पर अवचेतन मन के
खड़ा था आर्किमिडीज
हाथ हिलाया मुझे देखकर
सोच भरी मुस्कान के साथ
मेरे ओठों पर आया स्मित
और लग गया मैं सोचने
आखिर साइंस का स्टूडेंट
करेगा विज्ञान से गलबहियां
जीवन भर अपने
दीगर फलसफ़ों के उहापोह भरे
लबादों को नोंच -नोंचकर

देखकर आर्किमिडीज के नेत्र
सजल ,सरल और तरल
सोचने लगा था मैं एकबार
आर्किमिडीज का सिद्धांत
जिसे मैंने पढ़ा था-
नौंवी की विज्ञान कक्षा में

किसी भी तरल माध्यम में
उत्प्लावन बल जो लगता है
किसी भी वस्तु पर
वह बराबर होता है
विस्थापित तरल भार के
जिसे किया था उस वस्तु ने!

और यकायक
मेरी आँखों के सामने
तट पर खड़ा आर्किमिडीज
निकलता सा नजर आया
अपने उस बाथ टब से
नंगा...मारे ख़ुशी के पागल
गूंजने लगा था कानों में मेरे
यूरेका यूरेका यूरेका!

आज अचानक कम्प्यूटर स्क्रीन पर
देखा मैंने
किसी ने की मसखरी
आर्किमिडीज के सिद्धांत से
बना ली 'प्रिंसिपल की पैरोडी'
अपने इस फॉर्मूले के साथ

जब दिल पूरी तरह से
या आंशिक तौर पर
प्यार में डूब जाता है
किसी भी लड़के/लड़की के
तो पढाई में हुआ नुकसान
उसकी याद में बिताये
समय के बराबर होता है
(आपेक्षिक घनत्व का सिद्धांत)
अरे ओ छैल छबीलों
रोमियो और जूलियटो
छद्म और पाखण्ड छोड़
समझो ज़रा विज्ञान को!

यूरेका यूरेका कहकर
बाथटब से निकला था
नंगे बदन जब आर्किमिडीज
कौन जानता था
क्यों बहते रहते हैं
लकड़ी के लट्ठों के गट्ठर

नदी/तालाब के जल पर!
कैसे तैर लेते है हम
समंदर के सीने पर अलमस्त
तैरते जहाज और नौकाएं
क्यों नहीं हैं डूबते
उन लहरों के आगोश में!

तैरने या नौकायन के वक्त
या दौरान जहाजी सफ़र के
लोग करने लगते हैं याद
हे भगवान... हे भगवान!
क्या किसी ने किया स्मरण
वैज्ञानिक आर्किमिडीज का!
जिसने समझाया था
कैसे सीखा था तुमने
कुँए, नदी, तालाब
या समंदर की मचलती बाहों में
तैरना-तुम नहीं डूबोगे
जब तक आर्किमिडीज
तुम्हारे साथ है!

और अब आप सब भी
गुनो,समझो इस बात को
तुम्हारे अपने दिल की बात
एक बार फिर कह दी है मैंने
जो अक्सर भुला देते हैं सब
सुन रहे हो आर्किमिडीज!

(यूरेका का अर्थ होता है 'मुझे मिल गया, मुझे मिल गया!')

kishorediwase0@gmail.com

मोहन सगोरिया

मोहन सगोरिया 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' के संपादन से संबद्ध हैं। इस नाते विज्ञान लेखन से उनका रोज साबका पड़ता है। इधर उन्होंने वैज्ञानिक दृष्टिसंपन्न कविताएं लिखीं हैं तथा कुछ विज्ञान लेख प्रकाशित भी हुए हैं। मूलतः वे कवि हैं और उनके दो काव्य संग्रह प्रकाशित हुए हैं। कुछ शासकीय और संस्थानिक सम्मान और पुरस्कार उन्हें प्राप्त हैं।

एक क्लिक में

एक क्लिक में
खुलता है संसार
सर्च तो कीजिए जनाब!
जागिए भला
ई-मेल, मेप, न्यूज, आरकुट,
ट्रांसलेट और
... मोर-मोर

इतिहास से लेकर राजनीति तक
और दर्शन से संस्कृति
धर्म से विज्ञान
बस एक क्लिक में
जान लेंगे सब कुछ

यह भी जान लेंगे
कि एक क्लिक में
सब कुछ जान लेने जैसा नहीं

यह कितना अचरज भरा
और ख़तरनाक है कि
नहीं रही हमारी निजता अब हमारी
खुल रही वह दिन-ब-दिन
हर एक क्लिक पर
जैसे ब्रह्माण्ड खुलता जा रहा
परत-दर-परत

बस एक क्लिक में नहीं खुलता तो प्रेम
मन की गाँठें नहीं खुलतीं एक क्लिक में
अलबत्ता, चैटिंग हो सकती है
पर एक शंकालू और जासूसी भाव
दीमक-सा पनपता जाता है भीतर
मैं पूछता हूँ जनाब
क्या नींद आ सकती है एक क्लिक में?

खुलने को तो मस्तिष्क सारा
न खुलने को नाजुक पलकें
और वह भी नहीं खुलता जो
उँगलियों के इशारे पर खुलता है
क्लिक ...क्लिक।

रोबोट

आदमी अपने बनाए हुए
रोबो को गौर से देख रहा है
जो बगैर आना कानी
दिन भर बजाता रहा हुकुम

रोबोट अभी-अभी कमर में आया है
उसने आदमी को दिया है लेंस जैसा कुछ
जैसे व्यास ने दी थी दिव्य दृष्टि संजय को

अब रोबोट ने इजाजत ली है आदमी से
और थोड़ा गतिशील है, स्वतंत्रता से

असने अपनी दोनों हथेलियों की पकड़
अपनी ही गर्दन पर मजबूत की है
और एक कड़ाक के साथ ही
धड़ से अलग कर दिया है सिर

फिर एक पंच देकर खोपड़ी तोड़ दी उसने
वह देख रहा है कि खोपड़ी के किस हिस्से में
दिमाग है जिससे वह आदमी हो सके

अब रोबोट आदमी के हाथ से
अपना लेंस वापस लेना चाहता है

आदमी देख रहा है
दिमाग तलाशते हुए रोबोट को।

mohansagoriya1974@gmail.com

प्रतिभा गोटीवाले

प्रतिभा गोटीवाले मूलतः कवि हैं किन्तु उन्होंने पिछले दिनों जो लेखन किया है उससे यह साफ जाहिर हुआ है कि वे कोरी भावुकता में पगी लेखिका नहीं हैं बल्कि एक गहरी वैज्ञानिक दृष्टि उनके लेखन में दिखती है। कतिपय वे अपने लेखन में तकनीकी टूल्स का इस्तेमाल भी करती हैं। यही कारण है कि उनका लेखन विज्ञान लेखन के बहुत करीब लाता है। प्रतिभा इन दिनों भोपाल में रहकर स्वतंत्र लेखन कर रही हैं।

ज्योमिति

बहुत सालों के बाद बनाते हुए अपना बायोडाटा
मैं एक उलझन से गुज़रती हूँ, क्या लिखूँ?

समय की रेखा को काटते हुए चलना था
और सफ़र विपरीत धाराओं का था
अपने आपको बचा लेने की जद्दोज़हद में गुज़रा समय
अब बंजर द्वीपों-सा उभर आया है आँखों में

कागज़ पर कलम टिकाते ही
अलग-अलग कोणों से घूरती हैं कुछ जगहें मुझे
कुछ भुजाएँ टोहती हैं बार-बार,
झरते हैं कुछ बिन्दु यहाँ-वहाँ

मैं इन सबसे ध्यान हटाकर
एक बड़ा-सा वृत्त बनाती हूँ कागज़ पर
बिल्कुल एक गोल फूली हुई रोटी जैसा...
अब मेरे बायोडाटा में है गोल-गोल रोटियाँ

तरह-तरह की दालें और लज़ीज खुशबूदार सब्जियाँ
हालाँकि, मुझे ज्यामिति के सभी आकारों से प्रेम था।

minalini@gmail.com

शुचि मिश्रा

विगत दो-तीन वर्षों में जिन विज्ञान लेखकों ने तेजी से अपनी पहचान बनाई है उनमें शुचि मिश्रा का नाम जरूरी तौर पर शुमार होता है। उनके कुछ विज्ञान लेख देश की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। शुचि का कविता के प्रति गहरा रुझान है। 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' में शुचि नियमित रूप से प्रकाशित होती रही हैं। वे उत्तरप्रदेश के जौनपुर जिले में रहती हैं।

स्टीफन हॉकिंग ने कहा और सुना सारी दुनिया ने

जी हाँ, स्टीफन हॉकिंग ने कहा
अपनी ऐसी जुबान से
जो बुदबुदा सकती थी बस
अंगुलियों के इशारे से
पलकों के झपकने से
मन से कहा बरास्ते मस्तिष्क

सुपर कम्प्यूटर से
एडवांस टेक्नॉलॉजी के माध्यम से
स्टीफन हॉकिंग ने कहा,
वह जुबां से कह नहीं सकते थे
किंतु इतना अचरज फैला है ब्रह्मांड में
कि चुप रह नहीं सकते थे

अपनी चुप्पी तोड़ते कहा उन्होंने
कि ईश्वर ने नहीं रचा या खोजा ब्रह्मांड
गुरुत्वाकर्षण के कारण शून्य से
विराट में अवतरित हुआ यह
स्पेस और टाइम यह परिणित होगा
ब्लैक होल में अंततः

स्टीफन हॉकिंग ने कहा जो अचरज भरा
कि प्रकृति की घटनाओं को
देखें-समझें-सुनें-गुनें
इस गुनने के लिए
विज्ञान के नियम पर्याप्त नहीं
तलाशने-खोजने होंगे
अन्य नियम और ग्रह भी

ग्रह जो धरती की तरह माकूल हो
कि कभी भी नष्ट हो सकती है धरा
मनुष्य के अस्तित्व को
बचाए रखना होगा
जब तक दूसरी पृथ्वी
विकसित ना हो जाए
जैसे यह पृथ्वी बनी है महाविस्फोट से
करना होगा हमें एक विस्फोट विचारों का

फैलाना होगा अपने विचारों को
ज्यों फैल रहा ब्रह्मांड

स्टीफन हॉकिंग ने कहा
जब तक पृथ्वी और पृथ्वी जैसे पिंडों की संभावना है
बनी रहेगी जीवन की भी, मनुष्य की

संभावना है हर कहीं
जीवन के होने की
दूसरे-दूसरे ग्रहों पर कहीं

चाहें कहें एलियन
लेकिन उनका जीवन
भिन्न ही होगा,
खतरनाक होगा उनसे संपर्क करना
अपने अस्तित्व और विस्तार के लिए
कर सकते हैं वह आक्रमण हम पर

स्टीफन हॉकिंग ने कहा कि
चलना जीवन है

और चलते चले जाने के पथ पर

अक्षमता नहीं है कोई बाधा
स्टीफन हॉकिंग ने कहा कि
बाधाओं के पार मंज़िल है

स्टीफन हॉकिंग ने कहा
और उसे साबित भी किया
जब सुना उन्होंने
डॉक्टर्स के मुँह से
कि हो गई है
एमीयोट्रोफिक लैटरल सीरोसिस बीमारी
बमुश्किल रह सकेंगे दो-तीन वर्ष जीवित
तब दिखाई स्टीफन हॉकिंग ने
जिजीविषा
जिया दीर्घ जीवन
किए वे सब काम
जो कर न सके स्वस्थ मनुष्य-वैज्ञानिक

दरअसल मन-मस्तिष्क से स्वस्थ रहे
जीवन भर स्टीफन हॉकिंग
उन्होंने वह सब कहा
जो मस्तिष्क से मस्तिष्क तक पहुँचता था
और दिल से दिल तक

यह सब उन्होंने बिना आवाज के कहा
और बग़ैर जुबान के, अंगुलियों के इशारे से
पलक झपकते हुए कहा
जिसे हम सबने सुना
और जो कहा उसे समझने में
पलक झपकने की देर न लगी।

shuchimishrams@gmail.com

अब युद्ध भी हो गए हैं हाईटेक

डॉ. विनीता सिंघल

विगत दिनों डॉ. विनीता सिंघल का आकस्मिक निधन हो गया। वे 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' की नियमित विज्ञान लेखिका थीं। डॉ.विनीता सिंघल ने विज्ञान के अलग-अलग विषयों पर रोचक और सुबोध लेखन किया है। वे जीव विज्ञान में डी-लिट थीं और विज्ञान लोकप्रियकरण में उन्होंने एम.फिल किया था। विज्ञान लेखन और उसके प्रसार-प्रचार में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। लगभग तीन देशकों तक विज्ञान प्रगति, साइंस रिपोर्टर आदि विज्ञान पत्रिकाओं के संपादन से सम्बद्ध रहीं। उनके लेखन संसार बहुत वृहत है जिसमें लगभग चालीस किताबें और लगभग सात सौ मौलिक लेख प्रकाशित हैं। आपने बीस से अधिक पुस्तकों का संपादन और अनुवाद किया।

उनके आकस्मिक निधन पर 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' और आईसेक्ट परिवार भावभींनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है।

आए दिन कश्मीर में होने वाले आतंकवादी हमलों को भले ही कायरतापूर्ण हमलों की संज्ञा दी जाए लेकिन आतंकवादियों द्वारा प्रदर्शित तैयारी, चपलता और क्षमता वही होती है जिसे अभी तक सिपाहियों की धरोहर कहा और समझा जाता था। वे न केवल घातक हथियारों से लैस होते हैं बल्कि पूरी तरह प्रशिक्षित भी होते हैं। उनके द्वारा प्रदर्शित उच्च स्तरीय कमांड और नियंत्रण, उत्तरजीविता, स्थितिगत जागरूकता, मारक क्षमता, गतिशीलता और प्रशिक्षण, उनके प्रतिद्वन्द्वी पुलिस बल या आतंकविरोधी दस्ते से किसी भी तरह कम नहीं होता।

यद्यपि ऐसी क्षमता की आवश्यकता जन-जीवन की रक्षा करने वालों (जैसे कि पुलिस और पैरामिलिट्री बल) को है जिससे वे आज के आतंकवादियों द्वारा फैलाये जा रहे आतंकवाद और उनके विध्वंसक कारनामों का मुकाबला कर सकें। इसके लिए जरूरी है कि सैन्य बलों को अत्याधुनिक तकनीकियों से सुसज्जित किया जाए। इसीलिए भविष्य के सिपाहियों को आधुनिकतम युद्ध कौशल का प्रशिक्षण दिया जा रहा है और उनकी सुरक्षा के इन्तजाम किये जा रहे हैं। सेना के साथ-साथ पुलिस बलों और आतंकवाद रोधी दस्तों की ओर भी ध्यान दिया जा रहा है।

प्रत्येक सिपाही को आधुनिकतम बनाने और उसकी क्षमताओं को बढ़ाने का पहला विचार पिछली शताब्दी के अन्तिम दशक में अमेरिका में आया था। मुख्य प्राथमिकता थी घातकता, स्वयं सुरक्षा, उन्नत कमांड और नियन्त्रण। पहली बार, सैनिकों के लिए ऐसे उपकरण बनाने के बारे में सोचा गया जो अपने आप में सम्पूर्ण हों बिल्कुल किसी 'रोबोकॉप' की तरह। जून 2007 में, अमेरिका ने अपने आधुनिक सिपाहियों जिन्हें 'लैंड वारियर एंड माउंटेड वारियर सिस्टम' का नाम दिया गया है, को पहली बार ईराक के मुकाबले के लिए उतारा था। आज भारत की स्थिति यह है कि एक तरफ पाकिस्तान आतंकी वार कर रहा है तो दूसरी तरफ चीन आंखें दिखा रहा है। कश्मीर में रोज सैनिक देश की रक्षा में शहीद हो रहे हैं। हालांकि भारत ने सर्जिकल स्ट्राइक द्वारा पाकिस्तान को बता दिया है कि उसमें उनके घर में घुस कर मारने की क्षमता है। ऐसे अभियानों में सफलता पाने के लिए जरूरत होती है उच्च टेक्नॉलॉजी की। आज हमारे पास ऐसी अनेक प्रौद्योगिकियाँ हैं जो युद्ध की विकट परिस्थितियों में हमारी सहायता कर सकती हैं।

शारीरिक सुरक्षा के लिए

भविष्य में सिपाहियों को नये प्रकार के कपड़ों, नये हेल्मेट, नये गॉग्ल्स की जरूरत है। कहने का तात्पर्य यह है कि उन्हें सिर से लेकर पैर तक बिल्कुल एक नया रूप देने की जरूरत है। सिपाहियों को विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों और खतरों में सुरक्षित रखने के लिए जिस तरह के कपड़ों की जरूरत है, उनमें बेहतर आराम, अधिक गतिशीलता, दुश्मन से अधिक सुरक्षा, मौसम से सुरक्षा,

हल्का भार और कम कीमत जैसे गुण होने चाहिए। गोली के प्रभाव से उत्पन्न ऊर्जा को तेजी से खत्म करने की क्षमता में सुधार की जरूरत है। इसके अलावा, इस पर आग, मौसम, पानी और रसायनों का भी कम से कम प्रभाव होना चाहिए। एक अन्य सबसे प्रमुख आवश्यकता है इसका जटिल मानव शरीर रचना के अनुसार होना जिसमें कठिन से कठिन परिस्थिति में भी सुरक्षा प्रदान कर सके।

पायलेटों के लिए एंटी जी सूट

एयर शो में लड़ाकू विमानों द्वारा किये जाने वाले करतब हमें हतप्रभ कर देते हैं। भारतीय वायुसेना में शामिल लड़ाकू हवाईजहाज जैसे F16, मिग, जगुआर, Su30, हॉक और एल.सी.ए. तेजस बहुत ऊंचाइयों पर उड़ने में सक्षम हैं जहाँ ये पराध्वानिकी गति से उड़ते हैं। वायुसेना के फाइटर पायलट इन पर ही युद्धाभ्यास करते हैं। इसलिए फाइटर पायलेट बनना सरल नहीं है। लड़ाकू विमानों के पायलटों को अनेक पर्यावरणीय और प्रचालन तनावों को झेलना पड़ता है। इसके अलावा उन्हें पृथ्वी के गुरुत्व बल का भी सामना करना पड़ता है। युद्धाभ्यास के दौरान वायुयान के एक साथ ऊपर जाने या नीचे आने के समय, पायलट का शारीरिक भार कई बार, कई गुना अधिक हो जाता है और सारा खून शरीर के निचले भाग (टाँगों) में जमा होने लगता है। बढ़ते भार के कारण हृदय भी सही ढंग से काम नहीं करता। परिणाम स्वरूप, सिर और आँखों तक रक्त की आपूर्ति ठीक से नहीं हो पाती। इसका पहला प्रभाव आँखों पर और फिर मस्तिष्क पर होता है। प्रारम्भिक अवस्था में, पायलट को धुँधला दिखाई देने लगता है। यह अवस्था 'ग्रे आउट' कहलाती है। यदि इसके बाद भी रक्त की आपूर्ति और कम होती जाती है तो पायलट को दिखना और भी कम हो जाता है। ये अवस्था 'ब्लैक आउट' कहलाती है। हालाँकि पायलट अभी संज्ञान की अवस्था में होता है लेकिन अगर गुरुत्व बल और बढ़ता है तो मस्तिष्क तक रक्त की आपूर्ति न होने के कारण पायलट अपना होश खो बैठता है। यह अवस्था G-LOC अर्थात् जी इंड्यूस्ड लॉस ऑफ कॉन्शसनैस कहलाती है। यह अवस्था पायलट और वायुयान दोनों के लिए ही घातक सिद्ध हो सकती है।

पायलटों में गुरुत्व बल को सहने की क्षमता बढ़ाने के बहुत से तरीके हैं। इनमें से ही एक हैं एंटी जी सूट। सबसे पहले पायलटों के लिए एंटी जी सूट की आवश्यकता 1930 के दशक में अनुभव की गयी थी और अगले दशक में इस दिशा में काफी कुछ काम किया गया। सबसे पहला एंटी जी सूट 1941 में विल्बुर आर. फ्रेंक्स ने यूनिवर्सिटी ऑफ टोरॉन्टो के बांटिंग एंड बेस्ट इंस्टीट्यूट में विकसित किया था। पारम्परिक एंटी जी सूट, फ्लाइंग सूट के ऊपर पहनी जाने वाली एक कसी हुई ट्राउजर होती है जिसमें फूलने वाली थैलियाँ (आमतौर से पाँच) होती हैं जो दबाव बढ़ने पर एक एंटी जी वाल्व द्वारा फुला दी जाती हैं। ये थैलियाँ आपस में जुड़ी होती हैं और कपड़े की परत के नीचे लगी होती हैं। एंटी जी सूट फूलने के बाद शरीर के निचले हिस्सों पर दबाव डालता है और रक्त को वहाँ जमा नहीं होने देता। आरम्भ में विकसित एंटी जी सूट में पानी भरी थैलियाँ होती थीं लेकिन अब पानी की जगह हवा का प्रयोग किया जाने लगा है। हवा-भरे सूट, पानी-भरे सूट की जगह हल्के होते हैं।

जैसे-जैसे समय के साथ-साथ लड़ाकू विमानों की रफ्तार बढ़ती गयी, उसी के हिसाब से एंटी जी सूट भी नया आकार लेते गये। अब अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर फुल कवरेज एंटी जी सूट (एफसीएजीएस) बनाये जा चुके हैं जिनके सीमित अनुप्रयोग हैं। ईगल (एन्हान्स्ड एंटी जी लोअर एसेम्बली), स्टिंग (सस्टेंड टॉलरेंस और इन्क्रीज्ड जी), एफ.सी.ए.जी.टी.सी. (फुल कवरेज एंटी जी ट्राउजर्स) और एटैग्स (एडवान्स्ड टेक्नॉलॉजी एंटी जी सूट) उनमें से कुछ हैं।

बुलेटप्रूफ जैकेट

मुंबई में 26 नवम्बर, 2008 को आतंकवादियों का सामना करते हुए 14 पुलिसकर्मी शहीद हो गये और इसका सबसे बड़ा कारण यह बताया गया कि उनके पास एके-47 राइफल से निकलने वाली गोलियों को झेलने में सक्षम बुलेटप्रूफ जैकेट नहीं थी। किसी भी हथियार से निकलने वाली गोली की घातकता, उसकी गतिज ऊर्जा पर निर्भर करती है। उच्च्व गतिज ऊर्जा वाली गोली भले ही बुलेटप्रूफ जैकेट या आर्मर प्लेट द्वारा रोक दी जाए, लेकिन तब भी उसमें इतनी सामर्थ्य होती है कि उसके धक्के से आदमी जमीन पर गिर जाता है। तीव्र वेग और उच्च्व गतिज ऊर्जा की गोली यदि बहुत पास से चलाई जाए तब भी बुलेटप्रूफ जैकेट कई बार बेकार सिद्ध होती है। यही कारण है कि उच्च्व गुणवत्ता की 'कोफलर बुलेटप्रूफ जैकेट' पहने होने के बावजूद भी एन.एस.जी. कमांडो गोली की मार को नहीं सह पाते। यही कारण है कि आजकल जैकेट बनाने के पदार्थ पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। ये आमतौर पर उच्च्व दृढ़ता, और अपघर्षण प्रतिरोधी कपड़े से बनाई जाती हैं। यह कपड़ा सामान्यतया जलवायविक परिस्थितियों (गर्मी, वर्षा, नमी), कीटों, आग और पराबैंगनी विकिरण से बचाता है। जैकेटों के भीतरी आवरण पर विशेष ध्यान दिया जाता है जो नमी और पानी से बचाता है। आजकल सभी बुलेटप्रूफ जैकेट अतिरिक्त सुरक्षा के उद्देश्य से सिरैमिक प्लेटों से प्रबलित पी.यू. लेपित नाइलॉन या केवलर से बनी होती है। पुलिस वाले आमतौर से दो प्रकार की जैकेटों का प्रयोग करते हैं। कुछ जैकेटें तो एक विशेष कपड़े (केवलर) की बनी होती हैं जो छोटे शस्त्रों जैसे ९ एमएम पिस्टल से निकलने वाली गोली के प्रघात से बचाती हैं। ऐसी जैकेटों का भार लगभग 3 किलोग्राम होता है।

दूसरी प्रकार की जैकेटों में तीन परत होती हैं जिनका उपयोग सैन्य बलों में किया जाता है जिन्हें एके 47 राइफलों, एसएलआर या सेल्फ-लोडिंग राइफल और हल्की मशीनगनों आदि से सुरक्षा की जरूरत होती है। इनका भार लगभग 10 किलोग्राम होता है और ये बुलेट प्रूफ स्टील, सिरैमिक प्लेटों और पॉलीइथिलीन प्लेटों की बनी होती हैं।
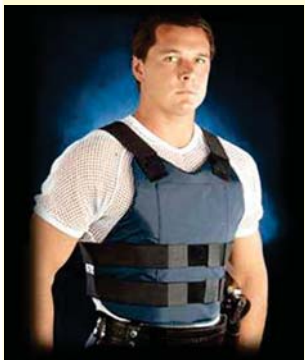
लम्बे समय से प्रयोग की जा रही स्टील और फाइबर ग्लास की बनी बुलेटप्रूफ जैकेट न केवल 10 किग्रा भारी होती हैं बल्कि युद्ध के समय गतिशीलता में भी बाधा डालती हैं। वैसे भी आज ऐसी बुलेटप्रूफ जैकेटों की जरूरत है जो एके-47 जैसी राइफलों से रक्षा कर सकें। भारत में, विज्ञान और प्रौद्योगिकी मन्त्रालय के अन्तर्गत नेशनल बैम्बू मिशन के अन्तर्गत बाँस से ऐसी जैकेट बनाने के प्रयास किए जा रहे हैं क्योंकि इसकी दृढ़ता सामर्थ्य बहुत अधिक होती है। वैसे भी भारत विश्व में सबसे बड़ा बाँस उत्पादक देश है इसलिए इससे भविष्य में कम कीमत, हल्की और उच्च प्रघात सहने वाली बुलेटप्रूफ जैकेट बनाने के प्रयास किये जा रहे हैं।

सुरक्षा प्रदान करने के लिए सिपाहियों के लिए ऐसे मल्टी-लेयर कपड़े बनाने के प्रयास किये जा रहे हैं जिसमें सबसे नीचे पहने जाने वाले कपड़ों में जीवाणुरोधी गुण होंगे जो उन्हें किसी भी प्रकार के संक्रमण से बचाएँगे। इसके ऊपर होगी जल-रोधी, मच्छर-रोधी, आग-रोधी रिपस्टॉम कपड़े की परत। इसके ऊपर होगी नर्म प्राक्षेपिक वस्ट जो घातक हथियारों से Level III । की सुरक्षा प्रदान करेगी। धड़, गर्दन, कमर और कूल्हे की सुरक्षा के लिए भी एक कठोर आर्मर होगा जो 5.56 एमएम और 7.62 एमएम की गोलियों से बचाएगा। आने वाले समय में बुलेटप्रूफ जैकेट बनाने के लिए एक स्टील से भी कठोर किन्तु हल्के फाइबर पर भी प्रयोग किये जा रहे हैं। वास्तव में, नैनोटेक्नॉलॉजी, कार्बन नैनो ट्यूब्स के रूप में एक बेहतर विकल्प प्रदान कर सकती है जिन्हें काफी लम्बा बनाया जा सकता है और कपड़े के रूप में बुना भी जा सकता है। ये कार्बन नैनो ट्यूब्स स्टील की अपेक्षा 200 गुना मजबूत होती हैं और इनका द्रव्यमान दस गुना कम होता है। इनमें असाधारण संचालक और तापीय गुण भी होते हैं। तरल आर्मर बनाने के लिए सिलिकॉन नैनों कणों के साथ एक निश्चित मोटाई तक द्रव भी भरा जा सकता है जो चाकू आदि के घाव से सुरक्षा प्रदान कर सकता है।

हैल्मेट

सदियों से सिपाहियों का ट्रेडमार्क बने 'हेल्मेट' को भी समय के अनुसार नया रूप देने की जरूरत है। इन्हें भी हल्का, उत्तम प्राक्षेपिक सुरक्षा प्रदान करने वाला और आरामदायक बनाने के प्रयास किये जा रहे हैं। पहली पीढ़ी के हेल्मेट जिन्हें आमतौर से 'स्टील पॉट' हेल्मेट कहते हैं, द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान विकसित किये गये थे। इन्हें १९८० के दशक के आरम्भ में अभिकल्पित केवलर फाइबर से बने पर्सोनेल आर्मड सिस्टम फॉर ग्राउंड ट्रूप्स (पी.ए.एस.जी.टी.) हेल्मेट में बदला गया। सबसे आधुनिकतम हेल्मेट है एडवांस्ड कमबाट हेल्मेट (ए.सी.एच.) जिसका प्रयोग अमरीकी सिपाही कर रहे हैं जिनका भार पहले प्रयोग किये जा रहे हेल्मेट की अपेक्षा एक किलोग्राम कम है और इनसे सिर की पूरी सुरक्षा के साथ-साथ देखने में भी कोई कठिनाई नहीं होती। भविष्य में सिपाहियों के लिए इससे भी कम भार वाले, पूर्ण रूप से सुरक्षा प्रदान करने वाले, कम गर्मी उत्पन्न करने वाले, देखने में कठिनाई न उत्पन्न करने वाले हेल्मेट बनाने के प्रयास किये जा रहे हैं।

भविष्य की सैन्य प्रणालियाँ : थर्मल इमेजिंग अर्थात् अँधेरे में देखने की कला

किसी भी युद्ध-क्षेत्र में सबसे जरूरी होता है शत्रु के ठिकानों का एकदम सही-सही पता लगाना। कारगिल और लेह जैसे दुरूह और दुर्गम स्थानों पर परम्परागत विधियों से इनका सही-सही पता लगाना बहुत कठिन कार्य है। अब ऐसे स्थानों के लिए थर्मल इमेजिंग जैसी उच्च टेक्नॉलॉजी बहुत सहायता कर रही है। थर्मल इमेजिंग का अर्थ है उत्सर्जित ताप का प्रतिबिम्बन कर शत्रु की स्थिति का सही-सही पता लगाना। मानव-शरीर से निरन्तर उष्मा का उत्सर्जन होता रहता है। इस उष्मा का संसूचन कर इसे मापा जा सकता है। रात्रि में शत्रु प्रायः बेखबर रहता है इसलिए थर्मल इमेजिंग के लिए रात्रि का समय बहुत उपयुक्त माना गया है। शरीर को भली-भाँति ढक लेने के बाद भी शरीर से ताप उत्सर्जित होता रहता है। सोते समय मनुष्य निष्क्रिय रहता है इसलिए उसके शरीर से उत्सर्जित उष्मा की मात्रा भी कम होती है। जहाँ एक सक्रिय मनुष्य द्वारा उत्सर्जित उष्मा को थर्मल सूचकांक के द्वारा 5000 फीट की ऊँचाई तक संसूचित किया जा सकता है। वहीं निष्क्रिय मनुष्य द्वारा उत्सर्जित उष्मा को केवल 2000 फीट तक ही संसूचित किया जा सकता है। किन्तु रात्रि में थर्मल इमेजिंग का कार्य प्रायः अबाधित रहता है। थर्मल इमेजर किसी भी वस्तु से निकलने वाले इन्फ्रारेड या अवरक्त विकिरणों (आई.आर.) का पता लगते हैं और इसके आधार पर वास्तविक प्रतिबिम्ब बनाते हैं। इन प्रतिबिम्बों को 'थर्मल इमेज' कहते हैं क्योंकि इनसे पृष्ठभूमि के विरुद्ध वस्तु के थर्मल प्रोफाइल का पता चलता है। थर्मोग्राफिक कैमरे से देखने पर गर्म वस्तुएँ, ठंडी पृष्ठभूमि के विरुद्ध स्पष्ट दिखाई देती हैं। यही कारण है कि इनके जरिए दिन या रात में मनुष्य या अन्य गर्म रक्त जीवों को सरलता से देखा जा सकता है। इनके इसी गुण के कारण इनका उपयोग मिलिट्री और सुरक्षा सेवाओं में किया जाता है।

थर्मल इमेजर में एक 'इन्फ्रारेड डिटेक्टर' होता है। यह एक अर्धचालक युक्ति होती है जो इन्फ्रारेड विकिरण का पता लगाकर उसे विद्युत संकेत में बदल सकती है। तापक्रम बढ़ने के साथ-साथ किसी वस्तु से निकलने वाली आई.आर. ऊर्जा बढ़ती जाती है। यह ऊर्जा पदार्थ के अभिलक्षणों पर भी निर्भर करती है। इसलिए, विभिन्न वस्तुओं से निकलने वाली आई.आर. ऊर्जा की मात्रा अलग-अलग होती है जिससे उन्हें पहचानना सरल हो जाता है। थर्मल इमेजर के निष्पादन पर जलवायविक परिस्थितियों जैसे कि वर्षा, कोहरा आदि का भी प्रभाव पड़ता है। आई.आर. डिटेक्टर दो प्रकार के होते हैं ठंडे और गर्म। ठंडे डिटेक्टर, फोटॉन डिटेक्टर होते हैं। ये अर्धचालक युक्तियाँ होती हैं। ये डिटेक्टर सामान्य तापक्रम पर बहुत

अधिक शोर उत्पन्न करते हैं इसलिए इनसे बेहतर काम लेने के लिए इन्हें ७७ज्ञ तक ठंडा करना पड़ता है। गर्म आई.आर. डिटेक्टर, ऐसे थर्मल डिटेक्टर होते हैं जिन्हें ७७ज्ञ तक ठंडा करने की जरूरत नहीं होती। ये छोटे, हल्के और कम विद्युत ऊर्जा लेने वाले थर्मल इमेजर, छोटी दूरी के अनुप्रयोगों के लिए उपयुक्त होते हैं। अब तक थर्मल इमेजर्स की तीन पीढ़ियाँ विकसित की जा चुकी हैं। इनका अधिकतर उपयोग मिलिट्री में युद्ध के दौरान निगरानी और टोह लेने के लिए किया जाता है। जमीन में बिछाई गयी बारूदी सुरंगों से निकलने वाली इन्फ्रारेड ऊर्जा के कारण, उनका भी पता लगाया जा सकता है। मिसाइल एप्रोच वार्निंग सेंसर्स के जरिए मिसाइलों का भी पता लगाना सम्भव होता है। देहरादून स्थित डी. आर.डी.ओ. की एक प्रयोगशाला इंस्ट्रूमेंट रिसर्च एंड डिवेलपमेंट एस्टेबलिशमेंट (आई.आर.डी.ई.) ने मिलिट्री और सिविलियन दोनों ही क्षेत्रों में उपयोग के लिए विभिन्न प्रकार के थर्मल इमेजर बनाए हैं :

- हेल्मेट माउंटेड थर्मल इमेजर कैमरा : इन्हें विशेष रूप से आग से बचाव कार्यों आदि के लिए बनाया गया है। थर्मल इमेजर कैमरा हेल्मेट में लगे होने के कारण फायर फाइटर के दोनों हाथ काम करने के लिए मुक्त होते हैं।
- हैंड-हेल्ड थर्मल इमेजर : बायनोकुलर युक्त एच.एच.टी.ई 12V की रीचार्जेबिल बैटरी के साथ लगातार तीन घंटों तक काम कर सकते हैं।
- टी-72 टैंकों के लिए कमांडर्स थर्मल इमेजर : भारतीय सेना के पास बड़ी संख्या में टी-72 टैंक हैं जिन पर टी के एन 3 लगे हुए हैं। टी के एन 3 कैमरा डिस्प्ले में एक डे साइट और आई.सी. ट्यूब आधारित नाइट साइट होती है। अब इस आई.सी. ट्यूब आधारित नाइट साइट को तीसरी पीढ़ी के थर्मल इमेजर से बदल दिया गया है। थर्मल इमेजिंग डिटेक्टर को नाइट फ्लाइंग हेलीकॉप्टर में लगाकर भी प्रयोग में लाया जाता है। विकसित देशों की सेनाएँ इस तकनीकी का प्रयोग वर्ष 1981 से ही कर रही हैं। अब भारतीय सेना में भी इसका प्रयोग प्रारम्भ कर दिया गया है।

लेजर रेंज फाइंडर बायनाकुलर

लेजर रेंज फाइंडर एक ऐसी युक्ति होती है जिसमें किसी वस्तु की दूरी का पता लगाने के लिए लेजर बीम का प्रयोग किया जाता है। आमतौर से लेजर रेंजफाइंडर का उपयोग उड़ान के दौरान किया जाता है जबकि एक लेजर पल्स को एक संकरी बीम में लक्ष्य की ओर भेजा जाता है और पल्स के लक्ष्य से भेजने वाले तक वापस आने में लगने वाले समय को माप कर दूरी का अन्दाजा लगाया जाता है। मिलिट्री रेंजफाइंडर 2 कि.मी. से 25 किमी. की दूरी तक के लिए काम करते हैं। इनमें कई बार बायनाकुलर या मोनोकुलर भी लगा होता है। जब किसी रेंजफाइंडर में मैग्नेटिक डिजीटल मैग्नेटिक कम्पास भी लगा होता है तो यह लक्ष्य की मैग्नेटिक दिगंश, ढाल और ऊंचाई (लम्बाई) भी बताने में सक्षम होता है। कुछ रेंजफाइंडर लक्ष्य की गति भी मापने में सक्षम होते

हैं। बल्कि कुछ रेंजफाइंडर तो मापे गये आँकड़ों को कम्प्यूटर में भी हस्तांतरित करने की क्षमता रखते हैं। कुछ स्थानों पर, उदाहरणार्थ कश्मीर की पहाड़ी घाटियों में प्रायः लक्ष्य का आकार बहुत छोटा होता है। इन पर प्रहार करने के लिए इनकी सही स्थिति ज्ञात होना आवश्यक होता है। इस कार्य के लिए उच्च टेक्नॉलॉजी का लेजर रेंज फाइंडर बायनाकुलर बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। इस बायनाकुलर का उपयोग करने के लिए दो कमांडो सैनिकों की आवश्यकता होती है। एक सैनिक के हाथ में ग्लोबल पोजीशनिंग सिस्टम (जी.पी.एस.) उपकरण का हैंड-हेल्ड सेट रहता है तो दूसरा सैनिक अपनी आँखों पर लेजर रेंज फाइंडर बायनाकुलर लगाए रहता है। ये इतने शक्तिशाली होते हैं कि इनसे पांच किलोमीटर दूर खड़े व्यक्ति का चेहरा भी साफ-साफ देखा जा सकता है। एक सिपाही इस उपकरण से प्राप्त लक्ष्य की दूरी एवं दिशा को प्लॉट करता है और वह लक्ष्य की स्थिति ठीक-ठीक बताने के लिए एक स्पॉटर (संकेत सिग्नल) फायर करता है जिसकी सहायता से तोपों (आर्टिलरी) की स्थिति में स्वतः संशोधन कर निशाना साधकर उन्हें नष्ट किया जा सकता है। ऑर्टिलरी कमांडर एक डिजीटल कम्युनिकेशन सेट के द्वारा संचार सन्देशों का आवश्यकतानुसार गूढ़लेखन-अगूढ़न (एनक्रिप्शन-डिस्क्रशन) कर अपने बेस पर भेजता रहता है ताकि शत्रु इन सन्देशों का अर्थ न समझ सके।

लेजर निर्देशित बम

शत्रु के भू-स्थित ठिकानों पर विमान से आक्रमण करने के लिए लेजर निर्देशित बम उच्च टेक्नॉलॉजी का एक अद्वितीय उदाहरण है। लेजर बीम प्रकाश की गति से चलती हैं और इसकी एक विशेषता यह है कि इसका किरण-पुंज अनन्त दूरी तक सीधा ही जाता है। साधारण प्रकाश की तरह झुकता नहीं है। परिणामतः, एक बार फायर करने के बाद लेजर से बचना असम्भव होता है। शत्रु लक्ष्य को लेजर किरण-पुंजों से आलोकित कर बमवर्षक विमान इन्हीं किरण पुंजों के सहारे बमों तथा रॉकेटों को निर्देशित कर उन्हें सीधा लक्ष्य की ओर प्रहार कर उन्हें ध्वस्त कर सकते हैं।

रात में उड़ने में सक्षम हेलीकॉप्टर

कारगिल जैसे अन्य दुर्गम ठिकानों पर जहाँ शत्रु ने अधिकार कर रखा हो, सैनिक टुकड़ियों को गुप्त रूप से उतारना एक जोखिम भरा कार्य होता है। इसके लिए प्रायः हेलीकॉप्टरों का उपयोग किया जाता है। दिन के उजाले में शत्रु की आर्टिलरी इनको मारकर गिरा सकती है इसलिए उच्च टेक्नॉलॉजी की सहायता से इन हेलीकॉप्टरों को रात में उड़ान भरने के योग्य बनाया गया है और पायलटों को उच्च टेक्नॉलॉजी पर आधारित इन उपकरणों की सहायता से रात में हेलिकॉप्टर उड़ाने का प्रशिक्षण दिया जाता है। यह प्रशिक्षण सिमुलेटर आधारित होता है ताकि ये हेलीकॉप्टर पायलट इस चुनौती भरे कार्य के लिए पूरी तरह पारंगत होकर अपना कार्य बखूबी कर सकें।

इमेज इंटेंसिफायर

कुछ वर्ष पहले तक शत्रु अधिकृत अपनी सैनिक चौकियों से शत्रु को भगाने के लिए बम-वर्षक विमानों को अधिकतर दिन में ही आक्रमण करना पड़ता था। इसके लिए इन विमानों को काफी नीची उड़ान भरनी पड़ती थी और कई बार वे शत्रु की आर्टिलरी फायर का निशाना बन जाते थे। किन्तु अब मिराज विमानों में उसके 'सामने की ओर देख पाने वाले रडार' की सहायता से रात्रि में भी आक्रमण कर पाना सम्भव हो सका है और इसमें बहुत सफलता भी प्राप्त हुई है। विशेष प्रकार के नाइट फ्लाइंग ग्लासेज तथा प्रतिबिम्ब की प्रतिछाया को अधिक स्पष्ट करने वाले उपकरण इमेज इंटेन्सिफायर युक्त हल्की विमान आरोहित मशीनगन की सहायता से भी इन ठिकानों पर गोलियों और राकेटों का सटीक एवं अचूक प्रहार कर पाना सम्भव हो सका है। इमेज इंटेंसिफयर ऐसी युक्तियाँ होती हैं जो कम प्रकाश में भी देखने में सहायता करती हैं। इनका उपयोग नाइट-विजन गॉगेल्स के साथ-साथ टेलीस्कोप आदि अन्य उपकरणों में भी किया जाता है। इमेज इंटेंसिफायर आस-पास के प्रकाश को इलेक्ट्रॉनों में बदलने के लिए एक फोटोकैथोड का प्रयोग करता है और फिर फोटोन में बदलने से पहले संकेत को प्रबल बना देता है। इनका उपयोग सबसे पहले द्वितीय विश्वयुद्ध के समय हुआ था। अब तक इनकी चार पीढ़ियाँ विकसित की जा चुकी हैं।

इलेक्ट्रॉनिक काउंटर-काउंटर मेजर

अपने विमानों को शत्रु की मिसाइलों एवं तोपों के प्रहार से बचाने के लिए जिस उच्च टेक्नॉलॉजी की सहायता ली जाती है उसे इलेक्ट्रॉनिक काउंटर-काउंटर मेजर कहते हैं। इन उपकरणों की सहायता से शत्रु द्वारा प्रस्तुत किये गये इलेक्ट्रॉनिकी अवरोधनों का अवरोधन कर अपने विद्युत चुम्बकीय वर्णक्रम का सफल उपयोग कर पाना सम्भव हो जाता है। ई.सी.सी.एम. इलेक्ट्रॉनिकी युद्ध का एक महत्वपूर्ण अंग है। सन् 1991 के खाड़ी युद्ध में पहली बार इसका सफल प्रयोग किया गया था और तब से प्रत्येक आधुनिक सेना में इसका उपयोग किया जाने लगा है।

संचार आधुनिकीकरण

यद्यपि प्रत्येक सिपाही एक नेटवर्क-केन्द्रित युद्ध प्रणाली का एक हिस्सा होता है और अपनी गतिविधियों को नियन्त्रित करने के लिए स्वतन्त्र होता है, वहीं वह एक मिशन का भी हिस्सा होता है। इसलिए, उसके लिए एक अच्छी, प्रभावी, अवरोध-प्रूफ और शोर मुक्त संचार सेवा जरूरी हो जाती है। सुरक्षात्मक हैडगियर के विकास और सिर में मानव संचार इनपुट की उपस्थिति के कारण, सभी प्रकार का संचार उन्नयन, हैडगियर आवश्यकताओं के अनुरूप होना चाहिए। सक्रिय शोर अपकर्ष प्रणाली, सर्किट के जरिए इलेक्ट्रॉनिक बातचीत, बहुत शोर के समय निष्क्रिय क्षीणन, एक या अनेक माइक्रोफोन, बहुनेटवर्क चयन, दीर्घकालिक विद्युत-स्रोत, क्लोज कम्बाट रेडियो और संचार परास भविष्य में सिपाहियों की अपेक्षा सूची में है। इसके अतिरिक्त, संचार केवल माइक्रोफोन-आधारित दूरस्थ संचार तक ही सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि इसमें सुनने योग्य बाह्य वार्निंग टोन सुनने की क्षमता भी होनी चाहिए। युद्ध के समय भली भांति काम करने के लिए, प्रणाली पर वर्षा, आर्द्रता, तरंगों और पानी के कारण उत्पन्न शोर आदि का प्रभाव नहीं होना चाहिए। संचार प्रणाली की व्यवस्था सुरक्षात्मक हैड गियर के साथ, उसी के अनुरूप अभिकल्पित की जानी चाहिए। इसे या तो हैड गियर के नीचे एक पट्टे के रूप में लगाया जाना चाहिए या फिर गर्दन में एक बैंड के साथ बाँधा जाना चाहिए। विभिन्न पोशाकों और सुरक्षात्मक गियर के साथ संचार का समावेश एक बहुत बड़ी चुनौती है।

आमतौर से संचार में व्यवधान की कठिनाइयाँ आती हैं। लेकिन आशा है कि भविष्य में सैनिकों को इन कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ेगा। फ्रीक्वेंसी बढ़ाकर या दूसरे नैट पर जाकर अवरोध को दूर किया जा सकता है। अन्तर्रोध को भी फ्रीक्वेंसी बढ़ाकर दूर किया जा सकता है लेकिन अधिकांश सुरक्षित नेटवर्क संचार में, एन्क्रिप्शन को सबसे बेहतर विकल्प माना जाता है। सेना में सारा डाटा कोडित या कूट रूप में स्थानांतरित किया जाता है जिसे रिसीवर सिरे पर पुनः डिकोड किया जाता है। इन सब उन्नत लक्षणों के साथ, सम्पूर्ण संचार प्रणाली का प्रयोग भी सरल होना चाहिए, जिसे बटन दबाते ही नियन्त्रित किया जा सके और जिसमें बिजली का खर्च भी कम हो। इसके अतिरिक्त समूची प्रणाली इतनी भारी भी नहीं होनी चाहिए कि वह सिपाही के लिए एक अतिरिक्त भार बन जाए जिसे उठाकर चलना ही कठिन हो जाए।

भारत का एफ-इन्सस (फ्यूचरिस्टिक इंफेंट्री सोल्जर एज ए सिस्टम) कार्यक्रम

एफ-इन्सस भारतीय पैदल सेना के सिपाहियों को आधुनिक हथियारों के साथ आधुनिकतम उपकरण जैसे संचार नैटवर्क और युद्ध क्षेत्र में तुरंत सूचना प्राप्त करने वाले उपकरण उपलब्ध कराने संबंधी कार्यक्रम है। यह विदेशों में चलाए जा रहे 'फ्यूचर सोल्जर' जैसे कार्यक्रमों का ही भारतीय रूप है जिसका उद्देश्य सैनिकों को अधिक घातक शस्त्रों से लैस करना, उन्हें पहले से कहीं अधिक सुरक्षा प्रदान करना और युद्ध में और भी गतिशीलता प्रदान करना है। इसका पहला चरण जल्दी ही पूरा किए जाने की योजना है जिसके अंतर्गत पैदल सेना के सिपाहियों को बहुपयोगी मॉड्यूलर वेपन सिस्टम से लैस किया जाएगा। इसके अलावा सैनिकों द्वारा उठाए जाने वाले भार में भी 50 प्रतिशत तक कमी लाने के प्रयास किए जा रहे हैं। भारतीय सुरक्षा वैज्ञानिकों का इरादा 2020 तक इस कार्यक्रम के अंतर्गत संपूर्ण 465 इंफेंट्री और पैरामिलिट्री बटालियनों को आधुनिक रूप देने का है। इसका विस्तृत रूप कुछ इस प्रकार होगाः

हेल्मेट और वाइजर

हेल्मेट एक थर्मल सेंसर, वीडियो कैमरा, रासायनिक और जैविक सेंसर युक्त समाकलित युक्ति होगी। इसी प्रकार वाइजर या मुखावरण भी एक समाकलित युक्ति होगी जो हेड्स-अप डिस्प्ले मॉनीटर की तरह काम करेगी और यह 17 इंच कंप्यूटर मानीटर्स के समतुल्य होगी।

क्लोदिंग या यूनीफॉर्म

भविष्य में सिपाही की वर्दी बुलेटप्रूफ जैकेट सहित और बहुत कम भार वाली

होगी। भविष्य में जैकेट हल्की होने के अलावा सांस लेने में सुगम और जलरोधी भी होगी। ये नवीन परिधान उन्हें अतिरिक्त सामान ले जाने में सक्षम बनाएंगे और इन पर रासायनिक युद्धास्त्रों का प्रभाव भी नहीं होगा। वर्दी में लगे सैंसर न केवल सैनिकों के स्वास्थ्य को मॉनीटर करेंगे बल्कि तुरंत चिकित्सा भी उपलब्ध कराएंगे।

युद्धास्त्र

हथियारों की इस खेप में 5.56 एमएम, एक 7.62 एमएम की राइफल के साथ भारत में पहली बार निर्मित की जा रही नवीन 6.8 एमएम राइफल शामिल होगी। अंडर बैरल ग्रेनेड लांचर हवा में मार करने में सक्षम होगी। दूरी और दिशा बताने के लिए थर्मल वैपन भी इसमें शामिल होगा। ग्लोबल पोजीशनिंग सिस्टम से प्राप्त सूचना के आधार पर सैनिक सही वार करने में सक्षम होगा। इजराइल की सहायता से बनाई जा रही दो प्रकार की अगली पीढ़ी की इंफैंट्री राइफलें विकास की अवस्था में हैं।

कुछ अन्य उपकरण

सिपाही को एक ऐसा पामटॉप उपलब्ध कराए जाने की योजना है जिसकी सहायता से वह अन्य सिपाहियों से संपर्क कर सकेगा और उसे युद्ध क्षेत्र की वास्तविक स्थिति का ज्ञान होगा। इसके जरिए संदेशों का आदान प्रदान भी संभव होगा। भविष्य में सिपाही अपने आप में एक पूरा सिस्टम होगा, जहाँ उसे निर्णय भी स्वयं लेना होगा, लेकिन उसे कमांडर, कंट्रोलर, प्लानर और एक्जीक्यूटर से निरन्तर सम्पर्क भी बनाये रखना होगा। आधुनिक युद्ध के सम्पूर्ण नेटवर्क में वह एक टर्मिनल के समान होगा। मुकाबले को और भी प्रभावी बनाने के लिए इस सैनिक से जुड़े इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों में ग्लोबल पोजीशनिंग सिस्टम (जी.पी.एस.) और हाथ में स्टैंड एलोन लैपटॉप भी शामिल होगा। यह तो सच है कि सैनिकों के साज-सामान पर होने वाले खर्च में काफी बढ़ोतरी हुई वहीं दूसरी ओर इसका संतोषजनक पहलू यह भी है कि इससे सैनिकों की मृत्यु दर में भी कमी आई है। यही कारण है सभी बड़े बड़े देश भविष्य में ऐसी सैन्य प्रणालियां विकसित करने में लगे हैं जिससे हर सैनिक अपने आप में एक चलता फिरता सैन्य बल होगा। जिससे उसकी मारक क्षमता बढ़ेगी और वह अपनी सुरक्षा भी कर सकेगा।

जासूसी उपग्रह

16 मार्च, 1955 को पहली बार अमरीकी वायुसेना ने अधिकारिक रूप से एक ऐसा उपग्रह बनाने का आदेश दिया था जो अन्तरिक्ष में रहकर पड़ोसी देशों की सैनिक गतिविधियों पर नजभर रख सके। अक्टूबर 1957 में, रूस ने अपना पहला उपग्रह स्पुतनिक प्रक्षेपित किया था। जब से मनुष्य ने अन्तरिक्ष में अपने उपग्रह स्थापित किये हैं, अन्तरिक्ष भी एक युद्ध-क्षेत्र बन चुका है। अन्तरिक्ष की निम्न कक्षा में स्थापित विशेष प्रकार के उपग्रह जासूसी के कार्य में भी सहायता करने लगे हैं। ये उपग्रह शत्रु की सेना की सभी चालों की भली-भाँति चौकसी कर लेते हैं। उच्च टेक्नॉलॉजी की यह तकनीक भविष्य के युद्धों में भी महत्वपूर्ण रहेगी। अब तो भारत ने भी अन्तरिक्ष में अपना जासूसी उपग्रह स्थापित कर दिया है जो मौसम पर नजर रखने के साथ-साथ सीमा की भी चौकसी करेगा। रीसैट नामक यह उपग्रह प्राकृतिक आपदाओं की मैपिंग और प्रबन्धन के साथ-साथ राष्ट्र की सुरक्षा के लिए सीमाओं की निगरानी को भी बढ़ाएगा। इसरो ने 20 अप्रैल 2009 को सुबह पौने सात बजे आंध्र प्रदेश के श्रीहरिकोटा अंतरिक्ष केन्द्र से देश के पहले जासूसी उपग्रह रडार इमेजिंग सैटेलाइट (रीसैट) का सफल प्रक्षेपण किया। इज़राइल एयरोस्पेस इंडस्ट्रीज की मदद से बनाए बए इस उपग्रह से सुरक्षा एजेंसियों को देश की सीमाओं पर निगरानी करने में मदद मिलेगी।

तीन सौ किलोग्राम भार का यह रडार इमेजिंग सैटेलाइट भारत के स्वदेशी रॉकेट 'पोलर सैटेलाइट लांच वेहिकिल' (पीएसएलवी) के जरिए अंतरिक्ष में भेजा गया। हर स्थिति में काम करने में सक्षम इस रिमोट सेंसिंग एडवांस्ड इमेजिंग सैटेलाइट को पृथ्वी से लगभग 550 किमी. ऊपर स्थापित किया गया है। उपग्रह में लगे सिंथेटिक एपर्चर रडार (एसएआर) पेलोड में दिन, रात और हर तरह के मौसम, यहां तक कि घने बादलों के बीच भी तस्वीर उतारने की क्षमता है।

रीसैट-2 देश की सीमा पर निगाह रखने के साथ-साथ घुसपैठ व आतंकवाद निरोधक कार्यक्रमों के लिए भी मददगार साबित होगा। रीसैट का इस्तेमाल मानचित्र बनाने, प्राकृतिक आपदाओं पर नज़र रखने एवं समुद्रों के सर्वे में भी किया जायेगा। रीसैट बाढ़ व भूस्खलन जैसी प्राकृतिक आपदाओं के बारे में भी जानकारी देने में सक्षम है। रीसैट-2, जंगलों में बने कैंपों पर भी नज़र रखेगा। रीसैट-2 का जीवनकाल तीन वर्ष का है। उल्लेखनीय है कि अभी तक किसी भी भारतीय उपग्रह में यह खूबी नहीं है कि वह किसी भी मौसम एवं घने बादलों में भी देश की सीमाओं पर चौबीसों घंटे घुसपैठ और आतंकवाद निरोधी अभियानों पर नज़र रख सके।

विश्व के अधिकतर देश भविष्य में अपनी सैन्य क्षमताओं को बढ़ाने के लिए बहुत कुछ कर रहे हैं लेकिन आतंकवादी हमलों से यह भी सामने आ रहा है कि उनकी क्षमताओं को भी कम करके आँकना, बहुत बड़ी भूल सिद्ध होगी। अब समय आ गया है जब सैन्य बलों के साथ-साथ पुलिस बलों और आतंकविरोधी-दस्तों को भी आधुनिक हथियारों से लैस करना जरूरी है क्योंकि युद्ध अब केवल युद्ध क्षेत्र तक ही सीमित नहीं है बल्कि यह हमारे द्वार पर दस्तक दे रहा है।

vineeta_niscom@yahoo.com

❑❑❑

डॉ. संगीता चतुर्वेदी पिछले दो दशकों से विज्ञान लेखन कर रही हैं। विज्ञान और इलेक्ट्रॉनिक्स पर लिखे गए उनके लेख चर्चित व लोकप्रिय हैं जिनमें समय और कलैण्डर पर किए गए काम को रेखांकित किया जाता है। एनआईओएस, नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ ओपन स्कूल, नोएडा के साथ कम्प्यूटर कोर्सेस की पाठ्य सामग्री का लेखन आपने किया है। 'कम्प्यूटर एक परिचय'(संतोष चौबे) चर्चित पुस्तक का आपने ओडिया में अनुवाद किया है।
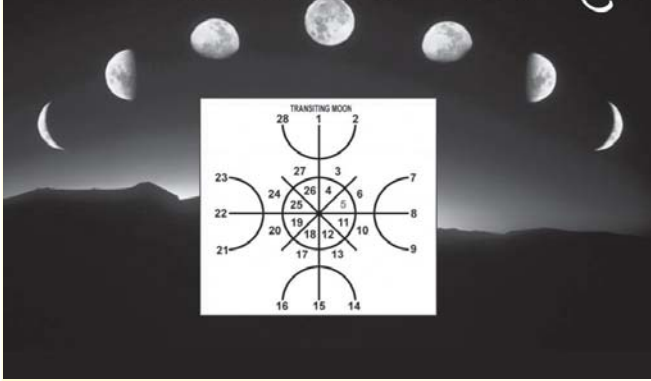
पहले समय में अधिकांश कैलेंडर्स चंद्र चक्र पर आधारित हुआ करते थे। इन कैलेंडर्स में एक वर्ष 12 चंद्र चक्रों से बना होता था। ये महीने कहलाते थे। चूंकि 12 चंद्र चक्र 1 सूर्य वर्ष के बराबर नहीं होते हैं अतः एक अतिरिक्त महीना समय-समय पर जोड़ा जाता था। मिस्र के लोगों ने पहला ऐसा कैलेंडर निकाला जिसमें एक वर्ष 365 दिनों पर आधारित था। इसे सूर्य वर्ष कहा जाता था। इसमें उन्होंने महीनों को चंद्र चक्र पर आधारित न करके पूर्ण रूप से अलग इकाई के रूप में रखा। एक वर्ष को 12 महीनों में विभाजित किया गया जिसमें प्रत्येक में 30 दिन होते थे। इस प्रकार कुल 360 दिन होते थे जिसमें 5 अतिरिक्त दिनों को जोड़कर दिनों की कुल संख्या 1 की जाती थी। 365 दिनों का कैलेंडर मिस्रवासियों द्वारा 4236 ई.पू. अपनाया गया था।

कालान्तर में यह पाया गया कि वास्तव में एक वर्ष में 365 1/4 दिन होते हैं। एक दिन का यह अतिरिक्त तिहाई भाग ही ऋतुओं में परिवर्तन का कारण माना जाता था। 238 ई.पू. में Pharaoh Ptolemy III जिन्हें इतिहास में Euergetes कहा जाता था ने इसमें सुधार करके हर चौथे वर्ष में कैलेंडर में एक दिन को जोड़ दिया था। दूसरा कैलेंडर था मेक्सिको की माया का कैलेंडर जो सूर्य कैलेंडर था और इसे 580 ई.पू. में खोजा गया था। यह अमेरिका में तैयार किया गया पहला ऋतु एवं कृषि आधारित कैलेंडर था। यह कैलेंडर मिस्र के कैलेंडर से अलग था। इसमें एक सूर्य वर्ष में 18 महीने होते थे और प्रत्येक महीना 20 दिन का होता था। इसके अंत में पांच दिनों का अनलकी समय जोड़ा जाता था जिससे यह वर्ष 365 दिनों का बन जाता था। प्रत्येक महीने का अपना नाम होता था और दिनों को 0 से लेकर 19 तक संख्या दी जाती थी। इस कैलेंडर के साथ-साथ एक धार्मिक कैलेंडर भी निकाला गया जिसे त्रवसापद कैलेंडर कहा गया। इसमें 13 महीने होते थे। प्रत्येक महीना 20 दिनों का होता था। प्रत्येक दिन का एक नाम होता था जो 1 से लेकर 13 तक की संख्याओं के साथ जोड़ा जाता था। tzolkin कैलेंडर में कुल 260 दिन होते थे।

जूलियन कैलेंडर

पहले के समय में रोम के लोगों ने एक चंद्र कैलेंडर की शुरुआत की जो काफी जटिल था और इसमें बहुत अस्पष्टता थी। मूलतः यह केवल 10 महीने लंबा था। (मार्च से दिसंबर तक) लेकिन जल्दी ही

सूर्य कैलेंडर

धार्मिक कैलेंडर Tzolkin

जूलियन कैलेंडर

जूलियन कैलेंडर करीब 11 मिनट लंबा माना गया जो कुछ शताब्दियों के बाद कई दिनों के अंतराल में बदल जाता था। 1502 में कैलेंडर में एक अन्य सुधार किया गया। जिसे पोप ग्रेगोरी XIII ने निर्धारित किया। इसमें कैलेंडर को ऋतुओं के अनुसार एडजेस्ट किया गया। इसके लिए गणितज्ञ क्रिस्टोफर क्लोवियस और खगोलविद- भौतिकविद ।सवलेपने स्पसपने की सेवाएं ली गईं। उन्होंने पाया कि जूलियन कैलेंडर की अतिरिक्त लंबाई की वजह से जो गल्तियाँ हो गई थीं उनकी कुल संख्या 10 दिन थी। अतः वर्ष को सही करने के लिए उन्होंने जूलियन कैलेंडर में से 10 दिनों को कम कर दिया और 4 अक्टूबर 1582 को 15 अक्टूबर 1582 माना जाने लगा।

इसे 12 महीनों का बना दिया गया और इसमें जनवरी और फरवरी महीनों को जोड़ दिया गया। एक तेरहवां महीना जिसे Merce donius कहा गया कभी कभी इसमें डाल दिया जाता था। रोमन कैलेंडर के 12 महीनों में से सात महीने 29 दिनों के होते थे और चार महीने 31 दिनों के होते हैं। फरवरी का महीना 28 दिनों का हुआ करता था। इस प्रकार वर्ष में कुल 355 दिन होते थे। रोमन कैलेंडर वर्ष में 12 महीनों के नाम इस प्रकार होते थे :

महीने का नाम	नाम का मूल स्थान
मार्शियस	मार्स का महीना
एप्रिलिस	शुरुआती महीना (नई फसल)
माइयस	सर्वोच्च भगवान जुपिटर का महीना
जूनियस	जूनी का महीना
क्विनिविस	पांचवां महीना
सेक्सटिलिस	छटवां महीना
सेप्टेम्बर	सातवां महीना
ऑक्टोवर	आठवां महीना
नोवेम्बर	नवां महीना
डिसेम्बर	दसवां महीना
जैनुऐरियस	भगवान जेनस का महीना
फेब्रुऐरियस फेबुआ	शुद्धता की दावत।

153 ई.पू में जनवरी महीने को वर्ष का पहला महीना माना गया और मार्शियस (मार्च) का तीसरा। जूलियस सीजर ने 47 ई.पू. में पहली बार इस कैलेंडर में सुधार करने की चेष्टा की। सीजर ने रोमन कैलेंडर के लिए सूर्य वर्ष को मान्यता दी। उन्होंने इसे 365 दिनों का माना और 6 घंटों का एक चौथाई दिन अतिरिक्त माना। यह चौथाई दिन प्रत्येक चार वर्षों में पूरे एक दिन के बराबर हो जाता था। जिससे वर्ष के कुल दिनों की संख्या 366 होती थी और इस वर्ष को 'लीप ईयर' कहा जाता था।

046 ई.पू. में पुराने और नए कैलेंडरों के बीच की दूरी को मिटा दिया गया। 45 ई.पू. में सबसे पहले संशोधित कैलेंडर का प्रयोग किया था। जनवरी अभी भी पहला महीना माना गया। रोमन सीनेट ने क्विन्टिलिस महीने का नाम बदलकर जूलियस (हमारा जुलाई) रख दिया। जूलियस सीजर के सम्मान में था। इस नए कैलेंडर का नाम जूलियन कैलेंडर रखा गया। बाद में रोमन सीनेट ने सेक्सटिलिस महीने का नाम बदल कर ऑगस्टस (ऑगस्ट) रख दिया जो राजा ऑगस्टस के सम्मान में था।

सात दिनों का सप्ताह

321 ई. में सम्राट कन्स्टैंटाइन ने सबसे पहले सात दिनों के सप्ताह की शुरुआत की थी। सप्ताह का पहला दिन संडे होता था और इसे क्रिश्चियन लोगों के लिए पूजा का दिन माना गया। यद्यपि इससे लोगों को काफी सुविधा हुई लेकिन इसमें भी कुछ खामियाँ रह गईं। जो अभी तक मौजूद हैं। जूलियन और मिस्र दोनों कैलेंडर्स का स्थाईकरण हो चुका है अर्थात प्रत्येक वर्ष दूसरे अन्य वर्षों की तरह समान होता है। लेकिन सम्राट कन्स्टैंटाइन के सुधारों के आने के बाद जूलियन कैलेंडर में थोड़ा-थोड़ा शिफ्ट होने लगा। चूंकि इसमें सात दिनों के सप्ताह की कुल संख्या 52 है अतः कुल मिलाकर 0364 दिन ही होते हैं जो कि वर्ष के दिनों की कुल संख्या से 1 कम है जबकि लीप वर्ष से यह संख्या दो कम है।

ग्रेगोरियन कैलेंडर

एक सूर्य वर्ष की वास्तविक लंबाई है 365 1/4 दिनों में थोड़ी कम। यह है 365.242199 दिन या 365 दिन पांच घंटे, 40 मिनट और 46 सेकेंड। इसलिए जूलियन कैलेंडर करीब 11 मिनट लंबा माना गया जो कुछ शताब्दियों के बाद कई दिनों के अंतराल में बदल जाता था।

1502 में कैलेंडर में एक अन्य सुधार किया गया। जिसे पोप ग्रेगोरी XIII ने

निर्धारित किया। इसमें कैलेंडर को ऋतुओं के अनुसार एडजेस्ट किया गया। इसके लिए गणितज्ञ क्रिस्टोफर क्लोवियस और खगोलविद-भौतिकविद ।सवलेपने स्पसपने की सेवाएं ली गईं। उन्होंने पाया कि जूलियन कैलेंडर की अतिरिक्त लंबाई की वजह से जो गल्तियाँ हो गई थीं उनकी कुल संख्या 10 दिन थी। अतः वर्ष को सही करने के लिए उन्होंने जूलियन कैलेंडर में से 10 दिनों को कम कर दिया और 4 अक्टूबर 1582 को 15 अक्टूबर 1582 माना जाने लगा। इन 10 दिनों के नुकसान से कुछ भ्रम अवश्य हुआ लेकिन बाद में इसी ग्रेगोरियन कैलेंडर को ही काम में लिया जाने लगा।

सभी रोमन कैथोलिक देशों ने ग्रेगोरियन सुधारों को मान लिया लेकिन अंग्रेजों ने इसे 1752 तक स्वीकार नहीं किया था। जापान ने इसे 1873 में, चीन ने 1912 में, ग्रीस ने 1924 में और तुर्की ने 1927 में इसे अपनाया।

> कैलेंडर में वर्ष का प्रत्येक चौथाई भाग अर्थात 91 दिन या 13 सप्ताह या तीन महीने एक ऋतु के बराबर माने जाते थे। इस कैलेंडर में प्रत्येक वर्ष प्रत्येक अन्य वर्ष के बराबर होता था। उदाहरण के लिए वर्ष का पहला दिन एक रविवार को पड़ता था और क्रिस्मस का दिन यानी 25 दिसंबर के बाद और पहला जनवरी के पहले डाला जाता था।

प्रयोग में लाए जाने वाले अन्य कैलेंडर्स

वर्तमान समय में ग्रेगोरियन कैलेंडर ही अकेला कैलेंडर नहीं हैं जिसे प्रयोग किया जाता है, बल्कि धार्मिक कार्यों के लिए ज्यूस ने हिब्रू कैलेंडर की शुरुआत की जो चंद्र चक्रों पर आधारित है। इसमें 12 महीने होते हैं जो 29 और 30 दिनों को क्रम में होते हैं। 29 दिनों का एक अतिरिक्त महीना प्रति 19 वर्षों के एक चक्र में सात बार जोड़ा जाता है। जब भी ऐसा होता है 29 दिनों के किसी एक महीने में एक अतिरिक्त दिन जुड़ जाता है। यह वर्ष शरद ऋतु में शुरु होता है।

दूसरा महत्वपूर्ण इस्लामिक या मुस्लिम कैलेंडर है। यह भी चंद्र चक्रों पर आधारित है। इसमें 354 दिन और 12 महीने होते हैं जिनमें से आधे 29 दिनों के है और आधे 30 दिनों के। एक चक्र के 30 वर्षों के बाद और प्रत्येक चक्र में 11 बार एक अतिरिक्त दिन वर्ष के अंत में जुड़ता जाता है। मुस्लिम कैलेंडर की शुरुआत हजीरा वर्ष के पहले दिन से होती है जहां से मोहम्मद साहब का मदीना यात्रा संपन्न हुई थी। यह तारीख थी 15 जुलाई 622 जो कि क्रिश्चियन काल में आती थी।

यद्यपि ग्रेगोरियन कैलेंडर चीन का अधिकारिक कैलेंडर है फिर भी चीनी नया वर्ष अभी भी पुराने चीनी चंद्र कैलेंडर से ही लगाया जाता है। इस चंद्र वर्ष के १२ महीनों के नाम 13 पशुओं के नाम पर होते हैं जो चीनी राशियां मानी जाती हैं जैसे चूहा, बेल, शेर, खरगोश, सांप, घोड़ा, भेड़, बंदर, कुत्ता, सुअर, सपक्ष सर्प, मुर्गा।

कैलेंडर में आधुनिक सुधार

ग्रेगोरियन कैलेंडर ने लोगों की सेवा करीब चार शताब्दियों तक करी। फिर भी कुछ लोगों ने सोचा कि ऐसे सुधार किए जाएं जो ऋतुओं के अनुसार कैलेंडर में स्थिरता लाएं। 1834 में ।bbe Marco Mastrofini ने एक योजना लाई जिसमें प्रत्येक वर्ष समान होगा और खोई स्थिरता वापस लाई जाएगी। इस कैलेंडर में 364 दिन थे। 364 एक ऐसी संख्या है जो कई तरीकों से विस्थापित की जा सकती है। 365 वां दिन और लीप वर्ष का 366 वां दिन वर्ष के अतिरिक्त दिनों के रूप में डाले गए। प्रत्येक वर्ष रविवार, जनवरी 1 से शुरु होगा। ।इम का यह आइडिया इतना सरल था कि अधिकांश आधुनिक कैलेंडरों के सुधारकर्ताओं ने इसे अपने प्रस्ताव का आधार बना लिया। ये कैलेंडर सुधार तब तक चलते रहे जब तक लीग ऑफ नेशन्स ने 1923 में इसके बारे में प्रश्न नहीं पूछा। एक प्रस्ताव यह आया कि विश्व कैलेंडर को आसानी से कटने वाले नंबर 12 पर आधारित होना चाहिए जो कि एक अच्छा विचार था। इस कैलेंडर में वर्ष का प्रत्येक चौथाई भाग अर्थात 91 दिन या 13 सप्ताह या तीन महीने एक ऋतु के बराबर माने जाते थे। इस कैलेंडर में प्रत्येक वर्ष प्रत्येक अन्य वर्ष के बराबर होता था। उदाहरण के लिए वर्ष का पहला दिन एक रविवार को पड़ता था और क्रिस्मस का दिन यानी 25 दिसंबर के बाद और पहला जनवरी के पहले डाला जाता था। लीप वर्ष में 366 वां दिन 30 जून और पहली जुलाई के बीच डाला जाता था।

s17.chaturvedi@gmail.com
❒❒❒

जार्जियन कैलेंडर

चायनीज कैलेंडर
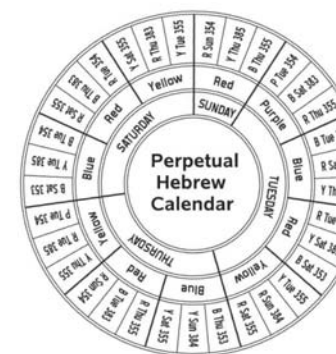
हिब्रू कैलेंडर

विज्ञान और हमारी परम्पराएँ

डॉ.स्वाति तिवारी

साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार मानव अधिकारों की सशक्त पैरोकार, पर्यावरणविद, पक्षी छायाकार, कुशल संगठनकर्ता व प्रभावी वक्ता। कई पुस्तक एवं पत्रिकाओं का सम्पादन। फिल्म निर्माण व निर्देशन। एक कहानीकार के रूप में सकारात्मक रचनाशीलता के अनेक आयामों की पक्षधर। देश की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में कहानी, लेख, कविता, व्यंग्य, रिपोर्ताज व आलोचना का प्रकाशन। विविध विधाओं की चौदह से अधिक पुस्तकों का प्रकाशन। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग दिल्ली द्वारा सम्मानित,मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के वागीश्वरी सम्मान, राष्ट्रीय लाड़ली मीडिया पुरस्कार से सम्मानित।

भारत को एक पारम्परिक देश कहा जाता है जहाँ परम्पराएँ पीढ़ी दर पीढ़ी चलती हैं। यह देश सदियों से अपनी परम्पराओं और सांस्कारिक जीवन-दृष्टि से ऊर्जावान होता रहा है और इसी वजह से विश्व में इसकी एक अलग पहचान थी आज भी है और अनन्त काल तक रहेगी। भारतीय परम्परा की खासीयत यह रही है कि उसने भौतिक विज्ञान को मानव के अंतर्जगत की चेतना से अलग करके नहीं देखा बल्कि हम कह सकते हैं कि भारतीय परम्पराएँ मनुष्य को परिवार और समाज के सरोकारों से साथ निकटता से जोड़ती रही हैं। परम्पराओं को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि 'परम्पराएं वे होती हैं जो शाश्वत होते हुए भी युगों के मूल्यों की सापेक्षता स्वीकार करती है और तद्नुसार नए ढंग से परिभाषित होती रहती है। कह सकते हैं कि इस सृष्टि की तरह है परम्पराएँ भी एक शाश्वत सत्य है।' इस सन्दर्भ में सुमित्रा नन्दन पंत ने कहा भी है कि 'नित नए परिवर्तित प्रति वेश' वे लचीली और चिरनवीन भी होती रहती है। भारतीय मनीषा ने अपनी परम्पराओं में निहित दृष्टि का उपयोग कर समकालिन जीवन के लिए मान्य विचार एवं व्याख्या के नए तत्व खोजे है। ये परम्पराएं जब लोक में समाहित हो गई तो वे ही हमारी लोक परम्पराएं कहलाने लगी।

हमारे देश में लोक में व्याप्त परम्पराओं के मूल स्त्रोत मुख्य रूप से वेद तथा उसके बाद पुराण व अन्य प्राचीन भारतीय ग्रंथ रहे हैं। हमारे तत्वदर्शी महर्षियों ने व्रत, पर्व और त्यौहारों में धर्म और विज्ञान का अद्भुत संगम दिया है। एक ऐसा संगम जिन्हें परम्पराओं के रूप में निरन्तरता दी गई और आधार रहा लोकहित का। लोक में व्याप्त लोकहित की इन लोक परम्पराओं में धार्मिकता, ईश्वर भक्ति, उल्लास, उमंग, पुण्य-लाभ एवं मोक्ष- प्रयोजन स्वयं का एवं परिवार का लोक मंगल जैसे-जैसे सहज दिखाई देने वाले लोक-परलोक प्रयोजन के अतिरिक्त स्वास्थ्य, पर्यावरण, जैविक एवं वानस्पतिक सुरक्षा के भी उपादान है। लोक परम्पराओं का तत्वदर्शी चिन्तन, जिसका मूल सिद्धान्त 'ईश्वर जीव अंश अनिनाशी' तथा खुला आग्रह एवं जीवन के उदस्त मूल्यों के प्रति निष्ठा। भारतीय परम्पराओं ने विज्ञान और प्रज्ञा को कभी अलग-अलग करके नहीं आंका। भारतीय समाज ने हमेशा मानव के अन्तर्जीवन और बाहरी विश्व के बीच सामंजस्य स्थापित करने की कोशिश की है। भारतीय ज्ञान ने जितना विकास प्रज्ञा और आध्यात्मिक दर्शन के क्षेत्र में किया है, उतना ही विकास विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भी किया है। वैदिक परम्पराओं में प्रकृति पूजा की महत्ता सर्वज्ञात है। प्रकृति के तत्व जल, पृथ्वी, वायु, अग्नि और आकाश आदि को पूजने और उन्हें देवतुल्य मानने की परम्परा में दरअसल अपने आसपास की प्रति, पर्यावरण और जैव-विविधता के संरक्षण का ही उद्देश्य निहित है।

आधुनिक विज्ञान वृक्ष लगाने की बात कहता है कि प्रदूषण कम करना है तो वृक्ष लगाओ। हम ध्यान दे तो स्पष्ट होता है कि हजारों साल प्राचीन हमारा दर्शन इन्हें पूजनीय घोषित कर इनको नष्ट करने की सम्भावनाओं को ही समाप्त कर देता है। हमारे वैदिक मनीषियों ने वनस्पति, औषधी, लता तथा वनों का महत्व समझते हुए इन्हें श्रद्धापूर्वक नमस्कार करते हुए यजुर्वेद में कहा ''नमो वृक्षेभ्यः।'' अनेक प्रसंगों में इनसे जीवन दर्शन की सीख भी ली गई है। इस तरह विज्ञान, प्रकृति और धर्म एकाकार नज़र आते हैं। उदाहरण के रूप में हम 'वट सावित्री व्रत' को ही लें तो हम देखते हैं कि इस विशाल वृक्ष को जो बड़ या बरगद का पेड़ है उसे संरक्षित करते हुए एक लोक परम्परा चली आ रही है। लोक मान्यता वाली कथानुसार यह वृक्ष लोक में इसलिए पवित्र माना गया है कि इसी के नीचे सत्यवान की मृत्यु हुई थी और उसकी पतिव्रता पत्नी सावित्री ने अपने तपबल तथा आध्यात्मबल से उसे पुनः जीवित कर लिया था। इस कथा का लोक आख्यान वृक्ष की महिमा को मण्डित करता है कि यह वृक्ष स्त्रियों के अखण्ड सौभागय में वृद्धि होती है। इस कथा अनुसार यह परम्परा आज भी कायम हे और ज्येष्ठ मास में स्त्रियां वट- सावित्री पूर्णिमा और कहीं-कहीं वट सावित्री अमावस्या का वत रखकर इस वृक्ष का पूजन करती हैं। श्रद्धा और धार्मिक आस्था की इस परम्परा में धर्म के साथ-साथ प्रकृति संरक्षण एवं व्रत के रूप में वैज्ञानिक अवधारणा का समावेश है व्रत एक तरह का संकल्प होता है जो एक निर्दिष्ट संकल्प है, जो एक अनुशासन पैदा करने के साथ-साथ मन को और इंदियों को बांधता है। व्रत को तप भी कहा जाता है। उपवास रखकर स्वाद इंद्रियों को कुछ समय के लिये नियंत्रित किया जात है जो स्वास्थ्य की दृष्टि से उपवास के रूप में हमारी आहार प्रणाली अर्थात पाचन तन्त्र का शोधन करता है। यह एक उदाहरण है ऐसे अनेक प्रसंग हमारे आसपास हैं जिनमें परम्पराओं के माध्यम से वैज्ञानिक अवधारणाओं को समाज में स्थापित किया गया है एक उदाहरण हम 'आंवला नवमी पूजन' भी ले सकते हैं - आंवला विटामिन सी का एक ऐसा प्राकृतिक स्रोत है जिसमें प्रचुर मात्रा में विटामिन सी पाया जाता है जो हमारी प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत करता है। आंवला हमारे भोजन में शामिल करने के हितार्थ एक परम्परा है जो आंवला नवमी पर बगीचे में आंवले के पेड़ की छाया में पूजन के बाद पूरा परिवार-कुटुम्ब एक साथ सेल बाट करते हैं। सेल बाट अर्थात पिकनिक जो सामाजिक मेलजोल का कारण बनती है जिसमें व्यंजनों को मिल बांटकर खाया जाता है और बाग बगीच लगाएं और बचाएं जाते हैं जहाँ आंवला अलग-अलग तरीके से संरक्षित करने की विधि को भी एक दूसरे को बताया जाता है और आंवला मुरब्बे, अचार, सुपारी, चटनी के रूप में विटामिन सी हमें दे देता है जिसके माध्यम से यह परम्परा, समाज विज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान और प्रकृति एकाकार अवधारणा को स्पष्ट करता है।

भारत के समाज में अनादिकाल से चली आ रही लोक परम्पराओं में आज भी प्रकृति तथा विज्ञान के संरक्षक तथा उनके सम्मत होने के संकेत मिलते हैं। यह भी सर्वविदित सत्य है कि भारतीय लोक परम्परा में विज्ञान और प्रौद्योगिकी को हमेशा प्राथमिकता दी है। रामायण जैसे लोकव्यापी ग्रंथ में अगर पुष्पक विमान है तो महाभारत में मिसाइल जैसे अस्त्रों का उल्लेख है। अमरकोष ने शिल्प और विज्ञान की जानकारी को मोक्ष-प्राप्ति का एक मार्ग माना है' मोक्षेधीर्जानम्, विज्ञानं शिल्प शास्त्रोंरू'।

भारत के पौराणिक ग्रन्थ और वेद एक तरह से नीति ग्रन्थ कहे जा सकते हैं इनमें आस्था और धर्म की परम्परा के माध्यम से प्रकृति और पर्यावरण संरक्षण के सूत्र संकेत दिये जाते हैं। सदियों पहले विधि सम्मत व्यवस्था के लिए धर्म के तहत कड़े प्रावधान रखे गए थे। पाप और पुण्य का मुख्य आशय यही था कि फलां कार्य को निरूत्साहित किया जाए और फलां कार्य को प्रोत्साहित किया जाए। स्वर्ग और नरक से जुड़ी कथा-किवदंतियों का भी अभिप्राय सामाजिक तथा प्राकृतिक तौर पर किसी कार्य के करने अथवा न करने के लिए एक तरह से दिशा-निर्देश जारी करना ही था। भारत के समाज में अनादिकाल से चली आ रही लोक परम्पराओं में आज भी प्रकृति तथा विज्ञान के संरक्षक तथा उनके सम्मत होने के संकेत मिलते हैं। यह भी सर्वविदित सत्य है कि भारतीय लोक परम्परा में विज्ञान और प्रौद्योगिकी को हमेशा प्राथमिकता दी है। रामायण जैसे लोकव्यापी ग्रंथ में अगर पुष्पक विमान है तो महाभारत में मिसाइल जैसे अस्त्रों का उल्लेख है। अमरकोष ने शिल्प और विज्ञान की जानकारी को मोक्ष-प्राप्ति का एक मार्ग माना है 'मोक्षे धीर्जानम्, विज्ञानं शिल्प शास्त्रोंः'। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार, यह पूरी सृष्टि किसी अश्य शिल्पकार का शिल्प लगती है-'शिल्पानि में शंसंति देवशिल्पान्येतेषां।' बृहदारण्यक उपनिषद के ऋषि कहते हैं कि - यो विज्ञाने तिष्ठन, विज्ञानादंतरो यं विज्ञानं न वेद। भारतीय मनीषा ने बाहय ज्ञान के साथ आत्म ज्ञान में जगतगु डिग्री की भूमिका अदा की है। हमारा ज्ञान पारम्परिक होकर भी लोक में व्याप्त है जिसने सम्पूर्ण विश्व की तमाम सभ्यताओं की तुलना में दुनिया को वैदिक गणित, विज्ञान, खगोल शास्त्र, ज्योतिष विद्या और भाषा शास्त्र के साथ आयुर्वेद - योग - में भी अपना लोहा मानने पर मजबूर किया।

हमारी लोक मान्यताओं में पानी, मिट्टी, सूरज, पवन, जंगल, वृक्ष, पशु-पक्षी, पर्वत, नदियाँ, तालाब, बावड़ियाँ सहित अनेक प्राकृतिक धरोहरों के उगने, आराध्य भाव रखने तथा उनके संवर्धन तथा संरक्षण के संकेत मिलते हैं। कुछ उदाहरणों से और स्पष्ट हो सकता है कि लोक परम्पराओं में कहां कैसे कर्म प्रकृति तथा विज्ञान समाए हुए हैं-

- आदि गुरु शंकराचार्यजी द्वारा रचित 'नर्मदा अष्टक' विज्ञान सम्मत गाथा है। इसमें नर्मदाजी की पूजा करते हुए उनके जैव विविधता का महत्व बताया गया है। मगरमच्छ, मछलियाँ, कछुए आदि यदि किसी

नदी में पर्याप्त अनुपात में हैं तो संबंधित नदी का स्वास्थ्य बेहतर है। यदि नदी स्वस्थ्य है तो स्पष्ट है परिवेश का पर्यावरण ठीक है। प्रकृति ठीक है। नर्मदा पूजन की परंपरा में यदि नर्मदाष्टक को जैवविविधता का शास्त्र माना जाये तो क्या गलत है।

– बड़े कैनवामन नर देखा जाए तो भारत में हर नदी के उद्गम की धर्म संगत गाथा है। प्रकाशन्तर से इसमें प्यावरण और प्रकृति संरक्षण का संदेश दिया है। नदियाँ केवल उपयोग की वस्तु नहीं है। वे केवल वाटर बॉड़ी नहीं है। वे पूज्यनीय हैं। हमारी माँ हैं। उनको पूजा, संरक्षण कर्ता, आराध्य मानों, ये समृद्ध रही तो हमारा समाज समृद्ध रहेगा। प्रकृति-विज्ञान और समाज के संबंध, के रसायन को कार्य के रास्ते किस तरह सम्मिलित किया गया है। यह एक मिसाल है।

– हाथी, शेर, सर्प, कछुआ, चूहा, गाय, बैल, मोर, गरूड आदि अनेक पशुपक्षी वाहन के रूप में हमारे देवी-देवताओं के अभिन्न साथी रहे हैं। उनकी मूर्ति में साथ-साथ हम इनकी भी पूजा अर्चना करते हैं। यह लोक परम्परा का अभिन्न अंग है। आज हम 'सेव टायगर' मुहिम चलाते हैं। जबकि हमारी परंपराओं में सदियों पहले ही यह देवी-वाहन रहा है। पर्यावरण विशेषज्ञ भी कहते हैं जहां शेर हैं, जमा क्षेत्र उस परिवेश का समग्र पर्यावरण और जैवविविधता सिस्टम में है।

श्रीमद भागवत पुराण में गोवर्धन पर्वत पूजा का विशद वर्णन है। संदेश साफ है- पर्वतों को पूजोगे तो वे संरक्षित रहेंगे। उनकी परिक्रमा करो-यानि उनके प्राकृतिक स्वरूप के साथ ज्यादा छेड़छाड़ मत करो। पहाड़ियों के शीर्ष पर माता-मंदिरों की प्रतिमा की भी परम्परा रही है। ये पर्वत उन्हीं मात्र के नाम से जाने जाते हैं। पर्वत संरक्षित रहे तो विज्ञान की भाषा में 'डाउन स्ट्रीम' की नदियां, नाले, खेत तथा निमात्र सब सुकून से रहेंगे। इको सिस्टम ठीक से काम करेगा।

– श्रीमद भागवत पुराण में गोवर्धन पर्वत पूजा का विशद वर्णन है। संदेश साफ है- पर्वतों को पूजोगे तो वे संरक्षित रहेंगे। उनकी परिक्रमा करो-यानि उनके प्राकृतिक स्वरूप के साथ ज्यादा छेड़छाड़ मत करो। पहाड़ियों के शीर्ष पर माता-मंदिरों की प्रतिमा की भी परम्परा रही है। ये पर्वत उन्हीं मात्र के नाम से जाने जाते हैं। पर्वत संरक्षित रहे तो विज्ञान की भाषा में 'डाउन स्ट्रीम' की नदियां, नाले, खेत तथा निमात्र सब सुकून से रहेंगे। इको सिस्टम ठीक से काम करेगा।

– मत्स्य पुराण में तालाब, बावड़ी, कुंए की प्राणप्रतिष्ठा का उल्लेख है। इनके पूजने की भी परम्परा आज भी समाज में व्याप्त है। इन्हें पूजो, अनादर मत करो, पर्यावरण तंत्र के अहम हिस्से हैं।

– हमारे तीज-त्यौहारों की परम्पराएं भी प्रति तथा विज्ञान सम्मत हैं। शीतला सप्तमी को बासी भोजन करने की परम्परा का स्पष्ट संदेश है। गर्मी प्रारम्भ हो गई है – अब ऐसा न करना। अन्यथा स्वास्थ्य के लिए बासी भोजन घातक हो सकता है।

– पीपल पूजन, उनको धागे से बांधने की परम्परा, बड़ सावित्री पूजन, अपने-अपने परिवेश में त्रिवेणी यानी पीपल, नीम और वट वृक्ष की स्थापना, हर घर आंगन में तुलसी की पूजा आदि विज्ञान तथा प्रति सम्मत नरंजदान हैं।

– मौसम परिवर्तन से जुड़ी परम्पराएं भी भारतीय समाज में गहरे तक पैठ रखती है। दीपावली इसका सबसे बड़ा उदाहरण है। लक्ष्मीपूजन के पूर्व साफ-सफाई और पुताई इसलिए भी जरूरी है कि बरसात का मौसम गया। सीलन से भरे घर में यदि सफाई नहीं हुई तो ये घर सूक्ष्मजीव जो वायरस या बैक्टीरिया हो सकते हैं वे बीमारियों को न्यौता देंगे।

भारतीय समाज में गर्भवती स्त्री के स्वास्थ्य को लेकर भी कई परम्पराओं को मान्यता देता रहा है जो वैज्ञानिक दृष्टि से उनके स्वास्थ्य एवं गर्भस्थ बच्चे की रक्षा के लिए सही होती हैं। जैसे सूर्यग्रहण में नहीं जाना, ग्रहण नहीं देखना। दरअसल इसके पीछे वैज्ञानिक कारण हैं जैसे ग्रहण के वक्त सूर्य से निकलने वाली पराबैंगनी किरणें या कुछ ऐसी ही अन्य रश्मियां जो अजन्में बच्चे को प्रभावित कर सकती हैं। एक मान्यता है कि गर्भ के आंठवें माह में नदी, नाले पार नहीं करना। यह उस समय सही थी जब आवागमन एवं संचार की आज जैसी सुविधाएँ नही थीं। महिलाएं गर्भ की मासिक गणना में भी गलती कर सकती थी। अतः कभी भी प्रसव दर्द शुरू हो जाए तो नदी पार करते हुए प्रसव करवाना कठिन होता होगा। इसी तरह छठ पूजन, जलवायु पूजन, सूरज पूजा प्रसव के बाद की सामाजिक परम्पराओं में विज्ञान की अवधारणाएं हैं। प्रसव बाद जापे के लड्डू खिलाने की भी परम्परा है जो मायके से आए सामान से तैयार किए जाते हैं। ये जड़ी-बूटयों से युक्त औषधीय लड्डू होते हैं जो आयुर्वेद के अनुसार तैयार किए जाते हैं। आज तक वे हमारी लोक परम्परा के बहाने प्रसूता स्त्री की हेल्थ की दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हैं।

सूर्य हमारी जैविक ऊर्जा के लिए ऊर्जा का अकूत भंडार है। सृष्टि के चलायमान होने में सूर्य की महत्वपूर्ण भूमिका है। अतः हमारी परम्पराएं सूर्य को देवताओं में सर्वश्रेष्ठ मानकर नवग्रह पूजन, सूर्य नमस्कार, सूर्य छट पूजा, सूर्य को जल चढ़ाने जैसी मान्यताओं के बहाने प्रकृति की रक्षा करने के उपाय हैं। पृथ्वी को माता रूप में पारम्परिक मान्यता है। लोक में 'धरती माता' की भावना भरने का अर्थ यही रहा है कि माँ कहने से निश्चय ही हमारा उसके प्रति व्यवहार सम्मानपूर्वक रहेगा। हमारी परमपराएँ धर्म की आड़ में विज्ञान का विस्तार करती रही हैं, ताकि लोक में रहने वाले लोग प्रकृति की पूजा यदि पोषक तत्वों के स्रोत के रूप में करेंगे तो औषधियां तथा वनस्पति विनाश से बची रहेगी। जीवन को पोषण तत्व मिलते रहेंगे। उल्लास, उमंग बनी रहेगी, अथर्ववेदीय पृथ्वी सूक्त में यही संदेश दिया गया है-

यस्याम् वृक्ष वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठतिं विश्वहा।
पृथ्वी विश्वधायंस घृतामच्छा वदामसि।।

(पृथ्वीसूक्त मंत्र-२७)

परम्पराओं को रूढ़ियों में बांधना आसान है, मुश्किल होता है उसे सतत प्रवाहमान बनाए रखना, विडम्बना यही है कि प्रवाहमान बनाने के चक्कर में परम्पराएं रूढ़ियों में बदल जाती हैं और उनका वैज्ञानिक महत्व गौण हो जाता है। जैसे बरगद, पीपल का पेड़ गमले में रखकर पूजा कर ली जाती है। पेड़ का चित्र लगाकर पूजा कर ली जाती है। ये रूढ़ियाँ अंधविश्वास में बदल जाती हैं एवं मात्र औरपचारिकता का निर्वाह होती

सूर्य हमारी जैविक ऊर्जा के लिए ऊर्जा का अकूत भंडार है। सृष्टि के चलायमान होने में सूर्य की महत्वपूर्ण भूमिका है। अतः हमारी परम्पराएँ सूर्य को देवताओं में सर्वश्रेष्ठ मानकर नवग्रह पूजन, सूर्य नमस्कार, सूर्य छट पूजा, सूर्य को जल चढ़ाने जैसी मान्यताओं के बहाने प्रकृति की रक्षा करने के उपाय हैं। पृथ्वी को माता रूप में पारम्परिक मान्यता है। लोक में 'धरती माता' की भावना भरने का अर्थ यही रहा है कि माँ कहने से निश्चय ही हमारा उसके प्रति व्यवहार सम्मानपूर्वक रहेगा। हमारी परम्पराएँ धर्म की आड़ में विज्ञान का विस्तार करती रही हैं, ताकि लोक में रहने वाले लोग प्रकृति की पूजा यदि पोषक तत्वों के स्रोत के रूप में करेंगे तो औषधियां तथा वनस्पति विनाश से बची रहेगी।

हैं। नागपंचमी र्प्यावरण एवं जैव संरक्षण का सबसे अच्छा उदाहरण हैं जिसमें यह सबक भी होता है कि नाग विषधर होते हुए भी पर्यावरण के लिए जरूरी हैं। नागदेवता हैं और उन्हें मारना नहीं चाहिए। लेकिन नाग को दूध पिलाने की परम्परा एवं पकड़कर विषदन्त निकाल देने की प्रक्रिया अच्छी परम्परा पर कुठाराघात है क्योंकि कई बार नाग इन प्रक्रियाओं में घायल होकर मर जाते हैं। परम्पराओं को वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाना बेहद जरूरी है वरना वे आडम्बर में बदल जाती हैं।

कोई भी लोक अपनी परम्परा, अपनी संस्कृति, अपनी मान्यताओं, रीति-रिवाज़ों को छोड़कर नहीं रह सकता। हाँ परम्पराएँ समय के साथ बदलती रहती हैं। बदलाव प्रकृति का नियम है। लोक परम्पराओं को उनके स्वस्थ्य स्वरूप में ही अपनाया जाना चाहिए, क्योंकि कुरीति, अंधविश्वास एवं अंधश्रद्धा को छोड़े बगैर हम प्रगति एवं विकास के पथ पर अग्रसर नहीं हो सकते। भारतीय मान्यताओं (विशेषकर मध्यप्रदेश के संदर्भ में) के संबंध में वैज्ञानिक और आधुनिक दृष्टिकोण से विमर्श करते हुए उन्हें रेखांकित किए जाने की आवश्यकता है।

परम्पराओं के संदर्भ में डॉ. लक्ष्मीमल सिंघवी का कहना है कि परम्परा के प्रति जब दृष्टि यांत्रिक हो जाती है तब वह अवरूद्ध हो जाती है। यांत्रिक दृष्टि से किसी परम्परा को देखना या उसकी मीमांसा करना पुरातन की कम समझी है और अधुनातम के प्रति नासमझी है। परम्परा एक विश्वास है, वह बंधन नहीं, बाधा नहीं है, अवरोध नहीं है, कारावास नहीं है, वैदिक दृष्टि से परम्परा एक अनुशासन है, अपने जातीय स्वाभाव की समझ है वह विद्या है जो हमें हर कदम पर मुक्त करती है 'सा विद्या या विमुक्तय'। मेरी दृष्टि में परम्परा पीढ़ियों की निरन्तरता को एक सूत्र में जोड़ती हुई प्रगति का मार्ग प्रशस्त करती है। सनातन आर्य दृष्टि की यही परिभाषा है जो हमें एक उज्जवल भारतीयता का संकेत देती है। परम्परा की इस उजास में ही हम वर्तमान का परिष्कार कर सकते हैं और भविष्य का निर्माण कर सकते हैं।

stswatitiwari@gmail.com

□□□

डॉ. जाकिर अली 'रजनीश' का जन्म 1 जनवरी 1975 को लखनऊ में हुआ। हिन्दी में स्नात्कोत्तर, पी.एच-डी. उपाधि प्राप्त की और इन दिनों राज्य कृषि उत्पादन मंडी परिसर उत्तरप्रदेश में कार्यरत हैं। आपने दूरदर्शन तथा आकाशवाणी के लिये भी लेखन किया। वैज्ञानिक उपन्यास, विज्ञान कथा संग्रह, पटकथा लेखन पुस्तक, वैज्ञानिकों की जीवनी सहित आपने अनेक वैज्ञानिक पुस्तकों का सृजन किया। आपको जर्मनी सहित देश-विदेश दो दर्जन संस्थाओं से सम्मानित - पुरस्कृत किया गया है। पुस्तक में नौ बाल विज्ञान कथाएँ एवं ह्यूमन ट्रांसमिशन नामक एक लघु बाल उपन्यास सम्मिलित हैं। विज्ञान कथाओं के माध्यम से समाज में व्याप्त अंधविश्वासों का खुलासा बड़े रोचक तरीके से किया गया है जबकि उपन्यास में एक वैज्ञानिक के स्थानांतरित होने का सजीव चित्रण किया गया है।

महेन्द्र कुमार माथुर का जन्म 20 जुलाई 1940 को हुआ। वे बीएचईएल भोपाल के सेवानिवृत्त उपमहाप्रबंधक हैं। अनेक प्रशासन अकादमी और इंस्टीट्यूट और विज्ञान सेन्टर के संकाय सदस्य होने के साथ आपने प्रबंध की विषयों पर दर्जनों लेख लिखे। हिन्दी अंग्रेजी अनुवाद पर आपका वृहद काम है। इस पुस्तक में ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति पर प्राचीन भारतीय एवं आधुनिक अवधारणाओं का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। साँख्य दर्शन ब्रह्माण्ड के रहस्यों को समझने की दिशा में 'मील का पत्थर' है। आइंस्टीन के सिद्धांत, स्टीफन हाकिंग के विचार एवं बिग बैंग थ्योरी का समुचित समावेश किया गया है।

मच्छर
बीमारियों के शहंशाह

डॉ. शुभ्रता मिश्रा

वनस्पति शास्त्र में शोध करने वाली डॉ. शुभ्रता मिश्रा युवा विज्ञान लेखिका हैं आपने इंडिया साइंस वॉयर, विज्ञान प्रसार में अब तक 350 विज्ञान कथा और लेख लिखे हैं। आपके विज्ञान लेख आकाशवाणी से प्रसारित होते रहे हैं। अंग्रेजी में पंद्रह तथा हिन्दी में पांच पुस्तकें लिखीं जिनमें 'भारतीय अंटार्कटिक संभारतंत्र' काफी चर्चित हुई है। इस किताब को राष्ट्रीय अंटार्कटिक एवं समुद्री अनुसंधान केन्द्र, पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित किया गया है। कई पुरस्कारों से सम्मानित डॉ. शुभ्रता गोवा में रहती हैं।

पिछले कई सालों से हो रहे विविध शोधों के अनुमानों और संयुक्त राष्ट्र के मिलेनियम इकोसिस्टम असेसमेंट के अनुसार पृथ्वी पर अतिसूक्ष्म जीवों से लेकर विशालकाय प्राणियों की संख्या 50 से 300 लाख के बीच मानी गई है। हांलाकि इस अनुमानित जीवसंख्या में से अब तक केवल 17 से 20 लाख जीवप्रजातियां ही पहचानी जा सकी हैं, जबकि असंख्य ऐसे जीव हैं, जो अभी भी अभिज्ञान से परे हैं। यह विचारणीय विषय है इतने सारे जीवों के बीच मच्छर जैसे छोटे से जीव ने इस धरती पर अपनी एक ऐसी अलग पहचान बनाई है, कि विश्व उसके नाम पर हर साल 20 अगस्त को विश्व मच्छर दिवस मनाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि मच्छर में कुछ तो विशेष बात है, जो उसे वैश्विक बनाता है।

मच्छर को यह वैश्विकता महान चिकित्सक सर रोनाल्ड रास ने प्रदान की है। सन् 1897 में २० अगस्त को लिवरपूल स्कूल ऑफ ट्रॉपिकल मेडिसिन के ब्रिटिश चिकित्सक डॉ. रोनाल्ड रॉस ने मलेरिया जैसी जानलेवा बीमारी के संचरण के लिए उत्तरदायी संवाहक मादा एनॉफिलीज मच्छर की खोज़ की थी। यही वह मच्छर था जिसने डॉ. रोनाल्ड रॉस को 1902 का चिकित्सा का नोबेल पुरस्कार विजेता बनाया। अतः इस क्षुद्र परंतु शक्तिशाली जीव मच्छर की खोज की स्मृति में 20 अगस्त के दिन को विश्व मच्छर दिवस का नाम दिया गया है।

मच्छर एक ऐसा जीव है जिसके पीछे पूरी दुनिया के वैज्ञानिक तरह तरह की बीमारियों के रहस्यों को जानने में जुटे हुए हैं। दिखने में बिल्कुल छोटा सा मच्छर किसी शक्तिशाली दानव की तरह दुनिया में लाशों के ढेर लगाने की क्षमता रखता है। वैज्ञानिकों ने मच्छर की इसी दानवी विलक्षणता को विज्ञान की कसौटी पर परखने के अतिपरिश्रमी सफल प्रयास किए हैं। आज हमें मच्छर से मुक्त होने में पूर्ण विजय भले ही न मिली हो, लेकिन अब मच्छर भी विश्व को श्मशान बनाने से पहलेअपने अस्तित्व को बचाने के बारे में अवश्य सोचने लगा होगा।

एक बात जरुर है कि दुनिया के लगभग सभी मच्छर बीमारियों के लिए ही जाने जाते हैं, लेकिन अप्रैल 2018 में चीन के कीटवैज्ञानिकों ने एक बहुत बड़े आकार के एक ऐसे मच्छर की खोज की है, जो मनुष्य का रक्त नहीं चूसता है। दुनिया की सबसे लंबी मच्छर प्रजाति 'हालोरूसिया मिकादो' नाम के ये मच्छर केवल फूलों के परागकण ही खाते हैं। इस मच्छर के पंखों का 11-15 सेंटीमेटर तक फैले होते हैं। यह मच्छर प्रजाति जापान में भी पाई जाती है।

लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि दुनिया के सारे मच्छर मनुष्यों के प्रति इतनी सद्भावना रखने वाले होंगे। बीमारियों के दृष्टिकोण से सोचें तो यह कहना बिल्कुल भी गलत नहीं होगा कि मच्छर विश्व का सबसे खतरनाक जीव है। दुनिया का ऐसा कोई कोना नहीं होगा, जहां मच्छर न पनपते हों। गड्ढ़ों, तालाबों, नहरों और स्थिर जल के जलाशयों के निकट अंधेरे और नम स्थानों को पसंद करने वाले एकलिंगी प्राणी मच्छरों की पृथ्वी पर आबादी लगभग दस खरब (एक ट्रिलियन) है। वैज्ञानिक प्रमाण दर्शाते हैं कि मच्छर तब से इस धरती पर अपनी सूक्ष्मता का लोहा मनवा रहे हैं, जब से लगभग 21 करोड़ सालों पूर्व जूरासिक कालीन डायनासोर अपनी विशालकायता का दम्भ भरा करते थे। मच्छरों की इस चिरकालीन अस्तित्वता के पीछे उनका वो परिस्थितिजन्य सामन्जस्य गुण है, जो उनको गर्मी, वर्षा और ठंड जैसे सभी मौसमों में जीवित बनाए रखता है। परंतु मच्छरों

का विशेष लगाव बरसात से होता है, क्योंकि यह मौसम उनके द्वारा बीमारियां पैदा करने के लिए बेहद अनुकूल होता है।

नर और मादा दोनों प्रकार के मच्छरों को अपना जीवन चक्र पूरा करने के लिए जल बहुत महत्वपूर्ण होता है। मच्छर जल में ही पनपते हैं, कुछ स्वच्छ जल में और कुछ गंदे जल में। कुछ मच्छर बहुत ही कम मात्रा के जल जैसे ओस की बूंद के बराबर जल में भी पनप जाते हैं जबकि कुछ मच्छरों को बहुत अधिक जल चाहिए होता है। सभी मच्छरों को उनकी चयापचय क्रियाओं के लिए ग्लूकोज और प्रोटीन की भी आवश्यकता होती है, जिसकी पूर्ति वे फूलों के रस चूसकर करते हैं। यही कारण है कि अक्सर बागबगीचों में भी मच्छरों के ढेरों गुच्छेभिनभिनाते मिल जाते हैं। नर मच्छर अपनी जीवन क्रियाओं के लिए केवल फूल पर ही निर्भर होते हैं, लेकिन अधिकांश मादा मच्छरों को अपने अंडे विकसित करने के लिए प्राणी रक्त की भी आवश्यकता होती है। फलतः वयस्क मादा मच्छर अपनी वसा और प्रोटीन की आवश्यकता की पूर्ति लिए अधिकांशतया मनुष्यों का रक्त चूसती है। हांलाकि कुछ प्रजातियां उभयचर प्राणियों जैसे मेंढक, सरीसृपों जैसे सांप, गिरगिट, पक्षियों, छोटे-बड़े स्तनधारी प्राणियों जैसे कुत्ते, बिल्ली, खरगोश, धोड़ा, गाय और कंगारु आदि के रक्त का भी उपयोग करती हैं। पक्षियों में पनपने वाले बर्ड फ्लू या जीका वायरस जैसे विषाणुओं के मनुष्यों तक पहुंचने का एक कारण ऐसे मादा मच्छर ही होते हैं। मादा मच्छर लगभग दो महिने तक जीवित रह सकती हैं, वहीं नर मच्छरों की आयु सिर्फ एक सप्ताह की होती है। सभी मच्छरों के जीवन चक्र की चार अवस्थाएं होती हैं जिनमें क्रमशः अण्डा, लार्वा, प्यूपा और वयस्कता शामिल हैं। आकारिकीय रुप से भिन्नता दर्शाने वाली प्रत्येक अवस्था अलग अलग आवासों और पोषकों में पूरी होती है।

विज्ञान यह सिद्ध कर चुका है कि मात्र 2 से 2.5 मिली ग्राम के ये हल्के से भार वाले मच्छर पृथ्वी पर कई गंभीर बीमारियों के जनक होते हैं। ये विभिन्न प्रकार के रोंगो के विषाणुओं और जीवाणुओं के संवाहक होते हैं। संवाहक से तात्पर्य उन जीवों से होता है जो स्वयं बीमारी पैदा नहीं करते बल्कि रोग को अन्य परजीवी या जीवाणु या विषाणु आदि से संक्रमित व्यक्ति से असंक्रमित में प्रसारित करते हैं। मच्छरों की अलग अलग प्रजातियां किसी रोगाणु विशेष की ही वाहक होती हैं।

वास्तव में क्यूलिसिडी वर्ग के कीटों के अन्तर्गत रखे गए मच्छरों की तीन हज़ार से अधिक प्रजातियां पाई जाती हैं। विभिन्न प्रजातियों वाले मच्छर आपस में एक-दूसरे से परजीवियों के धारण करने की प्रवृत्ति के कारण भी काफी भिन्न होते हैं। उदाहरण के लिए यदि अलग अलग बीमारियों को फैलाने वाले मच्छरों की बात करें तो क्यूलेक्स प्रजाति के मच्छर वेस्ट नील वायरस तथा सेंट लुइस वायरस रोग, एडिज प्रजाति के मच्छर चिकनगुनिया, डेंगू तथा पीतज्वर रोग, एडिज एजिप्टी या एडिज एल्बोपिक्टस प्रजाति के मच्छर जीका वायरस रोग फैलाते हैं। वहीं सबसे पहले सामने आया मलेरिया रोग एनोफिलिज प्रजाति के मच्छरों के कारण होता है। मच्छरों की कुछ प्रजातियां सिर्फ विशेष स्थानों पर रहकर ही पनपती हैं और रोग फैलाती हैं।

मादा मच्छरों की लगभग 100 प्रजातियां मनुष्यों में भयंकर और जानलेवा बीमारियां फैलाने के लिए उत्तरदायी पाई गई हैं। विभिन्न रोगों के वाहक ये मच्छर लगभग साल भर गाँवों से लेकर व शहरों तक के लोगों को अपने प्रकोप का शिकार बनाते रहते हैं। खतरनाक मच्छर प्रजातियों के कारण आज अफ्रीका और एशिया सहित विश्व के समस्त उष्णकटिबंधीय देशों में इन बीमारियों ने कहर बरपा रखा है। विश्व स्वास्थ संगठन के अनुसार मच्छरों के काटने से होने वाली विभिन्न बीमारियों सेप्रतिवर्ष दस लाख से अधिक लोगों की मृत्यु होती है।

मच्छरों पर अक्सर दोष यही लगता है कि उनके काटने से मनुष्य बीमार होता है। एक सामान्य व्यक्ति के लिए इतना समझना काफी हो सकता है, परंतु वैज्ञानिक स्तर पर यह तर्क बिल्कुल गलत है। क्योंकि मच्छर के काटने पर परिजीवियों, जीवाणुओं या विषाणुओं के मनुष्य के अन्दर प्रवेश कर जाने से बीमारी होती है। बेचारे मच्छर तो रोगाणुओं को एक संक्रमित व्यक्ति से दूसरे स्वस्थ व्यक्ति में भेजने में सहायता बस करते हैं। उदाहरण के लिए मच्छर को विश्वदिवस मनाने का श्रेय देने वाली बीमारी मलेरिया को ही लें तो हम पाएंगे कि मलेरिया किसी में ऐसे नहीं फैलता है, बल्कि इस रोग की वाहक मादा एनोफेलीज मच्छर पहले मलेरिया पैदा करने वाले परजीवी प्लासमोडियम को एक व्यक्ति में डालती है, फिर उससे निकालकर दूसरे व्यक्ति में डालती है और इस तरह मलेरिया बीमारी फैलती है। प्लासमोडियम प्रजातियों के आधार पर मलेरिया के मुख्य प्रकार टर्शियन, क्वार्टन और ट्रोपिका होते हैं। आमतौर पर लोगों को प्लास्मोडियम वाइवैक्स द्वारासामान्य टर्शियनमलेरिया और प्लास्मो-डियम ओवेल द्वारा बिनाइन टर्शियन मलेरिया होता है। इनमें मरीज को बुखार आता है जो हर तीसरे दिन अर्थात 48 घंटों के बाद अपना प्रभाव प्रकट करता है। इसके सामान्य लक्षणों में कमर, सिर, हाथ, पैरों में दर्द, भूख न लगना, कंपकपी के साथ तेज बुखार आना शामिल हैं। प्लास्मोडियम मलेरी से क्वार्टन मलेरिया होता है, इसमें मरीज को हर चौथे दिन के अंतराल पर बुखार आता है। इसमें 72 घंटे में सिर्फ एक बार बुखार आता है। कभी कभीइस प्रकार के मलेरिया से संक्रमित व्यक्ति में प्रोटीन की कमी हो जाने से उसके शरीर सूजन आने लगती है।

प्लासमोडियम फ़ाल्सिपेरम द्वारा होने वाला मलेरिया ट्रोपिकासबसे ख़तरनाक प्रकार माना गया है। इससे कई बार व्यक्ति की मृत्यु का खतरा भी हो सकता है। मादा एनाफिलीज मच्छर के काटने पर उसकी लार के साथ प्लासमोडियम मनुष्य के शरीर में तुरंत यकृत में पहुंचकर कई गुना तेजी से बढ़ते जाते हैं और लाल रक्त कोशिकाओं को प्रभावित करते हैं। मलेरिया परजीवी की सभी प्रजातियां रक्त में पहुंचते ही एक विषाक्त पदार्थ हीमोज़ॉइन टॉक्सिन बनाने लगती है, जो मानव शरीर के लिए काफी खतरनाक होता है। मलेरिया होने पर रक्तहीनता (एनीमिया) के लक्षण दिखने लगते हैं। साथ ही चक्कर आना, सांस फूलना, बुखार, सर्दी, सिरदर्द और उल्टियां इत्यादि जैसे लक्षण दिखाई देते हैं। संक्रमित व्यक्ति के शरीर में जैसे-जैसे मलेरिया परजीवी की संख्या बढ़ती जाती है, व्यक्ति को ठंड, गर्मी और पसीना आने की क्रियाएं एक साथ प्रभावित करती हैं।विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार विश्व में प्रतिवर्ष लगभग पचास करोड़ लोग मलेरियासे पीड़ित होते हैं। जिनमें करीब 27 लाख रोगी जीवित नहीं बच पाते, जिनमें से आधे पांच साल से कम उम्र के बच्चे होते हैं।

मादा एडीज एजिप्टी और एडीज अल्बोपिक्टस नामक मच्छरडेंगू वायरस के कारण होने वाली बेहद पीड़ादायक बीमारी डेंगू बुखार को फैलाते हैं। संक्रमित मादामच्छरों के काटने के 4-10 दिन बाद देंगू के लक्षण दिखाई देते हैं। इनमें अति तीव्र ज्वर, तेज सिरदर्द, आंखों के पीछे दर्द, मांसपेशियों और हड्डियों में दर्द और नाक व मसूड़ों से हल्का खून निकलना और शरीर पर फुंसियां होना शामिल है। हमारे यहां भारत में डेंगू बुखार को 'हड्डीतोड़ बुखार' भी कहते है, क्योंकि इससे पीड़ित लोगों की हड्डियों में असहनीय पीड़ा होती है। डेंगू मच्छर जब किसी व्यक्ति को काटकर उसमें डेंगू विषाणुओं को डालते हैं, तो ये विषाणु मनुष्य के

रक्त में लगभगदो से सात दिनों तक रहते हैं। इसके बाद चार से सात दिनों में डेंगू बुखार के लक्षण दिखने लगते हैं। कभी-कभी लक्षण उभरने में चौदह दिन भी लग सकते हैं। डेंगूबुखार प्रायः बेहद तीव्र होता है और दिन में चार या पांच बार आता है। इसके सामान्य लक्षणों में बुखार, शरीर में तीव्र पीड़ा, सिर दर्द विशेषतौर पर आंखों के पीछे और शरीर पर दाने आना शामिल हैं। डेंगू के तीन प्रकार क्लासिकल डेंगू, डेंगू हेमरेजिक और डेंगू शॉक सिंड्रोम होते है। इनमें से भी क्लासिकल डेंगू एक सामान्य विषाणु जनित बुखार होता है, जो सामान्य इलाज से पांच से सात दिनों में ठीक हो जाता है। डेंगू हेमरेजिक कभी कभी खतरनाक हो सकता है, क्योंकि इसमें प्लेटलेट और श्वेत रक्त कणिकाएं कम होने लगती है। वहीं डेंगू शॉक सिंड्रोम में संक्रमित व्यक्ति धीरे-धीरे बेहोश होने लगता है, उसका रक्त दाब एकदम कम हो जाता है और तेज बुखार के बावजूद भी शरीर ठंडा होता है।

एडिस एजिप्टी और एडीज अल्बो-पिक्टस जैसे संक्रमित मच्छर डेंगू के साथ साथ चिकनगुनिया के विषाणुओं के भी वाहक होते हैं। वैज्ञानिकों और चिकित्सकों को इन मच्छरों ने लगभग परेशान कर रखा है कि उनके काटने पर किसी एक व्यक्ति को डेंगू हो जाता है, जबकि उसी से कोई दूसरा व्यक्ति चिकनगुनिया रोग का शिकार हो जाता है। चिकनगुनिया विषाणु के वाहक ये मच्छर भी बेहद ख़तरनाक माने गए हैं, जो अफ्रीका और एशिया से लेकर लातीनी अमरीका तक पाए जाते हैं। इस मच्छर की पहचान एक जर्मन डॉक्टर जोहान विल्हेम ने 1818 में की थी। इस मच्छर के नामकरण का संबंध इसका यूनानी भाषा में 'बुरा मच्छर' होने से है। चिकनगुनिया वाहक मच्छरों के शरीर पर दिखने वाली बारीक सफ़ेद धारियाँ वैज्ञानिक अध्ययन के लिए इनकी विशेष पहचान होती हैं। डेंगू रोग की ही तरह चिकनगुनिया के एडिस मच्छर विषाणु को मनुष्य के अंदर पहुंचाते हैं। इसमें भी ठीक वैसे ही तेज बुखार और जोड़ों में दर्द होता है। चिकनगुनिया में जोड़ों का दर्द कई सप्ताहों तक रहता है या इसके संक्रमण की वजह से गठिया रोग भी हो सकता है।

कुछ शोधों से यह बात सामने आई है कि चिकुनगुनिया वाले ये मच्छर ज़ीका वायरस जैसी आजकल काफी कहर बरपा रही बीमारी को फैलाने में भी शामिल हैं। हांलाकि यहां मच्छरों के साथ साथ यह भी देखा गया है कि जीका विषाणु संक्रमित मां से उसके नवजात में फैलता है। इसके अलावा यह रक्ताधान और यौन सम्बन्धों से भी फैलता है। इस समय वैज्ञानिक थोड़ा असमंजस में बने हुए हैं क्योंकि जीका को पहचानना बहुत मुश्किल है। इसका कारण यह है कि इन विषाणुओं के कोई विशेष लक्षण सामने नहीं आ पा रहे हैं। लेकिन कुछ जीका विषाणु पर किए शोधों में मच्छरों के काटने के तीन से बारह दिनों के बीच चार में से तीन व्यक्तियों में तेज बुखार, चकत्ते, सिर दर्द और जोड़ों में दर्द के लक्षण देखे गये हैं।

एक और बेहद खतरनाक बीमारी है, जिसको श्लीपद या फीलपाँव या 'हाथीपाँव' या लिम्फेटिक फिलेरियासिस या एलिफेंटियासिस कई नामों से जाना जाता है। इसमें रोगी के पाँव फूलकर हाथी के पाँव के समान मोटे हो जाते हैं। इस खतरनाक बीमारी को फैलाने में भी क्यूलेक्स, एनोफेलिस, एडिस नामक संक्रमित मच्छर की बड़ी भूमिका होती है। ये मच्छर इस रोग को उत्पन्न करने वाले फिलेरियल परजीवी कीड़ों वूक्विरिया बैनक्रॉफी, ब्रुइया मलयी और

ब्रुइया टीमोरी को वहन करने में मदद करते हैं। मच्छर के काटने के बाद शरीर में इसके कीड़े उत्पन्न हो जाते हैं। ये कीड़े लगभग 50,000 सूक्ष्म लार्वा उत्पन्न करते हैं। ये किसी व्यक्ति के खून में प्रवेश करते हैं और संक्रमित व्यक्ति से फिर मच्छरों द्वारा दूसरों में फैलते हैं। सूक्ष्म लार्वा धारित लोग देखने में स्वस्थ दिखते हैं लेकिन वे संक्रामक हो सकते हैं। यहां तक की सालों तक इस बीमारी के कोई लक्षण प्रकट नहीं होते और ये लार्वा इंसान के शरीर में पांच से आठ साल या उससे ज्यादा समय के लिए भी जीवित रह सकता है।

इसी तरह क्यूलेक्स विरनुई और क्यूलेक्स ट्राइटीनियोरिक्स प्रजातियों के मच्छर जापानी एन्सेफलाइटिस नामक वायरस को भी अपने में शरण देकर जापानी एन्सेफलाइटिस बीमारी फैलाने में भी कोई कसर नहीं छोड़ते। मस्तिष्क ज्वर, दिमागी बुखार और भी कई नामों से विश्व में जाने जानी वाली जापानी इन्सेफेलाइटिस बीमारी का शिकार विशेष रूप से बच्चे होते हैं। हांलाकि इस बीमारी का मुख्य वाहक सुअर होते हैं। सूअर के ही शरीर में इस बीमारी के विषाणु पनपते और फलते-फूलते हैं, और फिर मच्छरों द्वारा यह विषाणु सुअर से मानव शरीर में पहुंच जाता है। जब इस वायरस से संक्रमित मच्छर मनुष्य को काटता है, तो यह विषाणु सीधे मनुष्य के केंद्रीय तंत्रिका तंत्र को प्रभावित करके सबसे पहले मस्तिष्क में सूजन पैदा कर देता है। संक्रमित व्यक्ति को ठंड, बुखार, गले में दर्द, सिरदर्द, मतली, थकान और उल्टी जैसे हल्के लक्षण प्रारंभ में दिखते हैं, जो बाद में अनेक तरह की तंत्रिकीय गंभीर जटिलताओं के कारण अंततः स्नायविक विकलांगता और फिर मृत्यु के शिकार हो जाते हैं।

शोध दर्शाते हैं कि जापानी एनसेफे-लिटिस वायरस की ही तरह पीला बुखार और वेस्ट नाइल वायरस को फैलाने में भी मच्छरों का बड़ा योगदान है। स्टीगोमिया फेसियाटाजाति केमच्छर पीला बुखार या पीत ज्वर नामक संक्रामक बीमारी को फैलाते हैं। ये इस बीमारी के रोगजनक विषाणुओं को मनुष्यों में पहुंचाते हैं, जिससे संक्रमित व्यक्ति का यकृत, वृक्क (गुर्दे) और रक्तवाहनियां प्रभावित होती हैं। पीत ज्वर में कॉफी के रंग की उल्टियां और काले दस्त होते हैं। इसके साथ ही मूत्र में एल्बुमिन की मात्रा कम होने और पित्तयुक्त मूत्र व रक्तस्राव के कारण रक्तचाप की कमी एवं पीलिया जैसे लक्षण पाए जाते हैं। किसी व्यक्ति में इस वायरस का संक्रमण हो जाने के कुछ दिन बाद ही इस बारे में पता चल पाता है। यह रोग कर्क तथा मकर रेखाओं के बीच स्थित अफ्रीका तथा अमरीका के भूभागों में अधिक होता है। ऐसी और भी अनगिनत बीमारियां हैं, जो मच्छरों से फैल रही हैं। एक ओर वैज्ञानिक इनको ठीक करने के उपाय खोजते हैं, तो दूसरी ओर मच्छरों से फिर कोई नई बीमारी के फैलने का पता चल जाता है। देखा जाए तो मच्छरों ने इन सभी बीमारियों पर अपना ऐसा एकछत्र राज्य कर रखा है कि इनमें से किसी के लिए भी कोई विशेष उपचार नहीं है। बस इन मच्छरों सके काटने से व्यक्ति जितना बच पाएं, यही सबसे बेहतर उपाय कहा जा सकता है।

ऐसा कहने का एक कारण यह भी है कि जैसे-जैसे वैज्ञानिक मच्छरजनित रोगों पर काबू पाने के उपाय ढूंढ़ने में लगे हैं, वैसे-वसे मच्छर भी दिनोंदिन बलशाली होते जा रहे हैं। उन पर दवाओं और कीटनाशकों का भी असर नहीं पड़ रहा है। अतः अब वैज्ञानिक जीन-एडिटिंग के माध्यम से मच्छरों के रोग-प्रतिरोधी प्रारूप बनाने में जुटे हुए हैं। कुछ दिनों पहले लंदन के इंपीरियल कालेज के वैज्ञानिकों ने ऐसे आनुवांशिक रुप से रुपांतरित बग्स विकसित किये हैं, जो मादा मच्छरों में अंडाणुओं को बनने की प्रक्रिया को समाप्त कर देते है। इस तकनीक को 'जीन ड्राइव' नाम दिया गया है। शोधकर्ताओं का मानना है कि इस तकनीक से बने रुपांतरित मच्छर धीरे-धीरे मलेरिया मच्छरों की प्रजाति में फैल जायेंगे और इस तरीके से मलेरिया का धरती से उन्मूलन हो जायेगा। यह सिर्फ एक आशा कही जा सकती है, इसमें कितनी सच्चाई होगी यह आने वाला समय ही बताएगा। संक्षिप्त में कह सकते हैं कि मच्छरों और वैज्ञानिकों के बीच जंग जारी है, पर शायद कोई किसी से कम मानने को तैयार नहीं है। यह कहना अतिश्योक्ति न होगा कि फिलहाल बीमारियों के शहंशाह बने हुए हैं संक्रमण फैलाने वाले ये वाहक मच्छर।

shubhratara vi@gmail.com

❑❑❑

अंग प्रत्यारोपण
उपलब्धियां और संभावनाएं

प्रज्ञा गौतम

प्रज्ञा गौतम ने विगत वर्षों में तेजी से विज्ञान लेखन में अपनी पहचान बनाई है। आपने विज्ञान प्रगति तथा विज्ञान कथा में नियमित लेखन किया। आपने बॉटनी में स्नातकोत्तर तक शिक्षा प्राप्त की तथा विज्ञान शिक्षक के रूप में अपना कॅरियर शुरू किया। वैज्ञानिक आधार पर लेखन करने में आपको महारत हासिल है। गहरी वैज्ञानिक दृष्टि और साहित्यिक अभिरुचि के चलते आपकी रचनाएँ मुक्ता, अहा जिंदगी, कादम्बिनी आदि में प्रकाशित हुई हैं। वर्तमान में आप कोटा, राजस्थान में निवासरत हैं।

अभी हाल ही में एक समाचार से चिकित्सा जगत में उत्साह की लहर दौड़ गयी। समाचार था इजराइली चिकित्सकों द्वारा बायो- इंक निर्मित प्रथम कृत्रिम 3-D प्रिंटेड हृदय का विकास। ऊतक अभियांत्रिकी द्वारा विकसित बिलकुल प्राकृतिक अंग के सदृश कृत्रिम अंग चिकित्सा के क्षेत्र में एक क्रांतिकारी उपलब्धि हैं। हालाँकि अंग प्रत्यारोपण का इतिहास अब पुराना हो चला है किन्तु इस क्षेत्र में आने वाली कुछ कठिनाइयाँ चिकित्सकों के लिए सिरदर्द रही हैं, जैसे अंग अनुपलब्धता और अंग असंगति। रोगी को वांछित अंग के लिए महीनों प्रतीक्षा करनी पड़ सकती है। अनेक बार अंग अनुपलब्धता की स्थिति में रोगी की मृत्यु भी हो जाती है। भारत में अंग-दान के प्रति जागरूकता के अभाव में एक मिलियन नागरिकों पर मात्र 0.8 दानदाता उपलब्ध हैं। भारत में प्रतिवर्ष 85000 नए यकृत रोगी और दो लाख गुर्दा रोगी पंजीकृत होते हैं जिनमें 3-4 प्रतिशत रोगियों को ही अंग उपलब्ध हो पाते हैं। इसी प्रकार प्रतिवर्ष लगभग 50000 हृदय रोगियों को हृदय प्रत्यारोपण की आवश्यकता होती है। सन 1994 से 2014 तक भारत में मात्र 350 हृदय प्रत्यारोपण हुए। यद्यपि राष्ट्रीय अंग और ऊतकप्रत्यारोपण संगठन (NOTTO) की 2014 में स्थापना के बाद से भारत में अंग प्रत्यारोपण में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। बावजूद इसके भारत के प्रत्येक सेंटर पर लगभग 10-20 रोगी हर समय प्रतीक्षा सूची में होते हैं। इसके अतिरिक्त अंग दान के समय रक्त और अंग की संगतता के मिलान सम्बन्धी लम्बी जांच प्रक्रियाएं हैं जिनसे अंग दाता और ग्राही दोनों को ही गुजरना पड़ता है। प्रत्यारोपण के पश्चात रोगी को लम्बे समय तक प्रतिरक्षा दमनकारी औषधियां दी जाती हैं ताकि शरीर बाहरी अंग को स्वीकार कर ले। इन औषधियों के अनेक प्रतिप्रभाव भी दृष्टिगोचर हो सकते हैं जैसे विविध प्रकार के संक्रमण और कैंसर जैसी व्याधि। रोगी के स्वयं के ऊतकों से निर्मित त्रिविमीय मुद्रित (3-D Printed) कृत्रिम अंग के प्रत्यारोपण से उपरोक्त सभी व्यवहारिक कठिनाइयों का निराकरण होने की संभावना है। इसके अतिरिक्त अंग तस्करी जैसे घृणित कृत्यों पर भी रोक लगेगी।

अंग प्रत्यारोपण की आवश्यकता

हमारा शरीर अनेक जटिल अंग-तंत्र प्रणालियों से निर्मित है जिनके परस्पर सहयोग से शरीर की समस्त गतिविधियाँ संचालित होती हैं।किसी एक अंग-तंत्र का प्रमुख अंग यदि भली प्रकार कार्य नहीं करता है तो सम्पूर्ण तंत्र प्रभावित होता है और इसका प्रभाव शरीर की अन्य प्रणालियों पर भी पड़ता है। हृदय, फुफ्फुस (lungs), वृक्क (kidney) और यकृत (liver) शरीर के ऐसे महत्त्वपूर्ण अंग हैं जिनका स्वस्थ रहना और सुचारू रूप से कार्य करना जीवन के लिए अति आवश्यक है। किन्तु वर्तमान असंतुलित आधुनिक जीवन शैली और पर्यावरणीय प्रदूषण ने शरीर के इन महत्त्वपूर्ण अंगों की कार्य क्षमता को बुरी तरह प्रभावित किया है। उच्च रक्तचाप और मधुमेह आधुनिक जीवन शैली के सामान्य रोग हैं जो वृक्क और हृदय पर विपरीत प्रभाव डालते हैं। अंग विफलता का दूसरा प्रमुख कारण है संक्रमण जिसके कारण फेफड़े, वृक्क और यकृत जैसे अंगों को गंभीर क्षति पहुँच सकती है। किसी दुर्घटना या बीमारी के कारण शरीर के किसी अंग विशेष के प्रभावित होने पर भी अंग प्रत्यारोपण की स्थिति उत्पन्न हो सकती है।इसके अतिरिक्त कई बार शिशु में जन्मजात ही कोई दोष होता है जैसे हृदय में छिद्र होना, हृदय का वाल्व खराब होना या शरीर में एक ही वृक्क होना।
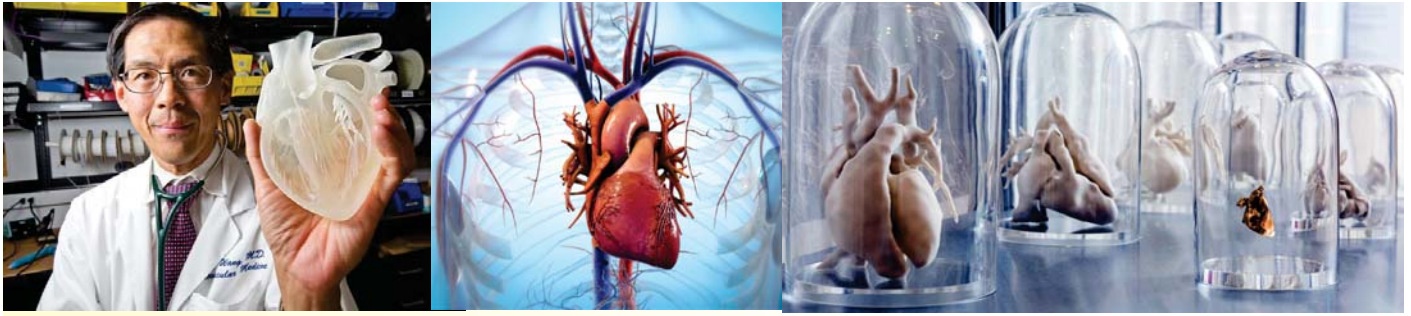
एलोग्राफ्ट प्रत्यारोपण में चूँकि दानदाता और ग्राही आनुवंशिक रूप से भिन्न होते है अतः ग्राही के रक्त में उपस्थित प्रतिजीवी उग्र प्रतिक्रिया करके प्रत्यारोपित अंग को नष्ट करने का प्रयास करते हैं। इस स्थिति से बचाव के लिए अंग-दान से पहले PRA टेस्ट (पैनल रिएक्टिव एंटीबाडी टेस्ट) किया जाता है। यह एक प्रकार की रक्त- जांच है जिसमें अंग-ग्राही के रक्त में उपस्थित प्रतिजीवी समूह की दाता की श्वेत रक्त कोशिकाओं पर स्थित विभिन्न प्रतिजनों से प्रतिक्रिया करवाई जाती है।

यदि चिकित्सा की सभी उपलब्ध तकनीकों से भी अंग विशेष का उपचार असंभव हो तो अंग प्रत्यारोपण ही एक मात्र विकल्प बचता है। चिकित्सा जगत में सम्पूर्ण मस्तिष्क को छोड़कर अन्य सभी महत्त्वपूर्ण अंगों यथा हृदय, वृक्क, फुफ्फुस, यकृत, आंत्र, अग्नाशय, थाइमस ग्रंथि, और विभिन्न ऊतक जैसे त्वचा, नेत्र- कॉर्निया, अस्थि, कर्ण उपास्थि, पेशी, हृदय वाल्व, तंत्रिका और रक्त वाहिनी आदि का सफलतापूर्वक प्रत्यारोपण किया जा रहा है। मस्तिष्क ऊतकों का भी आंशिक रूप से प्रत्यारोपण किया जा चुका है।

प्राकृतिक अंग प्रत्यारोपण- विभिन्न प्रकार

अंग-दाता जीवित या मृत हो सकता है जो अंग विशेष पर निर्भर करता है। अंग या ऊतक स्वयं, उसी जाति के जीव या भिन्न जाति के जीव से लिया जा सकता है। अंग दाता के प्रकार के आधार पर अंगदान को तीन प्रमुख प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है-ऑटोग्राफ्ट, एलोग्राफ्ट और जीनोग्राफ्ट। ऑटोग्राफ्ट वह प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत व्यक्ति का स्वयं का ही ऊतक प्रत्यारोपित किया जाता है जैसे त्वचा, रक्त वाहिनी, आदि। एलोग्राफ्ट में एक व्यक्ति का अंग या ऊतक अन्य व्यक्ति को प्रत्यारोपित किया जाता है। एलोग्राफ्ट प्रत्यारोपण में चूँकि दानदाता और ग्राही आनुवंशिक रूप से भिन्न होते है अतः ग्राही के रक्त में उपस्थित प्रतिजीवी उग्र प्रतिक्रिया करके प्रत्यारोपित अंग को नष्ट करने का प्रयास करते हैं। इस स्थिति से बचाव के लिए अंग-दान से पहले PRA टेस्ट (पैनल रिएक्टिव एंटीबाडी टेस्ट) किया जाता है। यह एक प्रकार की रक्त- जांच है जिसमें अंग-ग्राही के रक्त में उपस्थित प्रतिजीवी समूह की दाता की श्वेत रक्त कोशिकाओं पर स्थित विभिन्न प्रतिजनों से प्रतिक्रिया करवाई जाती है। PRA- टेस्ट सफल रहने पर ही उक्त अंग का प्रत्यारोपण किया जाता है। आइसोग्राफ्ट भी एक प्रकार का एलोग्राफ्ट है किन्तु इसमें दानदाता और ग्राही अभिन्न जुड़वां होते हैं। इनके आनुवंशिक रूप से बिलकुल समान होने के कारण अंग अस्वीकार की स्थिति नहीं बनती। जीनोग्राफ्ट प्रत्यारोपण में एक जाति के जीव का अंग अन्य जाति के जीव में प्रत्यारोपित किया जाता है। अंग पत्यारोपण के इतिहास में प्रारंभिक कई प्रकार के प्रत्यारोपण इस प्रकार के किए गये थे। सामान्य तौर पर ऐसे प्रत्यारोपण असफल रहते हैं किन्तु सूअर के हृदय- वाल्वों का मनुष्य में प्रत्यारोपण सफल रहा है।

कृत्रिम अंग : चिकित्सा जगत में एक नवीन युग का सूत्रपात

चिकित्सकों के सम्मुख प्रत्यारोपण के लिए प्राकृतिक अंगों की अनुपलब्धता की स्थिति प्रारंभ से ही रही है। इस क्षेत्र में कृत्रिम अंगों की आवश्यकता सदा से अनुभव की जाती रही है।
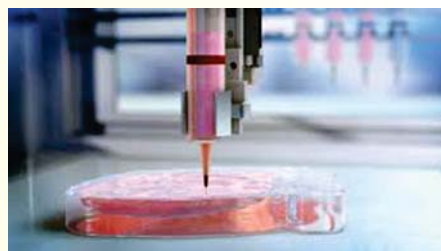
वैज्ञानिकों ने कृत्रिम अंग विकसित करने के प्रयास काफी पहले आरम्भ कर दिए थे।सर्वप्रथम सन 1885 में मैक्सवोनफ्रे और मैक्स ग्रूबर (जर्मनी) ने संयुक्त रूप से हार्ट- लंग मशीन का विकास किया था। इसके बाद बीसवीं सदी में भी इस क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई। कपड़े के बनेकृत्रिम धमनी- ग्राफ्ट, डायलिसिस उपकरण, हृदय और रक्त- परिसंचरण सहायक उपकरण सफल रूप से प्रत्यारोपित किए गये। ये प्रारंभिक कृत्रिम अंग सामान्यतया संश्लेषित पदार्थों से बने थे।

ऊतक अभियांत्रिकी और बायो- इंजीनियर्ड अंग

इस क्षेत्र में एक बड़ी सफलता सन 2006 में मिली जब अमेरिकी शोधार्थियों (वेकफारेस्ट यूनिवर्सिटी स्कूल ऑफ़ मेडिसिन,यू.एस.ए.) ने कृत्रिम मूत्राशय का प्रयोगशाला में विकास किया। उन्होंने मूत्राशय के आकार के संश्लेषित जैव-अपघटनीय ढाँचे पर रोगी के मूत्राशय से ली हुई कोशिकाओं को विकसित कर कृत्रिम मूत्राशय का विकास किया। चिकित्सकीय जगत में यह एक ऐतिहासिक घटना थी। नवीन तकनीकों के विकास के साथ-साथ इस क्षेत्र में निरंतर प्रगति हो रही है। इसके बाद 2010 में बैप्टिस्ट मेडिकल सेंटर वेकफारेस्ट यूनिवर्सिटी के बायो-इंजिनीयर्स ने मिनिएचर यकृत विकसित किये। उन्होंने पशुओं के यकृत के अकोशिकीय ढाँचे पर मानव यकृत कोशिकाओं को सफलतापूर्वक उगा कर इन छोटे-छोटे यकृतों का विकास किया। 2011 में साइटोग्राफ्ट टिश्यू इंजिनीयरिंग कंपनी ने एक वृक्क रोगी की स्वयं की कोशिकाओं से विकसित रक्त वाहिनी

सन 2012 में दक्षिणी कोरियाई वैज्ञानिकों ने स्टेम कोशिकाओं से सर्वप्रथम कृत्रिम श्वासनली विकसित की और उसका 2- वर्षीय बालिका में सफल प्रत्यारोपण किया। ताकेबे और अन्य जापानी वैज्ञानिकों की टीम ने अलग-अलग प्रकार की स्टेम कोशिकाओं से नन्हें यकृत विकसित किए। रोगी की स्वयं की स्टेम कोशिकाओं द्वारा विकसित रक्त वाहिनी का भी सफल प्रत्यारोपण किया जा चुका है। प्रयोगशाला में स्टेम कोशिकाओं द्वारा अन्य जटिल अंग जैसे फेफड़े, हृदय, थाइमस, और मस्तिष्क के नन्हे प्रतिरूप बनाये जा चुके हैं। सन 2013 में आस्ट्रिया के वैज्ञानिकों ने स्टेम कोशिकाओं से नन्हा मस्तिष्क तैयार किया। मस्तिष्क का यह प्रतिरूप, नौ सप्ताह के भ्रूण के मस्तिष्क के समरूप था।

को उसके शरीर में प्रत्यारोपित किया ताकि डायलिसिस आसानी से किया जा सके। अधिक समय नहीं हुआ जब मेसाचुसेट्स जनरल हॉस्पिटल और हार्वर्डमेडिकल स्कूल के वैज्ञानिकों ने अंतरा-कोशिकीय ढाँचे पर कोशिकाओं को उगा कर नन्हा हृदय तैयार किया जो कि कार्यशील था।

कैसे किया जाता है विकास

बायो- इंजीनियर्ड अंग प्रयोगशाला में विकसित कृत्रिम अंग है जिसे प्राकृतिक अंग के स्थान पर लगाया जाता है। इस प्रक्रिया में एक जटिल त्रिविमीय ढाँचे (अंग विशेष का प्रतिरूप) जो कि अंतरा कोशिकीय पदार्थया संश्लेषित जैव अपघटनीय पदार्थ का बना होता है, पर प्राकृतिक कोशिकाओं, ऊतकों और पेशियों को विकसित किया जाता है। इस प्रकार बिलकुल प्राकृतिक अंग के सदृश अंग तैयार हो जाता है। यह प्रक्रिया सामान्यतया निम्न चरणों में संपन्न की जा जाती है-

- मानव या अन्य प्राणी के अंग से कोशिकाओं को पृथक कर दिया जाता है। इस क्रिया के फलस्वरूप अंतरा कोशिकीय पदार्थ ECM (extracellular matrix) का जटिल त्रिविमीय ढांचा शेष रहता है।इस से प्रतिजनों को पृथक कर लिया जाता है ताकि इसकी प्रतिरक्षक क्षमता समाप्त हो जाये। प्रतिजनों को पृथक करने के लिए इसे आयनिक या ऋण आयनिक अपमार्जकों से धोया जाता है।
- इस त्रिविमीय ढांचे का सम्पूर्ण विश्लेषण किया जाता है। इसकी मूल प्राकृतिक संरचना और जैवीय गुणों की जांच की जाती है।
- वांछित मानव अंग- विशेष की कोशिकाओं को पृथक करके इस त्रिविमीय ढाँचे पर उगाया जाता है।

कोशिकाएं रोगी के ही अंग से निष्कर्षित की जायें तो अंग अस्वीकार की स्थिति नहीं बनती। यह चरण सबसे महत्त्वपूर्ण होता है। इसमें यह ध्यान रखना होता है कि एक सम्पूर्ण अंग के विकास के लिए कोशिकाओं की संख्या कितनी हो और अंग के प्रत्येक भाग के विकास के लिए विशिष्ट कोशिकाओं का सही अनुपात क्या हो। एक पूर्णतया कार्यशील अंग के विकास के लिए यह अनिवार्य है।

स्टेम कोशिकाओं द्वारा विकसित कृत्रिम अंग

बायो-इंजीनियर्ड अंगों का विकास करने के लिए अंग विशेष केम्ब्ड ढांचे पर उसी अंग से ली हुई परिपक्व कोशिकाओं को विकसित किया जाता है इसके विपरीत कृत्रिम विकसित अंग प्रयोगशाला में विभिन्न प्रकार की स्टेम कोशिकाओं से विकसित किए जाते हैं। ये दोनों भिन्न प्रक्रियाएं हैं। स्टेम कोशिकाएं परिपक्व अंग या भ्रूण से प्राप्त की जा सकती हैं। ये अविभेदित कोशिकाएं होती हैं जिनमें किसी भी प्रकार की कोशिकाओं में बदलने की क्षमता होती है। कृत्रिम रूप से इनके किसी जीन को सक्रिय कर अंग विशेष की कोशिकाओं में विभेदन के लिए प्रेरित किया जा सकता है। कृत्रिम विकसित अंगों का इतिहास अधिक पुराना नहीं है। सन 2012 में दक्षिणी कोरियाई वैज्ञानिकों ने स्टेम कोशिकाओं से सर्वप्रथम कृत्रिम श्वासनली विकसित की और उसका 2-वर्षीय बालिका में सफल प्रत्यारोपण किया। ताकेबे और अन्य जापानी वैज्ञानिकों की टीम ने अलग-अलग प्रकार की स्टेम कोशिकाओं से नन्हें यकृत विकसित किए। रोगी की स्वयं की स्टेम कोशिकाओं द्वारा विकसित रक्त वाहिनी का भी सफल प्रत्यारोपण किया जा चुका है। प्रयोगशाला में स्टेम कोशिकाओं द्वारा अन्य जटिल अंग जैसे फेफड़े, हृदय, थाइमस, और मस्तिष्क के नन्हे प्रतिरूप बनाये जा चुके हैं। सन 2013 में आस्ट्रिया के वैज्ञानिकों ने स्टेम कोशिकाओं से नन्हा मस्तिष्क तैयार किया। मस्तिष्क का यह प्रतिरूप, नौ सप्ताह के भ्रूण के मस्तिष्क के समरूप था। ऐसे प्रतिरूप शाइजोफ्रेनिया जैसे अनेक मस्तिष्क विकारों के अध्ययन में उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। ये कृत्रिम विकसित अंग अभी प्रयोगशाला स्तर पर ही हैं। इस क्षेत्र में निरंतर अनुसंधान चल रहे हैं।

3-D प्रिंटेड कृत्रिम अंग

बायो-इंजीनियर्ड अंगों के निर्माण में कोशिकाओं की वृद्धि के लिए किसी पशु या मानव अंग के अंतरा- कोशिकीय आधार ढाँचे का इस्तेमाल किया जाता रहा है जो वृद्धि करती हुई कोशिकाओं को सहारा प्रदान करता है। इस तकनीक में भी कई बार ढाँचे से प्रतिजनों के पूर्णतया पृथक न हो पाने के कारण अंग अस्वीकार की स्थिति बन सकती है। रोगी के स्वयं के ऊतक से निर्मित बायो- इंक द्वारा बिना किसी ढांचे के सम्पूर्ण अंग की परत दर परत त्रिविमीय प्रिंटिंग नवीनतम तकनीक है जो अंग अस्वीकार की स्थिति को पूर्णतया समाप्त कर देगी।

क्या है 3- डी प्रिंटिंग ?

इस प्रक्रिया में जीवित कोशिकाओं का एक स्मार्ट जेल में निस्पंदन लिया जाता है। एक कम्प्युटराइज्ड पिपेटनुमा प्रिंटर से अंग की त्रिविमीय जटिल परत दर परत प्रिंटिंग की जाती है। कृत्रिम अंग विकसित करने की इस आधुनिकतम तकनीक से निकट भविष्य में असीम संभावनाओं के द्वार खुलने का अनुमान है। यद्यपि सम्पूर्ण रक्तवाहिनियों युक्त अंग जिनमें अत्यंत महीन रक्त केशिकाएं भी सम्मिलित हैं, की त्रिविमीय प्रिंटिंग अत्यंत जटिल और चुनौती भरा कार्य है। पूर्व में विकसित त्रिविमीय कार्डियक पैच रक्त वाहिनियों से रहित थे। जब इन पर बाद में रक्तवाहिनियों की प्रिंटिंग की गयी तो अपेक्षित मोटाई प्राप्त नहीं हुई। हाल ही में नदाव नूर और अन्य इजराइली वैज्ञानिकों ने रक्त वाहिनियों युक्त त्रिविमीय प्रिंटेड कार्डियक पैचेज और कार्यशील हृदय विकसित कर अंग त्रिविमीय प्रिंटिंग के क्षेत्र में नवीन इतिहास रचा।

ऐसे हुई हृदय की त्रिविमीय प्रिंटिंग

नूर और उनकी टीम ने रोगी के शरीर के वसीय ऊतक का कुछ भाग निकालकर पूर्णतया व्यक्तिगत हृदय पैच तैयार किया। वसीय ऊतक से कोशिकीय और अकोशिकीय भागों को पृथक किया गया। कोशिकाओं को पुनर्निर्देशित कर प्लुरिपोटेंटस्टेम कोशिकाओं में बदला गया। इन स्टेम कोशिकाओं को दो प्रकार की कोशिकाओं में विभेदन के लिए प्रेरित किया गया-EC या एंडोथिलियल कोशिकाएं (रक्त वाहिनियों के विकास के लिए) और CM या कार्डियो मायोसाइट्स (हृदय पेशियों के विकास के लिए)। शेष अकोशिकीय आधारी ऊतक (मेट्रिक्स) को संसाधित कर एक हाइड्रोजेल में बदला गया। यह एक जेली के समान द्रव पदार्थ था जिसमें कोलेजन तंतु थे। इस हाइड्रोजेल में दोनों प्रकार की कोशिकाओं को अलग-अलग निस्पंदित कर दो प्रकार की बायो-इंक बनाई गयी। त्रिविमीय प्रिंटिंग में दोनों प्रकार की बायो-इंक का उपयोग कर जब कार्डियक पैच बनाया गया तो यह रक्त-कोशिकाओं के जाल युक्त था। इस कार्डियकपैच ने प्रत्यारोपण पश्चात हृदय के रोगी ऊतकों को प्रतिस्थापित कर दिया। यह कार्डियक पैच पूर्ण कार्यशील हृदय में विकसित होने में सक्षम है।

चूँकि सम्पूर्ण पदार्थ यथा जीवित कोशिकाएं और आधारी पदार्थ रोगी के स्वयं के शरीर से लिए गये तो अंग अस्वीकार की स्थिति उत्पन्न नहीं होती।

अंग-प्रत्यारोपण का भविष्य और चुनौतियाँ

हमने देखा कि कृत्रिम अंग विकसित करने के लिए वैज्ञानिक विशेष रूप से तीन तकनीकों पर अनुसंधानरत हैं-1. अंग विशेष के ढाँचे पर विशिष्ट कोशिकाओं को उगाकर 2. संवर्धन माध्यम में सीधे ही स्टेम कोशिकाओं द्वारा अंग का विकास 3. बायो- इंक द्वारा अंग की त्रिविमीय प्रिंटिंग। परत दर परत त्रिविमीय प्रिंटिंग से कृत्रिम अंग का विकास नवीनतम तकनीक है जो असीम संभावनाओं से भरी है। यद्यपि इस क्षेत्र में कुछ चुनौतियाँ हैं जिनके निराकरण के लिए वैज्ञानिक प्रयासरत हैं जैसे-अंग विकास के लिए उपलब्ध कोशिकाओं की सीमित संख्या और अंग में पूर्ण रक्त परिसंचरण के लिए अत्यंत महीन रक्त वाहिनियों का विकास। इसके अलावा उपलब्ध तकनीकें अभी महंगी हैं और जन- साधारण की पहुँच के बाहर हैं। लेकिन यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि भविष्य में कृत्रिम अंग प्रत्यारोपण सर्व सुलभ होने से अंग अनुपलब्धता की स्थिति पूर्णतया समाप्त हो जाएगी। निःसंदेह अंग विफलता के कारण होने वाली मृत्यु दर में तो कमी आएगी ही साथ में अंग नवीनीकरण द्वारा मनुष्य के चिर युवा बने रहने का स्वप्न भी पूर्ण होगा।

pragyamaitrey@gmail-com

□□□

कठिन बीमारी में सहजता से जिए वे

डॉ. दिव्या पाण्डेय

डॉ. दिव्या पाण्डेय डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर मेडिकल कॉलेज रोहिणी दिल्ली में सीनियर रेज़ीडेंट के पद पर कार्यरत हैं। वे एक अच्छी रेडियोलॉजिस्ट और विज्ञान संचारक हैं। पेशे से डॉक्टर और स्वभाव से कवि दिव्या पाण्डेय की कुछ आलेख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' में उन्हें पहली बार छापने में हमें हर्ष है।

आज जिस बीमारी की चर्चा हम इस अंक में करने जा रहे हैं उसकी प्रसिद्धि का श्रेय उसके बीमार की ख्याति को जाता है। यों तो शारीरिक अक्षमता का संबंध अनेकों और सामान्य बीमारियों से ए.एल.एस. की तुलना में कहीं ज्यादा है, इसकी घटनात्मक-आवृत्ति (4/100,000) बेहद कम होने की वज़ह से लेकिन हाल ही में सदी के महान वैज्ञानिक स्टीफन हॉकिंग के अवसान-पश्चात समाचार-पत्रों और न्यूज़-चैनलों ने इसे घर-घर पहुँचा दिया है। इसीलिए मुझे कोई अचरज नहीं हुआ जब कुछ दिनों पहले इंजीनियरिंग तृतीय वर्ष में पढ़ने वाले ममेरे भाई ने फोन पर हालचाल लेने के बाद यह भी पूछ डाला कि दीदी यह ए.एल.एस. क्या होता है? यह नर्वस सिस्टम की बीमारी है या मसल्स की? स्टीफन हॉकिंग को जब यह इतने सालों से थी फिर भी वह इतना कुछ कैसे सोच पाते थे ! उनकी व्हील चेयर वाली तस्वीर तो पहले भी देखी थी पर इस ए.एल.एस.के बारे में कल ही सुना। यह सब सवाल किसी एक मन के नहीं बल्कि बहुतेरे जिज्ञासु-मनों के हैं तो आइए कोशिश करते हैं इनके जवाब ढूंढने और साथ ही साथ ए.एल.एस.से जुड़ी कुछ और ज़रूरी बातें जानने की।

ए.एल.एस. जिसका कि दूसरा नाम 'लूगहरिंग डिजीज़' भी है, यह स्टीफन हॉकिंग से पहले एक और बेहद प्रतिभाशाली और कामयाब शख्सियत को अपना शिकार बना चुकी थी। 'आयरन-हॉर्स' के नाम से मशहूर लूगहरिंग नामक अमेरिकी बेसबॉल खिलाड़ी का कॅरियर अपनी बुलंदियों पर था उस समय। बेहद संघर्षमय बचपन और युवावस्था के बाद सन उन्नीस सौ सैंतीस-अड़तीस में वह अपना स्वर्णिम काल जी रहा था। इस बीच अनेकों रिकॉर्ड भी उसने अपनी झोली में डाल लिए थे। लेकिन साल-छः महीने बाद ही मैच दर मैच उसके प्रदर्शन में आई गिरावट न केवल उसके प्रशंसकों बल्कि विशेषज्ञों के लिए भी चिंताजनक थी। शुरुआत में जिसे थकावट या आउट-ऑफ-फॉर्म होना समझा गया वही बाद में 'लू' के मैदान में लड़खड़ाने, स्ट्रोक्स केमिस-प्लेस होने और गति असामान्यता के चलते उसके मैदान में उतरने की बजाय दर्शक दीर्घा में बैठकर एक्स्ट्रा प्लेयर लिस्ट में पहुँचने की वजह बनी। उसकी रहस्यमई तरीके से बढ़ती अक्षमता को देखकर 'लू' के परिवार वालों ने मेयो-क्लीनिक संपर्क किया जहाँ बहुत सारी ज़रूरी जाँचों के बाद उसकी ए.एल.एस. होने की पुष्टि हुई, और इस तरह यह बीमारी आज भी अमेरिका में 'लू-गहरिंगडिजीज़' के नाम से मशहूर है। विज्ञान का भरसक प्रयास रहता है कि किसी भी बीमारी का नामकरण इसके उच्चारण के साथ ही इसमें क्या-कुछ होने की एक मोटी-मोटी तस्वीर हमारे हमारे सामने प्रस्तुत कर सके। हालाँकि उसके लिए बोलने-सुनने वाले को मानव-शरीर-क्रिया विज्ञान की मूलभूत बातों का ज्ञान होना भी आवश्यक है। यहाँ हम कुछ सरल शब्दों में इस विचार को समझने की कोशिश करेंगे।

हमारे शरीर में मूलतः तीन प्रकार की मांसपेशियाँ होती हैं – १.ऐच्छिक २.अनैच्छिक एवं ३.हृदय मांसपेशियाँ। ए.एल.एस.के रोग जनन का संबंध पहले प्रकार की मांसपेशियों यानी ऐच्छिक से है जिनका संचालन हमारी इच्छा से मस्तिष्क द्वारा होता है। इन मांशपेशियों में विभिन्न संवेदनाएँ जैसे स्पर्श, पीड़ा, ताप, शीत इत्यादि हमारी त्वचा में अवस्थित विभिन्न संवेदांगों द्वारा ग्रहण की जाती हैं जिनसे जुडी ग्रहणशील तंत्रिकाएँ यानी सेंसरी-नर्वसइन संवेदनाओं को क्रिया-विभव यानी एक्शन-पोटेंशिअल में परिवर्तित कर सिग्नल रूप में निर्णायक मष्तिष्क तक पहुँचाती हैं जो कि संवेदना के प्रकार, तीव्रता, समय, परिस्थिति के अनुसार अपना निर्णय प्रेरक-तंत्रिकाओं के माध्यम से सम्बन्धित मांसपेशी को प्रेषित करता है जो कि उसका आदेश मानते हुए तदनुरूप अपनी भूमिका निभाती है।

संवेदना ग्रहण करने से लेकर उसे मस्तिष्क को पहुँचाने और वहाँ से उचित दिशा-निर्देशों को वापस कार्यकारी मांसपेशियों तक पहुंचाने का एक तय चैनल अथवा पाथ-वे होता है। इन सब में से किसी एक के भी रास्ता भूल जाने यानी रोग ग्रस्त हो जाने पर हम संवेदनाओं को ग्रहण न कर पाने से लेकर उनके अनुरूप क्रियान्वन न कर पाने में असक्षम हो सकते हैं।

ए.एल.एस. के नाम करण में प्रयुक्त तीनों शब्द हमें इसमें मरीज की अवस्था का नाम, पिन-कोड, फोन नंबर सहित सही-सही पता बताते हैं। वैज्ञानिक शब्दावली में 'ट्रॉफिक' शब्द का संबंध उस कारक से है जो वृद्धि एवं विकास में सहायक हो। 'मायो' यानी कि मांसपेशी और 'ए' का प्रयोग हम सब बचपन से ही विलोम शब्द बनाने के लिए करते आ रहे अर्थात एमयोट्रॉफिक वे कारक हैं जो मांसपेशियों की वृद्धि एवं विकास के लिए अहितकारी है।

'लेटरल' उस मोटर पाथ-वे का नाम है जो इस बीमारी में सर्वाधिक प्रभावित होता है। और 'स्क्लेरोसिस' उत्तकीय दृढ़न की वह अवस्था है जो कि जीनिय उत्परिवर्तन के फलस्वरुप तंत्रिकाओं में विशेष प्रकार के असामान्य प्रोटीन के जमाव से उत्पन्न होती है जिससे वे सुचारु-सिग्नल-सम्प्रेषण योग्य नहीं रहतीं।

शतकाधिक्य अनुसंधानों के बाद भी ए.एल.एस.के सही-सही कारणों का अभी तक पता नहीं चल पाया है। इसके दो मुख्य प्रकार हैं पहला 'फैमिलियल' जो कि पारिवारिक अनुवांशिकी से संबंधित है और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में जाने की संभावना रखता है, दूसरे यानी स्पोरेडिक प्रकार में जीनोम में होने वाला उत्परिवर्तन इसकी वजह बनता है। उत्परिवर्तन अनुवांशिक संरचना में यकायक होने वाला स्थाई परिवर्तन है जिसकी वजह रासायनिक, पर्यावरणिक अथवा विकिरण सम्बन्धी भी हो सकती है।
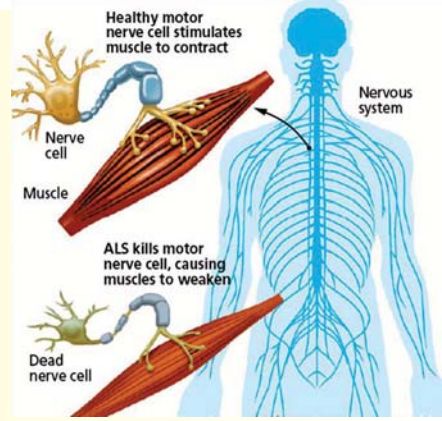
इसकी दस्तक मरीज़ की बदली आवाज़ हो सकती है जिसे सबसे पहले उसका कोई प्रिय यह कहकर जताए कि 'कुछ दिनों से तुम्हारी आवाज़ ज़रा बदली-बदली लग रही है या यों कहूँ कि फ़नी लग रही है'- ऐसा स्वरतंत्र यानी वोकल-एपरेटस की मोटर तंत्रिकाओं के प्रभावित होने से होता है। यह पहले-पहल एक एथलीट को लड़खड़ाने पर मजबूर करती है फिर उसके हाथ में छड़ी थमाती है और कुछ महीनों में वह व्हीलचेयर पर पहुँच जाता है। बीमारी का प्रकार और उसकी आक्रमकता तय करती है मरीज के सदा के लिए बिस्तर पर पहुंचने का अंतराल। रोगी की लिखावट का बदलना, चम्मच का हाथ से छूटना या कॉफी पीते-पीते हाथ काँपना, इनमें से कुछ भी ए.एल.एस. के शुरुआती लक्षण हो सकते हैं। इन सभी लक्षणों को हम कमज़ोर होती माशपेशियों की लाचारी से आसानी से समझ सकते हैं।

ए.एल.एस. के बारे में जो बात बेहद सटीक है वह यह कि यह बीमारी रोगी मात्र को ही नहीं बल्कि पूरे परिवार को समग्र रूप से वहन करनी होती है।

मरीज़ की धीरे-धीरे कमजोर पड़ती मांसपेशियाँ उसे शारीरिक रूप से असक्षम बना देती है लेकिन अधिकांश मामलों में रोगी अपनी मानसिक क्षमता जस की तस बरकरार रखता है और यह पहलू उसकी सेवा-सुश्रुषा से खासा जुड़ा हुआ है। चलने में असक्षम मरीज अपना अधिकतर समय व्हीलचेयर और बाद में बिस्तर पर बिताता है जहाँ समय-समय पर, हफ़्ते में कम से कम तीन बार उसकी मांसपेशियों, विशेष तौर पर गर्दन, हाथ-पैर और हथेली को व्यायाम की ज़रूरत होती है और इसके लिए वह पूरी तरह अपने केयर टेकर पर निर्भर होता है।

जबड़े और भोजन नली की मांसपेशियों के अशक्त हो जाने से मरीज को भोजन चबाने और निगलने में कठिनाई होती है जिससे उसका गिरता स्वास्थ्य और भोजन के श्वास-नली में जाने की संभावनाओं और खतरे को देखते हुए भोजन को सीधे ही आँतों में पहुँचाने का उपाय ढूँढा जाता है। स्थाई तौर पर यह व्यवस्था सर्जरी के जरिए ही संभव है जिसमें

छोटी आँत का एक सिरा बाहर की तरफ निकालकर ट्यूब से जोड़ दिया जाता है। इस रास्ते से मरीज को जरूरी पोषण तरल अथवा अर्द्ध ठोस रूप में उपलब्ध करवाया जाता है। चूँकि इस ऑपरेशन का उद्देश्य मरीज को भोजन उपलब्ध करवाना है इसलिए यह फीडिंग-ड्यूओडिनोस्टमी कहलाता है, ड्यूडिनम छोटी आँत का सबसे पहला हिस्सा है।

ए.एल.एस. रोगी की जीवनचर्या और जीवन काल को क्रमशः सुखद एवं दीर्घ बनाने में तकनीकी की सबसे अहम भूमिका रही है। चाहें वह विभिन्न सुविधाओं से सुसज्जित व्हील चेयर हो, वेंटिलेटर-सपोर्ट-सिस्टम हो या फिर आँखों की पुतलियों से संचालित लैंग्वेज डिकोडर जो कि लाचार देह में निवास करते स्वस्थ मस्तिष्क को सम्प्रेष्य बनाता है।

ए.एल.एस. मूलतः प्रेरक तंत्रिकाओं की बीमारी है जिसमें ग्रहणशील तंत्रिकाएँ और मस्तिष्क का क्रियान्वन अधिकांश मरीज़ों में बीमारी के आखिरी चरण में भी सुचारु रूप से चलता रहता है। जहाँ महान वैज्ञानिक स्टीफन हॉकिंग का कॉस्मॉलॉजी एवं भौतिकी को अभूतपूर्व योगदान ए.एल.एस. के इसी लक्षण विशेष की देन है वहीं दूसरी ओर पूरी तरह से अशक्त, महीनों से बिस्तर पर पड़े, अपनी हर छोटी-बड़ी जरूरत के लिए परिवार पर निर्भर रोगियों ने अपने अंतिम समय में यह दुरूख-खीझ जताई है कि काश हमारे शरीर की तरह हमारा मस्तिष्क भी जीर्ण-शीर्ण हो जाता ताकि हम अपने आप और परिवार को इस अगाध पीड़ा से गुज़रते देख-समझन पाते। जब-जब स्टीफन हॉकिंग और ए.एल.एस. किसी मंच पर साथ-साथ आते हैं, नेपथ्य में हर बार यही फुसफुसाहट रहती है कि इस बीमारी के साथ हॉकिंग इतने साल कैसे जीवित रह पाए जबकि हमने तो यही जाना-सुना है कि यह अपने मरीज को महज़ कुछेक सालों की मोहलत देती है। और फिर शुरू होते हैं कयास

बाइस वर्ष की उम्र में जेन से शादी तथा वर्ष 1991 में 26 वर्ष के वैवाहिक जीवन के उपरांत उनका जेन से तलाक हुआ।

स्टीफन हॉकिंग तथा जेन के तीन बच्चे रॉबर्ट, लूसी और टिम

हॉकिंग के कुदरत का करिश्मा होने और उनके हिस्से आई अभूतपूर्व ईश्वरीय अनुकम्पा के। दरअसल उनके सात दशकों से भी अधिक के जीवन काल की वजह इन दोनों में से कुछ भी नहीं है। ए.एल.एस.के दो मुख्य प्रकारों फैमिलियल और स्पोरेडिक के अलावा कुछ उप प्रकार भी पाए जाते हैं जिनमें मरीज की जीवन प्रत्याशा दशकों तक की देखी गई है। स्टीफन हॉकिंग के अलावा भी ए.एल.एस.के इन प्रकारों से पीड़ित मरीज़ लंबे समय तक जीवित रहे हैं। यहाँ बीमारी की जैविकी और रोगी की देखभाल खासकर वेंटिलेशन-सपोर्ट, ये दो अवयव ए.एल.एस. की आक्रामकता और मरीज़ की जीवन प्रत्याशा की कुंजियाँ हैं।

प्रकार, उप-प्रकार , जैविकी, आनुवांशिकी, ये वे कुछ कारक हैं जिन पर रोगी का नियंत्रण नहीं होता। लेकिन हाँ, रोगी और परिवारजन यह ज़रूर सुनिश्चित कर सकते हैं कि वे ए.एल.एस. को डैथ-सेंटेंस न मान कर चलें।

'लूगहरिंग' के नाम से प्रसिद्ध इस बीमारी को 'लू' से जुड़कर सिर्फ़ इसलिए नहीं देखा जाता कि उन्हें इसे भोगना पड़ा बल्कि उन्हें अपने 'येन्की-स्टेडियम' के यादगार भाषण के उस जज्बे के लिए याद किया जाता है जो आज भी ए.एल. एस. के मरीज़ों के लिए मिसाल है। भले ही वैज्ञानिक सर हॉकिंग के ए.एल.एस.के साथ बिताए सुदीर्घ एवं समृद्ध जीवन की वजह उसके कम आक्रमक प्रकार और उनकी बेहतरीन देखभाल को देते हैं लेकिन मात्र इक्कीस वर्ष की आयु में ही लाचारी का पर्याय माने जाने वाली इस बीमारी से साक्षात्कार होने के बाद भी दुनिया को ब्रह्मांड की सैर कराने के उनके हौसले को भी सलाम करते हैं।

divya.pandey395@gmail.com

❑❑❑
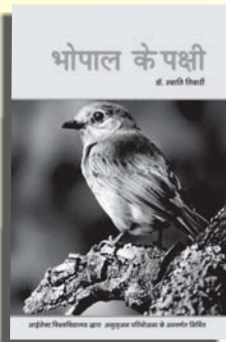
'भोपाल के पक्षी नामक' पुस्तक में प्रवासी पक्षियों के जीवन के वैज्ञानिक पक्ष उजागर हुए हैं।

पक्षी सभी उम्र के व्यक्तियों के लिए आकर्षण का केंद्र बने रहते हैं। पक्षियों को जानने की जिज्ञासा जैसे- वे कहां से आते हैं और कहाँ पाए जाते हैं, उनका भोजन, अंडा और अन्य विशेषताओं से संबंधित जानकारी इस पुस्तक में उपलब्ध कराई गई है। लेखिका डॉ. स्वाति तिवारी स्वयं जीव-विज्ञान की विद्यार्थी रही हैं और उन्होंने पक्षियों को अपने कैमरे में कैद कर पुस्तक के माध्यम से उपलब्ध कराया है। लेखिका को विश्वास है कि इसे पढ़कर पाठक स्वयं बर्ड वॉचिंग कर सकेंगे।

कई संगठनों की संचालक डॉ. तिवारी का हिन्दी साहित्य में भी महत्वपूर्ण स्थान है। अब तक उनकी 15 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। आपको कई उल्लेखनीय सम्मान और पुरस्कार प्राप्त है जिसमें राष्ट्रीय मानवधिकार आयोग दिल्ली का सम्मान, वगेश्वरी सम्मान, राष्ट्रीय लाड़ली मीडिया पुरस्कार शामिल हैं। आप अफ्रीका और भारत के विश्व हिन्दी सम्मेलन में मध्यप्रदेश शासन का प्रतिनिधित्व कर चुकी हैं।

विज्ञान लेखन का अविश्रांत यात्री : देवेन्द्र मेवाड़ी

डॉ.सुबोध महंती

डॉ. सुबोध महंती पश्चिम बंगाल के पुरूलिया नामक गांव में जन्में और अपने समर्पित योगदान के कारण भारतीय विज्ञान संचार जगत के एक दैदीप्यमान नक्षत्र बन गए। विज्ञान संचार और मूल रूप से हिंदी भाषा में विज्ञान लेखन को अपने जीवन का उद्देश्य बनाया। उन्होंने वैज्ञानिकों की जीवनियों का लेखन कर जीवनी लेखन को नए आयाम प्रदान किए। आपको अनेक राष्ट्रीय मंचों से उन्हें सम्मानित भी किया गया। समसामयिक विषयों पर लोकप्रिय विज्ञान लेखन के साथ-साथ विज्ञान संचार की एक सशक्त विधा विज्ञान कथा के क्षेत्र में भी अपनी समर्थ लेखनी डॉ. महंती ने चलाई है। आप प्रमाणित वैज्ञानिक शब्दावली के प्रयोग को हमेशा बढ़ावा देते रहे हैं और हिन्दी भाषा में लोकविज्ञान साहित्य का सृजन करना अपना लक्ष्य बनाया है।

हिंदी में वह आधी सदी से भी अधिक समय से विज्ञान लेखन कर रहे हैं और उनकी यह लेखन यात्रा अनवरत रूप से जारी है। उन्होंने कृषि अनुसंधान का काम किया। तेरह वर्षों तक किसानों की पत्रिका 'किसान भारती' के संपादक रहे और एक बार फिर भविष्य का रास्ता बदल कर 22 वर्षों तक जनसंपर्क के नए कार्यक्षेत्र में काम करते रहे। लेकिन विज्ञान लेखन की इनकी कलम चलती रही। आम लोगों के लिए विज्ञान लिखते हुए चौवन साल गुजर गए हैं, लेकिन यह अविश्रांत यात्री अभी भी पहले की ही तरह सक्रिय रह कर अपनी उम्र के पड़ावों को पार कर रहा है। यह वर्ष इनका हीरक वर्ष है। मार्च माह में यह पचहत्तर वर्ष पूरे कर चुके हैं।

मेरा सौभाग्य है कि मैं पिछले दस-बारह वर्षों से श्री मेवाड़ी के संग-साथ में हूँ। इस संग-साथ की खूबी यह है कि उनसे जिस दिन परिचय हुआ था, उस दिन से आज तक जब भी हम मिले, हम अधिकांश समय हिंदी, अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं के विज्ञान लेखन की ही चर्चा करते रहे हैं। इस चर्चा में विज्ञान लेखन की अनेक विधाओं पर बातचीत के साथ ही सामयिक विषयों पर लिखी गईं हमारी अपनी रचनाएं भी शामिल रही हैं। संयोग से मुझे भी साहित्य से अनुराग है और मेवाड़ी जी को भी। इसलिए हम हिंदी, अंग्रेजी के साथ ही विशेष रूप से बंगला साहित्य पर भी अक्सर बातें करते रहे हैं। इसी बातचीत का नतीजा है कि हमने रवींद्रनाथ ठाकुर तथा बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय के वैज्ञानिक योगदान के साथ ही आचार्य जगदीष चंद्र बसु, आचार्य प्रफुल्ल चंद्र रॉय और प्रषांत चंद्र महालनोबीस जैसे प्रसिद्ध वैज्ञानिकों के साहित्यिक अवदान पर भी जम कर चर्चाएं कीं।

कौन है विज्ञान लेखन का यह अविश्रांत यात्री? देश के वरिष्ठतम पत्रकारों में से एक तथा 'दैनिक हिंदुस्तान' के पूर्व संपादक और वरिष्ठ पत्रकार श्री नवीन जोशी मेवाड़ी जी की लेखन शैली के साथ ही उनके विज्ञान लेखन की प्रासंगिकता और उपयोगिता के बारे में भी बताते हुए लिखते हैं : ''लेखक देवेंद्र मेवाड़ी को जानते हैं न? अरे वही जो हिंदी में विज्ञान को दादी-नानी की कहानियों की तरह रोचक और सुबोध बना देने के लिए जाने जाते हैं, जो भुट्टे की कहानी कहने लगते हैं तो मक्के का एक-एक दाना अपने पूरे इतिहास और मानव जाति से अपने रिश्ते के साथ हमारे मन में खिलखिलाने लगता है, जो पक्षियों की कहानी बताते हैं तो पेड़ों की डालों से पंछी आंगन या बालकनी में आ विराजते हैं यह जताने को कि 'सुन लिया न आपने!' वही देवेंद्र मेवाड़ी जो हॉर्मोनों के अजब-गजब किस्से बताते चलते हैं तो गर्भाधान का विज्ञान छुपन-छुपाई के खेल सा मनोरंजक बन कर दिमाग पर छा जाता है, विज्ञान कथाएं तो वो लिखते क्या हैं, सुनाते-समझाते ही चलते हैं...''

(कथादेश, अक्टूबर 2013, पृष्ठ 88)

हिंदी में विज्ञान के प्रसार के लिए समर्पित 106 वर्ष पुरानी संस्था विज्ञान परिषद प्रयाग के प्रधानमंत्री, 'विज्ञान' मासिक के संपादक और हिंदी विज्ञान लेखन के वरिष्ठतम प्रकाश स्तंभ डॉ. शिव गोपाल मिश्र के शब्दों में, ''पिछले चार दशकों से जिनकी लेखनी निरंतर गतिशील रही है और

जिन्होंने हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं यथा कहानी, कविता, निबंध आदि का सृजन करते हुए विज्ञान लेखन के क्षेत्र में आकर इस नीरस विषय को सरल, सुबोध, रोचक और आम बोलचाल की भाषा में प्रस्तुत कर अपना एक प्रशंसक पाठक वर्ग तैयार किया है।...

श्री मेवाड़ी ने विज्ञान लेखन को नए आयाम दिए हैं। प्रिंट तथा इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, रेडियो व दूरदर्शन सभी के लिए श्री मेवाड़ी उसी अधिकार और सहजता के साथ अपनी कलम का जादू बिखेरते रहे हैं जिससे उनके पाठक व दर्शक, रचना के साथ स्वयं को जोड़ते हुए मंत्रमुग्ध हो जाते हैं। श्री मेवाड़ी की लेखनी से जुड़ कर विज्ञान के जटिल और गूढ़ रहस्य स्वतः खुलते जाते हैं और पाठक उन्हें सरलतापूर्वक आत्मसात कर पाता है।''

(विज्ञान, देवेंद्र मेवाड़ी सम्मान अंक, अक्टूबर 2006, पृष्ठ-1)

यह सुखद संयोग ही है कि जिस 'विज्ञान' मासिक में अप्रैल 1965 में श्री मेवाड़ी का प्रथम वैज्ञानिक लेख प्रकाशित हुआ, उसके संपादक तब भी डॉ. शिव गोपाल मिश्र थे और आज भी वहीं हैं।

श्री मेवाड़ी ने हर विधा में विज्ञान लिखा है जिसके कारण उनके विज्ञान लेखन में विविधता है। विविध विधाओं में विज्ञान लिखने की बात उन्होंने क्यों सोची, इसका उत्तर उन्हीं के शब्दों में : ''सभी लोगों तक विज्ञान की जानकारी पहुँचना जरूरी है। हमें उनके लिए सरल-सहज भाषा और रोचक शैली में विज्ञान लिखना होगा। पिछले पचास वर्षों से मैं यही कोशिश करता आ रहा हूँ। जो विज्ञान समझ में आया, उसे आमजन को समझाने की कोशिश करता रहा। मुझे जल्दी ही पता लग गया कि अगर एक ही तरह से लिखता रहा तो उस एकरस लेखन से मेरे पाठक ऊब जाएंगे। इसलिए मैंने विज्ञान लेखन के लिए हर संभव शैली अपनाई। लेख और ललित निबंध लिखे, भेंटवार्त्ताएं लिखीं, कविताएं और कहानियां लिखीं, जीवनियां और संस्मरण लिखे, डायरी शैली में विज्ञान लिखा, विज्ञान व्यंग्य लिखे, अनेक तरह से बाल विज्ञान लिखा, रेडियो वार्ताएं, नाटक और पटकथाएं लिखीं, समीक्षाएं लिखीं, विज्ञान लेखकों-संपादकों से पत्र-संवाद किया।''

(देवेंद्र मेवाड़ी, विज्ञाननामा, पृष्ठ-6, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, 2014)

पूर्व राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल से प्रसिद्ध आत्माराम पुरस्कार प्राप्त करते हुए देवेन्द्र मेवाड़ी

मैंने देखा है कि एक अध्ययनशील व्यक्ति हैं और अपनी पसंद की किताबें खरीद कर अपने पुस्तक संग्रह को समृद्ध करते रहते हैं। विज्ञान लेखन के लिए स्तरीय और प्रामाणिक पुस्तकें जरूरी हैं तभी कोई लेखक प्रामाणिक विज्ञान लिख सकता है। श्री मेवाड़ी ने अपने संग्रह में ऐसी तमाम संदर्भ पुस्तकें जुटाई हैं। इस विषय में उनका कहना है कि संदर्भ पुस्तकें अपने पास होने से समय की काफी बचत होती है। साथ ही किसी एक विषय पर विभिन्न लेखकों की पुस्तकें पढ़ने से लेखन में प्रामाणिकता और गहराई आती है।

उन्होंने अब तक 25 से अधिक पुस्तकें लिखी हैं : 'विज्ञाननामा', विज्ञान वेला में, 'मेरी विज्ञान डायरी' (भाग-1), 'मेरी विज्ञान डायरी' (भाग-2), 'मेरी प्रिय विज्ञान कथाएं', 'नाटक-नाटक में विज्ञान', 'सौरमंडल की सैर', 'विज्ञान बारहमासा', 'विज्ञान प्रसंग', 'विज्ञान और हम', 'विज्ञान की दुनिया', 'सूरज के आंगन में', 'फसलें कहें कहानी', 'विज्ञान जिनका ऋणी है' (भाग-1), 'विज्ञान जिनका ऋणी है' (भाग-2), 'अनोखा सौरमंडल', 'हॉर्मोन और हम', 'पशुओं की प्यारी दुनिया', 'भविष्य' (विज्ञान कथा संग्रह), 'कोख' (विज्ञान कथा संग्रह), बंजारा विज्ञान मन, राही मैं विज्ञान का, दिल्ली से तुंगनाथ वाया नागनाथ (यात्रा संस्मरण), स्मृति वन में भटकते हुए (संस्मरण), मेरी यादों का पहाड़ (आत्मकथात्मक संस्मरण)

केन्द्रीय मंत्री विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी डॉ.मुरली मनोहर जोशी से विज्ञान लोकप्रियकरण का एनसीएसटीसी का राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त करते हुए

श्री मेवाड़ी की कुछ पुस्तकों और कहानियों का अन्य भाषाओं में अनुवाद भी हुआ है। नई पीढ़ी के पाठकों के लिए यह जानना रोचक और प्रेरक होगा कि श्री मेवाड़ी ने दो-चार नहीं बल्कि 50 से अधिक पत्र-पत्रिकाओं में लेखन किया है। इससे पता लगता है कि स्तरीय विज्ञान लेखन के छपने की भरपूर संभावनाएं हैं।

यह जानकर आश्चर्य होता है कि इस लंबी लेखन यात्रा में मेवाड़ी जी की रचनाएं हिंदी की दो-चार प्रमुख पत्रिकाओं में ही नहीं बल्कि देश के विभिन्न भागों से छपने वाली पचास से भी अधिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। यह तथ्य नई पीढ़ी के विज्ञान लेखकों के लिए प्रेरणादायक हो सकता है। उनकी रचनाएं इन पत्रिकाओं में प्रकाषित हुई हैं: धर्मयुग, मुंबई; साप्ताहिक हिंदुस्तान, दिल्ली; दिनमान, दिल्ली; नया ज्ञानोदय, दिल्ली; हंस, दिल्ली; नई धारा, पटना; नई कहानियां, दिल्ली; कहानी, इलाहाबाद; माध्यम, इलाहाबाद; उत्कर्ष, लखनऊ; बनास जन, दिल्ली; वाक्, दिल्ली; आजकल, दिल्ली; नवनीत, मुंबई; कादंबनी, दिल्ली; रविवार, कोलकाता; एक्सप्रेस हिंदी, मुंबई; विज्ञान प्रकाष, दिल्ली, न्यूयार्क; पल-प्रतिपल, पंचकूला, हरियाणा; मंतव्य, लखनऊ; मनोरमा वार्षिकी, दिल्ली; जनसत्ता, दीपावली विशेषांक, दिल्ली; लोकसत्ता, दीपावली विशेषांक, मुंबई; अमृत प्रभात, दीपावली विशेषांक, लखनऊ; आंचलिक पत्रकार, भोपाल; इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए, भोपाल; पहाड़, नैनीताल; उत्तराखंड भारती, नैनीताल; बाखली, पिथौरागढ़; पहरू, (कुमाऊंनी) अल्मोड़ा; रीजनल रिपोर्टर, श्रीनगर, गढ़वाल; हरिगंधा, पंचकूला, हरियाणा; नंदन, दिल्ली; बाल भारती,

दिल्ली; बालवाटिका, भीलवाड़ा, राजस्थान; बालवाणी, लखनऊ; अभिनव बालमन, अलीगढ़; अपूर्व उड़ान, दिल्ली; ज्ञान-विज्ञान बुलेटिन, अल्मोड़ा; हिमवाणी, शिमला; बालहंस, जयपुर; पर्वतीय, नैनीताल; युवक, आगरा; विज्ञान लोक, आगरा; विज्ञान जगत, इलाहाबाद; विज्ञान प्रगति, दिल्ली; आविष्कार, दिल्ली; ड्रीम-2047, नोएडा; हिंदी विवेक, मुंबई; इंद्रधनुष, दिल्ली, शिमला; विज्ञान, विज्ञान परिषद प्रयाग; विज्ञान भारती, पंतनगर; शताब्दी, जबलपुर; खेती, दिल्ली; किसान भारती, पंतनगर; ग्राम लोक, दिल्ली; पहरू (कुमाउंनी), अल्मोड़ा, दगड़िया, नैनीताल।

समाचार पत्रः दैनिक हिंदुस्तान, दिल्ली; नवभारत टाइम्स, दिल्ली, मुंबई, लखनऊ; अमर उजाला, नोएडा, बरेली; अमृत प्रभात, इलाहाबाद, लखनऊ; राजस्थान पत्रिका, जयपुर; इंडियन एक्सप्रेस, दिल्ली; नैनीताल समाचार, नैनीताल, राष्ट्रीय सहारा, नोएडा।

श्री मेवाड़ी ने लंबी विज्ञान लेखन यात्रा में अपनी एक विशेष शैली विकसित की है। बातचीत में वे अक्सर कहते हैं, ''मुझे लगता था कि मेरे लेखन की एक अलग पहचान बने। यह तभी हो सकेगा जब पाठक मेरे लिखे शब्दों को पढ़ कर पहचान ले कि वे मेरे लिखे हुए शब्द हैं। अगर उसे किसी पत्रिका में छपे हुए मेरे लेख का कोई एकाध पृष्ठ मिल जाए जिसमें नाम का कोई उल्लेख न हो और उसे पढ़ कर अगर पाठक पहचान ले कि वह मेवाड़ी जी का लिखा हुआ है तो मैं समझ जाऊंगा कि मेरे लेखन की एक पहचान बनने लगी है। कई वर्ष पहले मुझे इसका प्रमाण मिल गया। पूर्वी उत्तर प्रदेश की एक जेल से सीता नामक एक पाठिका का पत्र मिला जिसमें उसने लिखा था कि उसके दो बच्चे एक कागज से खेल रहे थे। उसने वह कागज लेकर पढ़ा तो पता लगा वह 'विज्ञान प्रगति' का फटा हुआ पृष्ठ था। उसने घर में पत्रिका खोज कर पृष्ठ का मिलान किया तो पता लगा वह मेरी रचना थी। लेख में दिए गए पते पर पत्र भेज कर उसने मुझे यह बात बताई।''

वरिष्ठ पत्रकार तथा संपादक नवीन जोशी ने मेवाड़ी जी के विज्ञान लेखन की शैली के बारे में लिखा है, ''मैंने हिंदी विज्ञान लेखकों में रमेश दत्त शर्मा और गुणाकर मुले जैसे बेहतरीन लेखकों को भी पढ़ा है लेकिन जितना

जयंत विष्णु नार्लीकर के साथ देवेन्द्र मेवाड़ी

रोचक और आसान विज्ञान लेखन मैंने मेवाड़ी जी का पाया, उतना किसी और का नहीं। जिन्होंने उनकी किताबें पढ़ी हैं, खास कर 'हॉर्मोन और हम' तथा 'पशुओं की प्यारी दुनिया', वे मेरी इस बात के गवाह होंगे।.... 'हॉर्मोन और हम' पुस्तक तो इतनी अदभुत है कि मैं अक्सर विद्यार्थियों को उसका संदर्भ देता हूं। मानव शरीर में हॉर्मोन ग्रंथियों और उनकी अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका पर यह पुस्तक इतनी सरल, सुबोध और रोचक भाषा शैली में लिखी गई है कि किसी के लिए भी कुछ भी अबूझ नहीं रह जाता और हमेशा के लिए स्मृति पटल पर दर्ज हो जाता है। इस पुस्तक के दो अध्याय 'यौवन के संदेश' और 'किशोरी से कामिनी' तो आज की प्रस्तावित, बहुचर्चित व विवादास्पद यौन शिक्षा के सहज स्वाभाविक पाठ बन सकते हैं। जो पढ़ाने और पढ़ने वाले दोनों को बिना किसी संकोच के, शरीर में होने वाले परिवर्तनों के बारे में बिना लाग-लपेट के शालीन और सुबोध भाषा में आवश्यक ज्ञान देते हैं। बल्कि मैं सिफारिश करूंगा कि यौन शिक्षा पाठ्यक्रम के विशेषज्ञ 'हॉर्मोन और हम' के इन दो अध्यायों

प्रो. यशपाल और देवेन्द्र मेवाड़ी

पर विशेष रूप से गौर करें।''

(विज्ञान, अक्टूबर 2006, पृष्ठ-35)

इसी तरह डॉ. रमेश दत्त शर्मा लिखते हैं, ''वे (देवेंद्र मेवाड़ी) साहित्य से उद्धरण देते हैं और पाठक को भरमाते हुए विज्ञान की गहराइयों में ले जाते हैं, जहाँ पहुँच कर पाठक विज्ञान की गंगा में गोते लगा कर प्रफुल्लित हो उठता है। वे सचमुच कलम के धनी हैं।''

(विज्ञान, अक्टूबर 2006, पृष्ठ-7)

'दैनिक हिंदुस्तान' में मेवाड़ी जी की पुस्तक 'विज्ञान प्रसंग' की समीक्षा करते हुए साहित्यकार राजेंद्र सहगल लिखते हैं, ''आम तौर पर यह मान्यता रही है कि विज्ञान जगत ही अपने आप में इतना रहस्यमय, जटिल, अबूझ एवं दुरूह है कि सामान्य पाठक वैज्ञानिक उपलब्धियों की पृष्ठभूमि में छिपे गहरे कारणों के विश्लेषण से बचते हुए महज सतही जानकारी से संतुष्ट होने की आदत का शिकार होने लगता है। उनकी इस मनोवृत्ति के लिए केवल सामान्य पाठक को इसलिए पूर्णतः दोषी नहीं ठहराया जा सकता चूंकि जीवन-जगत में वैज्ञानिक हलचलों का विश्लेषण भी इतने जटिल व दुर्बोध रूप में उपलब्ध होता है कि आमजन कि दूरी स्वाभाविक लगने लगती है। ऐसे दौर में विज्ञान के सवालों को मात्र वैज्ञानिकों व विज्ञान की दुनिया से जुड़े लोगों तक सीमित न करते हुए उसे सरल-सरस व दिलचस्प शैली में सामने लाती ख्याति प्राप्त विज्ञान कथा लेखक देवेंद्र मेवाड़ी की पुस्तक 'विज्ञान प्रसंग' प्रत्येक जिज्ञासु व ज्ञान पिपासु पाठक को एक बड़ी सीमा तक संतुष्टि व तृप्ति प्रदान करती है।

इस पुस्तक में शामिल लेखों की यह विशिष्टता रही है कि यह वैज्ञानिक उपलब्धियों व उसके प्रभाव से मनुष्य जाति की विकास प्रक्रिया का उल्लेख करने मात्र से संतुष्ट नहीं हो जाते बल्कि वैज्ञानिक घटनाओं से पैदा होने का परिणामतः मानवीय मूल्यों व संवेदनाओं के श्ररण को उद्घाटित करने से भी नहीं चूकते।''

(दैनिक हिंदुस्तान, 26 जून 2005)

मासिक पत्रिका 'नवनीत' के मनीशी संपादक नारायण दत्त जी ने श्री मेवाड़ी के लेखन के बारे में लिखा है, ''अपने कई अन्य विज्ञान लेखक मित्रों की तरह श्री मेवाड़ी जी के साथ मेरा परिचय उन दिनों का है जब मैं 'नवनीत' का संपादन करता था। 'नवनीत' के लिए उनका पहला लेख जब मेरे पास आया तब

वे शायद पंतनगर कृषि विश्वविद्यालय के प्रकाशन विभाग में काम करते थे। डॉ. रमेश दत्त शर्मा भी तब वहीं थे। हो सकता है उन्होंने भाई मेवाड़ी जी को 'नवनीत' के लिए लिखने को उकसाया हो। या यह भी संभव है कि मेवाड़ी ने अपनी ही प्रेरणा से लेख मेरे पास भेजा हो। सिलसिलेवार विशय प्रतिपादन, रोचक षैली और साफ-सुथरी लिखावट के कारण उनके लेख किसी भी संपादक को आकर्षित और प्रभावित करने की क्षमता रखते हैं। उन्होंने मेरे लिए ज्यादा तो नहीं लिखा, मगर जितना भी लिखा वह बढ़िया और पठनीय था।''

(विज्ञान, अक्टूबर 2006, पृष्ठ-45)

जब भी नारायणदत्त जी की बात होती है, श्री मेवाड़ी 'नवनीत' को भेजे गए अपने पहले वैज्ञानिक लेख का उल्लेख करना नहीं भूलते। वे कहते हैं, ''तब संपादक अपने लेखकों के साथ पत्र-संवाद बनाए रखते थे और उनकी रचनाओं को संवारते थे। मैंने जब अपना पहला लेख 'नवनीत' को भेजा तो कुछ दिन बाद वह लौट आया, लेकिन अकेले नहीं, उसके साथ उस लेख की एक टाइप की हुई प्रति भी थी। साथ में नारायणदत्त जी का पत्र था, जिसमें लिखा था- 'प्रिय भाई, मैंने आपका लेख पढ़ कर उसका संपादन कर दिया है। लेकिन, मुझ अविज्ञानी से न जाने कहीं कोई त्रुटि न हो गई हो इसलिए संपादित प्रति भी साथ में भेज रहा हूँ। इसे पढ़कर लौटती डाक से मुझे भेज दें।'' मैंने संपादित प्रति पढ़ी तो मेरी आंखें खुली रह गईं। मेरे लिखे लंबे, जटिल वाक्य छोटे और सरल हो गए थे। वर्तनी की त्रुटियां भी दूर हो गई थीं। इस तरह मनीषी संपादक ने मुझे विज्ञान लेखन की पहली दीक्षा दे दी थी।

अपने विज्ञान लेखन के बारे में स्वयं देवेंद्र मेवाड़ी लिखते हैं, ''दोस्तो, इसीलिए कहते हैं सदा सच पर भरोसा करो। जो भी जानना चाहते हो, उसके लिए अपने-आप से 'क्यों और कैसे' सवाल पूछो और उनके उत्तर खोजो। तुम्हें सच का पता लगता जाएगा। तुम्हारा वैज्ञानिक सोच बनेगा। जरा पानी को तो देखो- वह बहता पानी है। जम जाता है तो ठोस बर्फ बन जाता है। उबलता है तो भाप बन जाता है। धरती से भाप बन कर ऊपर उठता है और बादल बन जाता है। वहाँ ठंडा होकर बरस पड़ता है। बारिश बन जाता है।....और हां,

उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ से उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान का प्रतिष्ठित 'विज्ञान भूषण सम्मान' लेते हुए देवेन्द्र मेवाड़ी

तितली को देखा है? दीवारों, टहनियों पर लटके नन्हे से 'प्यूपा' से निकलती है तितली। और, प्यूपा? वह लपलपाते, पत्ती चबाते लार्वा से बनता है।

सच खोजते-खोजते आदमी के अंधविश्वास टूटते गए। सच अर्थात् विज्ञान की जानकारी ने उसकी दुनिया बदल दी। उसने पक्षियों की तरह उड़ना चाहा और वायुयान बना लिए। चांद-तारों की दुनिया में जाने के लिए अंतरिक्ष यान बना लिए। धरती पर कम समय में अधिक रफ्तार से दूरी पार करने के लिए मोटर-कारें और रेलगाड़ियां बना लीं। सागर के सीने पर उसके जहाज तैरने लगे। कल तक भूत-प्रेतों और अदृष्य आत्माओं को बीमारी की वजह मानने वाले मनुष्य ने अपनी खुर्दबीनों से जीवाणुओं और विशाणुओं की अदृष्य दुनिया खोज ली और कई खतरनाक बीमारियों पर विजय पा ली। अपनी दूरबीनों से आसमान को टटोल कर ग्रह-नक्षत्रों और मंदाकिनियों के रहस्यों का पता लगा लिया। गुफाओं में रहने वाले पुरखों की संताने यानी हम आज शानदार इमारतों में रह रहे हैं।''

नवनीत संपादक श्री नारायण दत्त के साथ देवेन्द्र मेवाड़ी

(विज्ञान की दुनिया, नवारूण प्रकाषन, गाजियाबाद, 2018, पृष्ठ-12)

श्री मेवाड़ी ने विज्ञान की कई महत्वपूर्ण पुस्तकों और प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं के लिए वैज्ञानिक लेखों का अनुवाद भी किया है। विज्ञान लेखक और 'भारत की संपदा' विश्वकोश के विशेष अधिकारी श्री तुरशन पाल पाठक के शब्दों में, '''किसान भारती' के संपादक श्री देवेंद्र मेवाड़ी ने वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिशद, नई दिल्ली के प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय से प्रकाशित हिंदी विश्व कोश 'भारत की संपदाः प्राकृतिक पदार्थ' के प्रथम तथा अगले खंड़ों के लिए मूल अंग्रेजी ग्रंथ 'वैल्थ ऑफ इंडिया' से कई शीर्षकों का अनुवाद किया है। श्री मेवाड़ी जी द्वारा अनुदित सामग्री मूल अंग्रेजी सामग्री के ही समान शुद्ध और निर्दोष है। साथ ही भाषा में प्रवाह और शैली में रोचकता का पुट भी है। इसमें संदेह नहीं कि श्री मेवाड़ी जी हमारी ग्रंथमाला के श्रेष्ठ अनुवादकों में से हैं।''

(विज्ञान, अक्टूबर 2006, पृष्ठ 54)

भारत की संपदा के अतिरिक्त श्री मेवाड़ी ने 'मंगल बुला रहा है' (श्रीनिवास लक्ष्मण), 'कहानी रसायन विज्ञान की' (अनिर्बान हाजरा), 'हमारे पक्षी' (डॉ. असद. आर. रहमानी), 'जीन और जीवन' (डॉ. डी. बालासुब्रमणियम), 'एशियाई फसलों का प्रजनन' (पोहूलमैन एवं बोरठाकुर)। पुस्तकों का अंग्रेजी से हिंदी में अनुवाद किया है। उन्होंने अमेरिकी दूतावास की प्रमुख पत्रिका स्पैन (हिंदी), विज्ञान पत्रिका 'ड्रीम-2047' तथा 'विज्ञान प्रकाश' मासिक के लिए भी बड़ी संख्या में वैज्ञानिक लेखों का अनुवाद किया है।

श्री मेवाड़ी ने लेखन की शुरूआत हिंदी कहानी से की थी। इसलिए उनमें प्रारंभ से ही कहानी के प्रति एक स्वाभाविक लगाव रहा है। उनका यह लगाव उनकी रचनाओं में कथातत्व के रूप में साफ झलकता है क्योंकि रचना पढ़ते हुए ऐसा लगता है जैसे वे कोई कहानी सुना रहे हो। इसीलिए विज्ञान कथा साहित्य में मेवाड़ी जी की अपनी एक विशेष पहचान है। उनकी विज्ञान कथाओं की षैली न केवल मौलिक है बल्कि वे शुद्ध रूप में भारतीय विज्ञान कथाएं हैं। वरिष्ठ विज्ञान लेखक श्री सुभाष लखेड़ा के शब्दों में, ''अपने छात्र जीवन में देवेन एकाकी नाम से साहित्यिक कहानियां लिखने वाले इस

व्यक्ति ने एकाएक नहीं अपितु सोच-समझ कर एक दिन यह निर्णय लिया कि वे भविष्य में जो भी कथा लिखेंगे, वह विज्ञान कथा ही होगी। और, फिर शुरू हुई उनकी वह लंबी यात्रा।''

(विज्ञान, अक्टूबर 2006, पृष्ठ-23)

इनकी विज्ञान कथाओं के बारे में प्रसिद्ध विज्ञान कथाकार डॉ. बाल फोंडके लिखते हैं, ''हिंदी में विज्ञान कथाओं के प्रकाशन को पर्याप्त प्रोत्साहन नहीं मिला है, फिर भी कई नए-नए लेखक इस विधा का विकास करने में जुटे हुए हैं। उनमें जो अग्रणी हैं, उनमें एक हैं श्री देवेंद्र मेवाड़ी। देवेंद्र जी की कई विज्ञान कथाएं उनकी प्रतिभा की साक्षी हैं। उनकी कहानियां न केवल विज्ञान-कथा की कसौटी पर खरी उतरती हैं बल्कि उन्हें अव्वल भारतीय माना जा सकता है।''

(भविष्य-विज्ञान कथा संग्रह, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली, 1996)

वरिष्ठ पत्रकार तथा संपादक डॉ. गोविंद सिंह लिखते हैं, ''विज्ञान कथा को लेकर भी उनकी (श्री मेवाड़ी) समझ बड़ी स्पष्ट है। वे मुझे बार-बार समझाया करते कि कल्पना पर आधारित गल्प हो लेकिन उसका आधार और ताना-बाना विज्ञान सम्मत हो। इसलिए उनकी विज्ञान कथाएं भी, लगती ही नहीं कि जैसे कोई अलग-सी चीज पढ़ रहे हो। वे सत्य कथा का-सा आभास देती हैं लेकिन होता है उनमें विज्ञान ही। उनकी जो थोड़ी विज्ञान कथाएं मैंने पढ़ी हैं, वे मन पर एक अलग छाप छोड़ जाती हैं।''

(विज्ञान, अक्टूबर 2006, पृष्ठ-38)

लेकिन, अपनी विज्ञान कथाओं के बारे में स्वयं देवेंद्र मेवाड़ी का क्या कहना है? वे कहते हैं, ''..और, आप जानते हैं कि असंभव कुछ नहीं है। कल कौन जानता था कि मनुष्य

डॉ.सुबोध महंती के साथ देवेन्द्र मेवाड़ी

चांद पर कदम रखेगा, शरीर से बाहर गर्भाधान करके परखनली शिशु पैदा कर दिया जाएगा, डीएनए की कूट भाषा में लिखी मानव की आनुवंषिक कुंडली पढ़ ली जाएगी, पृथ्वी से परे पृथ्वी जैसे ग्रह खोज लिए जाएंगें, ब्रह्मांड के अन्य ग्रहों में जीवन की खोज के प्रयास किए जाएंगे, एलियन सभ्यताओं को संदेश भेजे जाएंगे, सभ्यता के चिह्नों को नेस्तनाबूद कर देने वाले विध्वंसकारी हथियारों की जगह चुपचाप जीवन हर लेने वाले जीवाणुओं, विशाणुओं और रसायनों का हथियार की तरह इस्तेमाल होगा, रोबोट आकर हमारा हाथ बंटाने लगेंगे और....और भी कितना कुछ जो कल अकल्पनीय था, लेकिन आज सच हो गया है। विज्ञान की ऐसी ही कुछ हकीकतों, अंदेशों और आहटों की कथाएं हैं 'मेरी प्रिय विज्ञान कथाएं' में।''

(देवेंद्र मेवाड़ी, मेरी प्रिय विज्ञान कथाएं, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, 2011, पृष्ठ-41)

श्री मेवाड़ी का शुरू से ही साहित्य से अनुराग रहा। इसलिए जब उन्होंने विज्ञान लेखन शुरू किया तो उनकी रचनाओं में स्वाभाविक रूप से साहित्यिक सरसता भी आ गई। उनके लेखों का विश्लेषण करने के बाद 'आविष्कार' के संपादक श्री राधाकांत अंथवाल ने लिखा, ''मेवाड़ी जी के लेखों में शीर्षक के साथ ही साहित्य की सुगंध मिलने लगती है। नीरस वैज्ञानिक तथ्यों को सरस बनाने के लिए उन्होंने लेखों में साहित्य का समुचित उपयोग किया है। कभी-कभी वैज्ञानिक तथ्य को साहित्यिक बिंबों से भी उभारने का सफल प्रयास किया है।...मेवाड़ी जी ने अपने लेखों में वैज्ञानिक जानकारी को पूरी संजीदगी से महसूस करने के लिए लोक गीतों का भी सटीक प्रयोग किया है।...मेवाड़ी जी ने इस तरह वैज्ञानिक जानकारी को सरल-सहज बना कर, उसमें साहित्यिक सरसता भर कर पाठक तक पहुंचाने का सफल प्रयास किया है।...कुल मिला कर यदि एक पंक्ति में बात की जाए तो मेरा कहना है कि विज्ञान और साहित्य दोनों का आनंद लेना है तो देवेंद्र मेवाड़ी रचित विज्ञान साहित्य को पढ़िए।''

(विज्ञान, अक्टूबर 2006, पृष्ठ-12)

श्री मेवाड़ी का बचपन पहाड़ के गांव में बीता जहां चारों ओर प्रकृति का राज था। उनका बचपन खेत-खलिहान तथा हरी-भरी फसलों से लेकर घने जंगलों और वन्य जीवन के बीच गुजरा। मुझे लगता है वह प्राकृतिक जीवन इनके मन में रस-बस गया। इनकी रचनाओं में इसीलिए प्राकृतिक विज्ञान और प्रकृति प्रेम खूब झलकता है। इन्होंने बचपन की वे स्मृतियां अपनी आत्मकथात्मक पुस्तक 'मेरी यादों का पहाड़' में बड़े मन से संजोई हुई हैं। उस पुस्तक की समीक्षा करते हुए 'अमर उजाला' के वरिष्ठ पत्रकार श्री कल्लोल चक्रवर्त्ती ने लिखा है, ''इस किताब में प्रकृति से जुड़े इतने ब्यौरे चकित करते हैं। प्रकृति के प्रति देवेंद्र मेवाड़ी का यह प्रेम विभूतिभूषण बंदोपाध्याय के 'पथेर पांचाली' और 'आरण्यक' की याद दिलाता है। प्रकृति के बीच बड़े होते देबी और 'पथेर पांचाली' के

होशंगाबाद म.प्र. के सतपुड़ा के जंगलों में आदिवासी बच्चों को विज्ञान की कहानियां सुनाने के बाद

मसूदा, जिला अजमेर, राजस्थान में बाल विज्ञान मेले में बच्चों के साथ देवेन्द्र मेवाड़ी

बड़कोट, गढ़वाल में बच्चों के साथ सौरमंडल की सैर

बालक अपू में कई समानताएं ढूंढी जा सकती हैं। पेड़-पौधों की इतनी किस्में, पशुओं के विवरण और हमारे जीवन में उनकी उपयोगिता, चिड़िया की इतनी कोटियां, उनकी चहचहाते तथा उनसे जुड़ी कथाएं, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही हैं, उनके प्रति हमारा अहिंसक और मानवतावादी रुख- ये सब मुग्ध करते हैं। आंख और कान का धनी आदमी ही अपनी कृति में ब्यौरों का इतना विस्तार और हिंदी-कुमायूंनी बोली के जरिए इतनी ध्वन्यात्मकता दे सकता है।''

(अमर उजाला, 29 सितंबर 2013)

आत्मकथात्मक संस्मरणों के अतिरिक्त मेवाड़ी जी ने अपनी यात्राओं के रोचक संस्मरण भी लिखे हैं। उनमें भी प्रकृति के आंखों देखे और कानों सुने तमाम विवरण मिलते हैं। 'दिल्ली से तुंगनाथ वाया नागनाथ' उनकी ऐसी ही पुस्तक हैं। उन्होंने साहित्यकारों और विज्ञान लेखकों पर भी मार्मिक संस्मरण लिखे हैं। विगत कुछ वर्शों से वे कई राज्यों के दूर-दराज क्षेत्रों में जाकर स्कूली बच्चों को अपनी विशेष किस्सागोई की शैली में विज्ञान की कहानियां सुना रहे हैं। अपनी इन यात्राओं पर भी वे एक पुस्तक लिख रहे हैं। इसके अलावा वे अनेक संस्थाओं में विज्ञान के विभिन्न विषयों पर व्याख्यान भी देते आ रहे हैं। पिछले कई वर्षों से वे सोशल मीडिया में भी सक्रिय हैं और विज्ञान, साहित्य तथा यात्रा संस्मरण लिख रहे हैं।

श्री मेवाड़ी की विज्ञान-साहित्य साधना को समुचित मान्यता भी मिली है और इसके लिए उन्हें अनेक राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। उन्होंने ये सम्मान और पुरस्कार अर्जित किए हैं : सरस्वती पुत्र सम्मान (2018), विपिन जोषी स्मारक समिति, इटारसी; राष्ट्रीय 'विज्ञान भूषण' सम्मान (2017), उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ; 'राष्ट्रबंधु बाल साहित्य सम्मान' (2017), बालप्रहरी तथा बाल साहित्य संस्थान, अल्मोड़ा; 'ज्ञान-प्रौद्योगिकी सम्मान' (2016), हिंदी अकादमी, दिल्ली; विज्ञान परिषद् प्रयाग षताब्दी सम्मान (2012), विज्ञान परिषद, प्रयाग; बी.एस. पद्मनाभन पुरस्कार (2012); भारतीय विज्ञान लेखक संघ (ईस्वा); मेदिनी पुरस्कार (2009), पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार; हिंदी सेवी 'आत्माराम पुरस्कार' (2005), केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा; भारतेंदु हरिश्चंद्र राष्ट्रीय बाल साहित्य पुरस्कार, (2002), सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार; विज्ञान लोकप्रियकरण राष्ट्रीय पुरस्कार (2000), राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद् (एन सी एस टी सी), विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार; भारतेंदु हरिश्चंद्र राष्ट्रीय बाल साहित्य प्रथम

पुरस्कार, (1994-99), सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार; विज्ञान परिषद प्रयाग सम्मान (वर्ष 1986), प्रयाग; उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान विशेष पुरस्कार (1978-79), लखनऊ। विज्ञान परिषद, प्रयाग ने वर्ष 2006 में श्री मेवाड़ी के विज्ञान लेखन में योगदान को रेखांकित करने के लिए 'विज्ञान' मासिक पत्रिका का 'देवेंद्र मेवाड़ी सम्मान अंक' प्रकाशित किया।

श्री मेवाड़ी आधी सदी से भी अधिक समय से अविश्रांत लिखते रहे हैं। छात्र जीवन के उनके साथी और वरिष्ठ साहित्यिकार लक्ष्मण सिंह बिष्ट 'बटरोही' श्री मेवाड़ी के बारे में लिखते हैं, ''..एक पल के लिए भी उन्होंने अपनी रचनात्मक दुनिया से खुद को अलग नहीं किया। बचपन से लेकर आज तक के संपर्क के बीच मुझे याद नहीं है कि कभी हम लोगों ने अपने निजी सुख-दुखों पर बातें की हों। हमेशा, बिना किसी अपवाद के, हम लोग मिलने पर साहित्य और अपने रचना संसारों को लेकर ही बातें किया करते। कहां क्या-क्या नया छप रहा है और उसका समकालीन रचनाशीलता में कितना दखल है, इस बारे में वे बकायदा अपडेट रहते थे।''

(विज्ञान, अक्टूबर 2006, पृष्ठ-18)

एक दशक से अधिक समय तक साथ रहने के कारण मैंने मेवाड़ी जी को काफी करीब से देखा और समझा है। विज्ञान लेखन पर हमारी विस्तृत चर्चाओं का हम दोनों को भरपूर लाभ मिला है और आगे भी मिलता रहेगा। हमारी यही कामना है कि मेवाड़ी जी इसी तरह सक्रिय रह कर विज्ञान लेखन को समृद्ध करते रहे और नई पीढ़ी को प्रेरणा देते रहे। हीरक जयंती पर उन्हें 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' के सभी साथियों, लेखकों और पाठकों की ओर से हार्दिक बधाई और भावी सक्रिय, रचनात्मक दीर्घ जीवन के लिए शत-शत शुभकामनाएं!

subodhmahanti@gmail.com

❑❑❑

पर्यावरण बचाने के लिए ग्रेटा की ग्रेट मुहिम

जाहिद खान

जाहिद खान के सम-सामयिक मसलों पर देश भर की पत्र-पत्रिकाओं में हजार से ज्यादा आलेख, निबंध, समीक्षाएं आदि प्रकाषित हो चुकी हैं। उनकी किताबों की फेहरिस्त कुछ इस तरह से है-'आजाद हिंदुस्तान में मुसलमान', 'संघ का हिंदुस्तान', 'तरक्कीपसंद तहरीक के हमसफर', 'फैसले जो नजीर बन गए' और 'आधी आबादी अधूरा सफर'।
लैंगिक संवेदनषीलता पर उत्कृश्ठ लेखन के लिए मुंबई की एक सामाजिक संस्था 'पापुलेषन फर्स्ट' और यूएनएफपीए (यूनेस्को) ने जाहिद खान को जहां तीन बार साल 2011-12, 2013-14 और साल 2018 में 'लाडली मीडिया एंड एडवर्टाइजिंग अवार्ड फॉर जेंडर सेंसिटिव्हिटी' रीजनल पुरस्कार से और साल 2018 में 'साउथ एषिया लाडली मीडिया एंड एडवर्टाइजिंग अवार्ड फॉर जेंडर सेंसिटिव्हिटी' राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित किया है, तो वहीं किताब 'तरक्कीपसंद तहरीक के हमसफर' के लिए उन्हें 'वागीश्वरी पुरस्कार' भी मिला है।

सोलह साल की स्वीडिश पर्यावरण एक्टिविस्ट ग्रेटा अर्नमैन थनबर्ग का नाम आजकल पूरी दुनिया में चर्चा में है। चर्चा की वजह, पर्यावरण को लेकर उसकी विश्वव्यापी मुहिम है। अच्छी बात यह है कि जलवायु परिवर्तन और उसके दुष्प्रभावों से लोगों को जागरूक करने के लिए, ग्रेटा ने जो आंदोलन छेड़ रखा है, उसे अब व्यापक जनसमर्थन भी मिल रहा है। पर्यावरण बचाने के इस आंदोलन में लोग जुड़ते जा रहे हैं। खास तौर से यह आंदोलन बच्चों और नौजवानों को अपनी ओर खूब आकर्षित कर रहा है। पर्यावरण के प्रति ग्रेटा थनबर्ग की संवेदनशीलता और प्यार शुरू से ही था। महज नौ साल की छोटी सी उम्र में, जब वे तीसरी क्लास में पढ़ रही थीं, उन्होंने क्लाइमेट एक्टिविजम में हिस्सा लेना शुरू कर दिया था। लेकिन ग्रेटा की ओर सबका ध्यान उस वक्त गया, जब उसने पिछले साल अगस्त में अकेले ही स्वीडिश संसद के बाहर पर्यावरण को बचाने के लिए हड़ताल का आगाज किया। ग्रेटा की स्वीडन सरकार से मांग थी कि वो पेरिस समझौते के मुताबिक अपने हिस्से का कार्बन उत्सर्जन कम करे। बहरहाल ग्रेटा ने अपने दोस्तों और स्कूल वालों से भी इस हड़ताल में शामिल होने की अपील की, लेकिन सभी ने इसमें शामिल होने से इंकार कर दिया। यहां तक कि ग्रेटा के माता-पिता भी पहले इस मुहिम के लिए मानसिक तौर पर तैयार नही थे। ग्रेटा को ऐसा कुछ करने से रोकने की उन्होंने अपनी तरफ से कोशिश भी की, लेकिन ग्रेटा रूकी नहीं। ग्रेटा ने पहले 'स्कूल स्ट्राइक फॉर क्लाइमेट मूवमेंट' की स्थापना की। खुद अपने हाथ से बैनर पेंट किया और स्वीडन की सड़कों पर घूमने लगीं। उसके बुलंद हौसले का ही नतीजा था कि लोग उसके पीछे आते चले गए और कारवां बनता चला गया।

ग्रेटा थनबर्ग का यह आंदोलन बच्चों में इतना कामयाब रहा कि पूरी दुनिया के स्कूली बच्चे उनके साथ हो लिए। आज आलम यह है कि पर्यावरण बचाने के इस महान आंदोलन में एक लाख से ज्यादा विद्यार्थी शामिल हो गए हैं। इसी साल 15 मार्च के दिन, दुनिया के कई शहरों में विद्यार्थियों ने एक साथ पर्यावरण संबंधी प्रदर्शनों में भाग लिया और भविष्य में भी प्रत्येक शुक्रवार को ऐसा करने का फैसला लिया है। अपने इस कैंपेन का नाम उन्होंने 'फ्राइडेज़ फॉर यूचर' (अपने भविष्य के लिये शुक्रवार) दिया है। शुक्रवार के दिन बच्चे स्कूल जाने की बजाय, सड़कों पर उतरकर अपना विरोध दर्ज करवाएंगे। ताकि दुनिया भर के नेताओं, नीति निर्माताओं का ध्यान पर्यावरणीय संकट की तरफ जाए। वे इसके प्रति संजीदा हों और पर्यावरण बचाने के लिए अपने-अपने यहां व्यापक कदम उठाएं। जाहिर है कि यह एक ऐसी मुहिम है जिसका सभी को समर्थन करना चाहिए। क्योंकि यदि दुनिया नहीं बचेगी, तो लोग भी नहीं बचेंगे। अपनी इस मुहिम से ग्रेटा ने जो सवाल उठाए हैं और वे जिस अंदाज में बात करती हैं, उसका लोगों पर काफी असर होता है। वे अपने भाषणों में बड़ी-बड़ी बातें नहीं कहतीं, छोटी-छोटी बातों और मिसालों से उन्हें समझाती हैं, 'बिजली बल्ब बंद करने से लेकर पानी की बर्बादी रोकने और खाने को न फेंकने जैसी बातें मैं हमेशा से सुनती आई थी। जब मैंने इसकी वजह पूछी, तो मुझे बताया गया कि जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए ऐसा किया जा रहा है। मुझे यह जानकर हैरानी हुई कि लोग इसके बारे में कम ही बात करते हैं। अगर हम इंसान जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को रोक सकते हैं, तो हमें इसके बारे में बात करनी

चाहिए।''

पर्यावरण बचाने की ग्रेटा थनबर्ग की यह बेमिसाल मुहिम स्कूलों में तो चल ही रही है, इसके अलावा उन्होंने अपनी इस मुहिम को अब स्कूल की चारदीवारी, बल्कि यह कहें कि अपने देश की सरहदों से भी बाहर निकाल दिया है। स्टॉकहोम, हेलसिंकी, ब्रुसेल्स और लंदन समेत दुनिया के कई देशों में जाकर ग्रेटा ने अलग-अलग मंचो पर जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए अपनी आवाज उठाई है। दावोस में विश्व आर्थिक मंच के एक सत्र को भी ग्रेटा ने संबोधित किया है। यही नहीं पिछले साल दिसंबर में पोलैंड के काटोवाइस में आयोजित, जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क कन्वेंशन (यूएनएफसीसीसी) से संबंधित कांफ्रेंस ऑफ पार्टीज (सीओपी) की २४वीं बैठक में उन्होंने हिस्सा लिया और पर्यावरण पर अपना जबर्दस्त भाषण दिया था। अपने इन भाषणों में वे लोगों को पर्यावरण के प्रति जागरूक करती हैं। जलवायु संकट के बारे में उन्हें अपने खास अंदाज से समझाती हैं। मसलन ''हम दुनिया के नेताओं से भीख मांगने नहीं आए हैं। आपने हमें पहले भी नजरअंदाज किया है और आगे भी करेंगे। लेकिन अब हमारे पास वक्त नहीं है। हम यहां आपको यह बताने आए हैं कि पर्यावरण खतरे में है।'' उनके जज्बाती और बेबाक भाषण का लोगों पर काफी असर होता है। जो काम बड़ी-बड़ी बातें नहीं करतीं, छोटी बातें कर जाती हैं। ग्रेटा की इस ग्रेट मुहिम का असर आहिस्ता-आहिस्ता ही सही, अब दिखने लगा है। आम आदमी से लेकर सियासी लीडर भी ग्रेटा की इन चिंताओं में शरीक होने लगे हैं। ग्रेटा से ही प्रभावित होकर दुनिया भर के तकरीबन 2000 स्थानों पर पर्यावरण को बचाने के लिए प्रदर्शन हो रहे हैं। अपना काम-काज छोड़कर, लोग सड़कों पर निकल रहे हैं। ब्रिटेन में पिछले दिनों यहां के लाखों लोगों ने ग्रेटा थनबर्ग के साथ सड़कों पर इस मांग के साथ प्रदर्शन किया कि देश में क्लाइमेट इमरजेंसी लगाई जाए। इस प्रदर्शन का नतीजा यह रहा कि ब्रिटेन की संसद को ये फैसला करना पड़ा और उसने देश में क्लाइमेट इमरजेंसी लगा दी। यह करके ब्रिटेन, दुनिया में अपनी तरह का एक अनूठा और ऐतिहासिक कदम उठाने वाला, पहला देश बन गया।

ग्रेटा अपनी बात लोगों तक पहुंचाने के

लिए सिर्फ उनके बीच ही नहीं जाती, बल्कि सोषल मीडिया का भी जमकर इस्तेमाल करती है। क्योंकि उसे मालूम है कि आज का युवा अपना सबसे ज्यादा वक्त इस माध्यम पर बिताता है। लिहाजा वह इस माध्यम का सकारात्मक इस्तेमाल करती है। ट्विटर के जरिए उन्हें जागरूक करती है। पर्यावरण बचाने के लिए वे आगे आएं, इसके लिए प्रेरित करती है। ग्रेटा ने हमारे देष के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी को भी एक वीडियो के जरिए संदेश भेजा था। जिसमें उन्होंने प्रधानमंत्री से गुजारिश की थी कि वे पर्यावरण बचाने और जलवायु परिवर्तन के संकटों से उबरने के लिए अपने देष में गंभीर कदम उठाएं। पर्यावरण बचाने की अपनी इस ग्रेट मुहिम से ग्रेटा थनबर्ग का नाता सिर्फ सैद्धांतिक नहीं है, बल्कि अपने व्यवहार से कोषिष करती हैं कि खुद भी इस पर अमल करें। आगामी 23 सितंबर को न्यूयॉर्क में होने वाली संयुक्त राष्ट्र की क्लाइमेट समिट में ग्रेटा को हिस्सा लेना है। स्वीडन से न्यूयॉर्क की लंबी यात्रा के लिए उन्होंने यॉट में सफर करने का फैसला किया है। वह इसलिए, ताकि वह अपने हिस्से का कार्बन उत्सर्जन रोक सकें। यॉट में सौर पैनल और अंडरवाटर टर्बाइन लगे हुए हैं, जिससे पर्यावरण को नुकसान नहीं होता। यह छोटी-छोटी बातें हैं, जो बतलाती हैं कि यदि हम जागरूक रहें, तो पर्यावरण बचाने में अपना भी योगदान दे सकते हैं। अनुपयोगी पदार्थ प्रबंधन, जैव विविधता, जलवायु परिवर्तन के प्रति संवेदनशील व जागरूक रहने से काफी कुछ बचाया जा सकता है। ग्लोबल वार्मिंग के प्रति जागरूकता फैलाने के लिए ग्रेटा थनबर्ग को

इतनी कम उम्र में ही कई सम्मानों और पुरस्कारों से नवाजा जा चुका है। एमनेस्टी इंटरनेशनल के 'एम्बेसडर ऑफ कनसाइंस अवॉर्ड, 2019' के अलावा दुनिया की प्रतिष्ठित टाइम मैगजीन ने ग्रेटा को साल 2018 की सबसे प्रभावशाली 25 टीनएजर्स की सूची में शामिल किया है। यही नहीं तीन नॉर्वेजियन सांसदों ने पिछले दिनों ग्रेटा को नोबल शांति पुरस्कार के लिए नामित किया है। जाहिर है कि यह उनके काम का सबसे बड़ा सम्मान है।

इस समय पूरी दुनिया जलवायु परिवर्तन के गंभीर संकट से जूझ रही है। यूएन की एक रिपोर्ट बतलाती है कि दुनिया भर के 10 लोगों में से 9 लोग जहरीली हवा लेने को मजबूर हैं। हर साल 70 लाख मौतें, वायु प्रदूषण की वजह से होती है। इन 70 लाख लोगों में 40 लाख का आंकड़ा एशिया से आता है। जलवायु परिवर्तन की वजह से होने वाले खराब मौसम की वजह से हमारे देश में ही हर साल 3660 लोगों की मौतें हो जाती हैं। लांसेट की एक रिपोर्ट के मुताबिक, दुनिया भर में जलवायु परिवर्तन के चलते 153 अरब कामकाजी घंटे बर्बाद हुए हैं। जिसके चलते उत्पादकता के क्षेत्र में भी भारी कमी आई है, जिससे पूरी दुनिया को 326 अरब डॉलर का नुकसान पहुंचा है। इसमें 160 अरब डॉलर का नुकसान तो सिर्फ भारत को ही हुआ है। पर्यावरणविदों का मानना है कि अगर सही समय पर कार्बन उत्सर्जन को कम करने के प्रयास नहीं किए गए, तो पृथ्वी के सभी जीव जन्तुओं का अस्तित्व खतरे में आ जाएगा। ग्लोबल वार्मिंग का खतरा सभी देशों के लिये एक बड़ी चुनौती है। इस गंभीर चुनौती से तभी निपटा जा सकता है, जब सभी इसके प्रति जागरूक हों और पर्यावरण बचाने के लिए मिलकर योजनाबद्ध तरीके से काम करें। खास तौर से हमारी नई पीढ़ी इसके लिए आगे आए। अपनी जिम्मेदारियों को खुद समझे और दूसरों को भी समझाएं। जलवायु परिवर्तन के संकट से जूझ रही दुनिया के सामने, अपने जागरूकता अभियान से ग्रेटा थनबर्ग ने एक शानदार मिसाल पेश की है। दुनिया को बतलाया है कि अभी भी ज्यादा वक्त नहीं बीता, संभल जाएं। वरना, पछताने के लिए कोई नहीं बचेगा।

jahidk.khan@gmail.com

वेटरिनरी साइंस

संजय गोस्वामी

संजय गोस्वामी विगत पंद्रह वर्षों से विज्ञान लेखन से जुड़े हैं आपने हिन्दी विज्ञान के क्षेत्र में तीन सौ से अधिक कॅरियर लेख लिखे हैं जो विज्ञान विषयक होते हैं। 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिये' में वे विगत लगभग पांच वर्षों से शृंखलाबद्ध लिख रहे हैं। इसके अतिरिक्त विज्ञान लेख, विज्ञान समाचार, विज्ञान कविता, विज्ञान रपट, विज्ञान समीक्षा आदि का लेखन और प्रकाशन हुआ है। कई पुरस्कारों से सम्मानित संजय गोस्वामी हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद्, भा.प.अ. केन्द्र, मुंबई के कार्यकारी सदस्य हैं। आप इन दिनों मुंबई में रहकर हिन्दी विज्ञान पत्रिका में लेखन एवं संपादन से संबद्ध हैं।

जानवर के डॉक्टर को वेटरिनरी डॉक्टर कहते हैं वेटरिनरी साइंस के अंतर्गत पशु स्वास्थ्य देखभाल, प्रजनन, पशु आहार और प्रबंधन पद्धतियों का अध्ययन किया जाता है। पशु चिकित्सा विज्ञान पशुओं के स्वास्थ्य और भलाई से संबंधित पाठ्यक्रम है। मवेशियों की व्यापक श्रेणियों को देखते हुए पशु चिकित्सा विशेषज्ञ का कार्य अत्यंत चुनौतीपूर्ण है। पहले यह माना जाता था कि पशु चिकित्सा व्यवसाय सिर्फ पुरूषों के लिए हैं, लेकिन अब धारणा बदल गयी है और महिलाएं भी इस क्षेत्र में आगे आ रही हैं। यह एक ऐसा मेडिकल व्यवसाय है जो कृषि पशुओं में स्वास्थ्य देखभाल और रोग प्रबंधन से जुड़ा हुआ है। पिछले कुछ वर्षो से वेटरिनरी साइंस तथा पशुपालन व्यावसायिकों का महत्व काफी बढ़ा है। वेटरिनरी साइंस या पशु चिकित्सा विज्ञान, यह साइंस पशु और पक्षियों में अलग-अलग तरह की बीमारियों को पहचानने और उसके ट्रीटमेंट से जुड़ा है। मेडिकल फील्ड के इस करियर बनाने के इस ऑप्शन में करियर की तमाम संभावनाएं हैं। तुलनात्मक दृष्टि से यह एक नया और उभरता हुआ क्षेत्र है, जिसमें रोज़गार की व्यापक संभावनाएं हैं। वेटेरिनरी डॉक्टर्स का कार्य पशुओं के स्वास्थ्य का ख्याल रखना, उन्हें बीमारियों से छुटकारा दिलाना, उनके रहन-सहन व खानपान में सुधार करना तथा उनकी उत्पादन तथा प्रजनन क्षमता बढाना होता है। इसके अलावा पशुओं से मनुष्यों में होने वाले रोगों से बचाव के लिए चिकित्सीय उपाय ढूंढने का कार्य भी करते हैं वेटेरिनरी डॉक्टर वेटेरिनरी डॉक्टर्स का कार्य पशुओं के स्वास्थ्य का ख्याल रखना, उन्हें बीमारियों से छुटकारा दिलाना, उनके रहन-सहन व खानपान में सुधार करना तथा उनकी उत्पादन तथा प्रजनन क्षमता बढाना होता है। इसके अलावा पशुओं से मनुष्यों में होने वाले रोगों से बचाव के लिए चिकित्सीय उपाय ढूंढने का कार्य भी करते हैं वेटेरिनरी डॉक्टर पशु चिकित्सकों का मुख्य दायित्व पशुओं और पक्षियों में विभिन्न प्रकार की बीमारियों का पता लगाना और उनका इलाज तथा निदान करते हुए उनके स्वास्थ्य तथा कल्याण की देखरेख करना है। पशु चिकित्सक पशुओं का इलाज करने के अलावा फार्म पशुओं में बीमारी को फैलने से रोकने के वास्ते सर्जरी करते हैं तथा समय-समय पर टीकाकरण और दवाएं उपलब्ध कराते हुए बीमारियों से उनकी रक्षा करते हैं साथ ही वे वन्यजीव संरक्षण, कुक्कुट प्रबंधन तथा स्वास्थ्य देखभाल के संबंध में परामर्श भी देते हैं। हमारे देश में व्यापक मवेशी संसाधन है। इसका प्रमाण मवेशियों की संख्या और आनुवंशिक विविधता तथा पारिस्थितिकी में उनके योगदान के रूप में देखा जा सकता है। भारत में मवेशियों की संख्या सबसे ज्यादा है हमारे यहां करीब बावन करोड़ पशुदल हैं, जो दुनिया के कुल मवेशियों का पंद्रह प्रतिशत है। पशुओं की इतनी बड़ी संख्या की देखभाल के लिए पशु चिकित्सा विशेषज्ञों की मांग निरंतर बढ़ रही है। पशु चिकित्सा उद्योग के व्यवसायीकरण और भारत सरकार की उदारीकरण की नीतियों को देखते हुए खाद्य विनिर्माण, फार्मास्युटिकल, निदानात्मक और टीका उत्पादन आदि क्षेत्रों में अधिक से अधिक अंतर्राष्ट्रीय उद्योग खुले हैं जिनसे पशु चिकित्सा व्याससायियों की मांग निरंतर बढ़ रही हैं। विभिन्न प्राणी-विज्ञान अनुसंधान संस्थान विभिन्न विभागों में अनुसंधान एवं विकास कार्यो को संचालित

करने के लिये पशु-चिकित्सकों की नियुक्ति करते हैं। वन्यजीव विशेषज्ञ अपनी पसंद तथा विशेषज्ञता क्षेत्र के अनुरूप आउटडोर, प्रयोगशालाओं या कार्यालयों में असाइनमेंट्स पर काम शुरू कर सकते हैं। वन्यजीव संरक्षण के लिए कार्यरत विभिन्न सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों में भी रोजगार के काफी अवसर हैं। रोज़गार के अवसर मुख्यतः सरकारी विभागों, अनुसंधान संस्थानों जैसे कि भारतीय वन्यजीव संस्थान, देहरादून, संकटापन्न प्रजातियों के संरक्षण हेतु प्रयोगशाला (एल.ए.सी.ओ.एन.एस.), भारतीय प्राणी-विज्ञान सर्वेक्षण विभाग, नई दिल्ली आदि में वैज्ञानिक/ औषधविज्ञानी/ वैज्ञानिक अधिकारी /अनुसंधान अधिकारी/ महामारी विशेषज्ञ के रूप में उपलब्ध होते हैं। वन्यजीव विशेषज्ञ राष्ट्रीय प्राणी उद्यानों में अभिभावक के तौर पर, राष्ट्रीय प्राणी विज्ञान उद्यानों में वन्यजीव बायोलॉजिस्ट के तौर पर, केंद्रीय पशुचिकित्सा, कृषि, मात्स्यिकी विज्ञानों तथा परंपरागत विश्वविद्यालय में सहायक प्रोफेसर/प्रवक्ता के रूप में, वन्यजीव अनुसंधान संस्थानों तथा सरकारी विभागों- जैसे कि भारतीय वन्यजीव संस्थान, भारतीय विज्ञान संस्थान, संकटापन्न प्रजातियों के संरक्षण हेतु प्रयोगशाला में वैज्ञानिक के रूप में, काम कर सकते हैं। यदि आपकी पशु चिकित्सा के इस क्षेत्र में रुचि है और जानवरों की सेवा के लिए जुनून है तो आप पशु चिकित्सक के रूप में अपना करियर जारी रख सकते हैं। यदि आप पशु चिकित्सा विज्ञान का अध्ययन करते हैं, तो आप चिकित्सा डिग्री पर पाए जाने वाले समान विषयों में से कई विषयों को कवर करेंगे, लेकिन मनुष्यों के बजाय जानवरों पर ध्यान केंद्रित करने होते हैं। बीवीएससी पाठ्यक्रम में शरीर रचना विज्ञान, पशु व्यवहार, पशुपालन, कोशिका जीव विज्ञान, पोषण, शरीर विज्ञान, आनुवांशिकी, महामारी विज्ञान, औषध विज्ञान, संक्रामक रोग, विकृति विज्ञान, परजीवी विज्ञान और सार्वजनिक स्वास्थ्य शामिल हैं।

क्षेत्र

भारतीय प्राणी-विज्ञान सर्वेक्षण तथा प्राकृतिक इतिहास संग्रहालय नई दिल्ली में प्राणी-विशेषज्ञ, डब्ल्यूआई, एलएसीओएनएस, आई वी आर आई, एसएसीओएन और अन्य महाविद्यालयों में समयबद्धशोधकर्ता/ कनिष्ठ अनुसंधान अध्येता (जेआरएफ)/वरिष्ठ अनुसंधान अध्येता (एसआरएफ)/ अनुसंधान एसोसिएट, सीपीसीएसईए, पर्यावरण और वन मंत्रालय, चेन्नै में परामर्शदाता के रूप में काम कर सकते हैं। इसी तरह राज्य सरकारों, चिड़ियाघरों में तथा प्राणीविज्ञान उद्यानों/ राष्ट्रीय उद्यानों/अभयारण्यों/राज्य वन विभागों आदि में क्यूरेटर्स तथा वन्यजीव सुरक्षित क्षेत्रों में वैज्ञानिक/अनुसंधान अधिकारी के रूप में भी अवसर मौजूद हैं ऐसे बहुत से गैर-सरकारी संगठन हैं जो कि वन्यजीव सुरक्षा, पुनर्वास और राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर संरक्षण के क्षेत्र में काम कर रहे हैं। गैर-सरकारी संगठन सरकार सहित विभिन्न वित्तपोषण एजेंसियों से अनुदान के लिए आवेदन कर सकते हैं। पशु चकित्सा विज्ञान के अंतर्गत सभी पालतू पशु अभिप्रेत हैं और इसमें पक्षी, मछली, वन्य पशु, सरीसृप और मधुमक्खियां सम्मिलित हैं वन्यजीव पशुचिकित्सा विज्ञानियों के साथ-साथ इस क्षेत्र से संबद्ध अन्य क्षेत्रों के छात्रों के लिए सुरूचिपूर्ण पाठ्यक्रम संचालित किया जाता है। जिसके तहत आप गेम कैप्चर ऑपरेशन्स, वन्यजीवों के फील्ड तथा लैब कार्य, विभिन्न प्रजातियों के प्रजनन, वन्यजीव पुनर्वास, पारिस्थितिकी प्रणाली तथा जैव-विविधता संरक्षण कार्यो से जुड़ सकते हैं। विकासोन्मुख वन्यजीव उद्योग में पशुचिकित्सा की पृष्ठभूमि और पशुओं से मानव के जूनॉटिक पहलुओं की समझ रखने वाले तथा मनुष्य और पशुरोगों के बीच संबंध की निगरानी प्रणाली से संबद्ध व्यक्ति इस व्यवसाय से जुड़ सकते हैं। वन्यजीव वेटरिनॅरि पैथोलॉजी पाठ्यक्रमों से पशुचिकित्सा विज्ञानियों के लिए योग्य उम्मीदवारों के लिए विदेशों में बहुत से अवसर हैं। पशुचिकित्सा से पशु आयुर्विज्ञान, पशु अभिजनन, पशुधन-उत्पादन और प्रबंध, पशुओं का पोषण, पशुधन के उत्पाद, खाद्य पदार्थ और खाद्य के संबंध में प्रौद्योगिकियां या जैव-प्रौद्योगिकियां विषय हैं भारत से विशेषज्ञों को प्रमुख संगठनों में वन्यजीव सलाहकार के रूप में रोज़गार प्राप्त होता है। वन्यजीवों का वैज्ञानिक प्रबंधन तथा संरक्षण सरकारी, गैर-सरकारी संगठनों का संयुक्त प्रयास है तथा हमारे वन्यजीवों के संरक्षण में बहुत से अंतर्राष्ट्रीय संगठन शामिल हैं। इसे इसके सभी पहलुओं जैसे कि जीवविज्ञान, पारिस्थितिकी, स्वास्थ्य, फारेंसिक तथा वन्य जीवों के पशुपालन आदि के क्षेत्र में

अवसर

वेटरिनरी साइंस में स्नातकों के लिए बहुत से कैरिअर विकल्प हैं। डेयरी तथा कुक्कुट फार्मों को पशुचिकित्सकों की आवश्यकता होती हैं। वे निजी प्रैक्टिस भी कर सकते हैं। सरकार भी पशुचिकित्सा विज्ञानियों को पशु चिकित्सा वैज्ञानिकए कृषि और खाद्य वैज्ञानिक, पशु देखभाल और सेवा कार्यकर्ता, पशुदंत चिकित्सक सूक्ष्म जीव वैज्ञानिक, पशुदृष्टि विशेषज्ञ पशु चिकित्सकों और सर्जनों के लिए पशु चिकित्सा सहायक और प्रयोगशाला पशु देखभालकर्ता तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यावसायिकों के रूप में नियुक्त करती है जिनकी सेवाएं चिड़ियाघरों, राष्ट्रीय उद्यानों और वन्यजीव अभयारण्यों में ली जाती हैं। यदि आप शिक्षण कार्य के इच्छुक हैं तो इस व्यवसाय को भी चुन सकते हैं। वेटरिनरी साइंस में स्नातक व्यक्ति अनुसंधान कार्य से जुड़ सकते हैं।विविध क्षेत्रों में उद्यमशीलता विकास की संभानाएं निरंतर बढ़ रही हैं। भारतीय पशुचिकित्सा अनुसंधान संस्थान, भारतीय प्राणी-विज्ञान सर्वेक्षण,नई दिल्ली, पर्यावरण और वन मंत्रालयए में वैज्ञानिक/वैज्ञानिक अधिकारी/अनुसंधान अधिकारी/सहायक प्रोफेसर के रूप में, काम कर सकते हैं।

पात्रता

परीक्षा में प्रवेश के लिए न्यूनतम परीक्षा पीसीबी (PCB) और अंग्रेजी में कुल 55% अंक आवश्यक हैयूजी पाठ्यक्रमों में प्रवेश के लिए, आपको जीव विज्ञान, रसायन विज्ञान और भौतिकी के साथ 10 + 2 उत्तीर्ण होना चाहिए। पीजी पाठ्यक्रमों में प्रवेश के लिए, आपके पास पशु चिकित्सा विज्ञान में स्नातक की डिग्री होनी चाहिए।

प्रवेश प्रक्रिया

वेटरिनरी साइंस और पशुपालन पाठ्यक्रम पशु चिकित्सा कॉलेजों जो लगभग हर राज्य में स्थित हैं वेटरिनरी साइंस कोर्स में प्रवेश के लिए, संयुक्त प्रवेश परीक्षा (ब्प्ज्) आयोजित की जाती हैं। राज्य के कॉलेजों आम तौर पर उनके कॉलेजों में छात्रों को प्रवेश के लिए भारत में प्रत्येक पशु चिकित्सा महाविद्यालय में नियमानुसार १५ः सीट अखिल भारतीय प्रवेश परीक्षा द्वारा भरा जाता है प्रवेश के लिए पशु चिकित्सा परिषद, नई दिल्ली -110005 करोल बाग वेटरिनरी साइंस कोर्स (5) years BVSc course) के लिए एक अखिल भारतीय प्रवेश परीक्षा का आयोजन करता है इससे पहले, बैचलर ऑफ वेटरनरी साइंस एंड एनिमल हसबैंड्री में प्रवेश के लिए वेटरनरी काउंसिल ऑफ इंडिया ऑल इंडिया प्री वेटरनरी टेस्ट आयोजित करता है। यह तीन घंटे की अवधि की परीक्षा है और इसमें पीसीबी समूह के 180 वस्तुनिष्ठ प्रकार के प्रश्न है। जिन्होंने निर्धारित अंकों के साथ कक्षा १२ और एनईईटी परीक्षा उत्तीर्ण की है, वे एआईपीवीटी के लिए पात्र होंगे। इसलिए उम्मीदवारों को पशु चिकित्सा पाठ्यक्रमों में प्रवेश पाने के लिए एनईईटी परीक्षा उत्तीर्ण करनी होगी। पशु चिकित्सा स्कूलों में प्रवेश के लिए, प्रवेश परीक्षा में संतोषजनक स्कोर के आधार पर प्रदान किया जाता है, जैसे ग्रेजुएट रिकॉर्ड परीक्षा (जीआरई), मेडिकल कॉमन एडमिशन टेस्ट (एमसीएटी) या पशु चिकित्सा महाविद्यालय प्रवेश परीक्षा (वीसीएटी) उत्तीर्ण करनी होगी।

कार्य करके हासिल किया जा सकता है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए भारत तथा विदेशों के वन्यजीव पशुचिकित्सका जीवविज्ञानियों, पारिस्थितिकीविदों, शोधकर्ताओं तथा वन्यजीव प्रेमियों को आगे आकर योगदान करना चाहिए। ज्यादातर पशुचिकित्सक सरकारी पशुपालन विभागों, कुक्कुट फार्मो, डेयरी फार्मो, भेड़ और चूहा फार्मो, सुअर फार्मो, रेस क्लबों, घोड़ा फार्मो, निजी तथा सरकारी पशुचिकित्सा अस्पतालों तथा क्लीनिकों में कार्य कर सकते हैं। इसके अलावा सरकार पशुचिकित्सकों को जन स्वास्थ्य विशेषज्ञों के तौर पर भी नियुक्त करती है जिनकी सेवाओं का चिड़ियाघरों, राष्ट्रीय उद्यानों तथा वन्यजीव अभयारण्यों में उपयोग किया जाता है। कृषि मंत्रालय के तहत गांव में पशु चिकित्सा विज्ञान में स्नातक डिग्री धारक उम्मीदवार के लिए (BVSc) पशु चिकित्सक अधिकारी, पशुचिकित्सा सहायक, पशुचिकित्सा तकनीशियन, पशु खाद्य निरीक्षण विशेषज्ञ पशु चिकित्सक सहयोगी, पशु चिकित्सा सर्जन पशु चिकित्सा औषधविज्ञानी और वैज्ञानिक की हमेशा मांग हैं। सीएसआईआर के अनुसंधान केंद्र में, वे वैज्ञानिक सहायक के पद पर भी नियुक्त होते हैं। पशु-पक्षिओं में पालतू और जंगली दोनों प्रकार के होते है। इतनी भारी संख्या में पशु होने के बावजूद हमारे देश में पशु चिकित्सक यानि वेटरनरी डॉक्टर की काफी कमी है। समय के साथ मौसम और जलवायु में आए बदलाव के कारण पशु भी जानलेवा बिमारी का शिकार होते है, लेकिन उनके इलाज के लिए वेटरनरी डॉक्टर ढूंढे से भी नहीं मिलते है। अगर आप भी पशु-पक्षियों से प्यार करते है और इन बेजुवानों के दर्द को दूर करना चाहते है तो आपके लिए वेटरनरी डॉक्टर का प्रोफेशन बेहतरीन साबित हो सकता है।

मुख्य विषय

पशु चिकित्सा के स्नातक पाठ्यक्रम में पशु शरीर रचना विज्ञान, जैव रसायन, पशु जैव प्रौद्योगिकी, पशुपालन, पशु अर्थशास्त्र, पशुपालन विस्तार, पशु प्रजनन और पशुधन विस्तार, पशु आनुवंशिकी और प्रजनन, डेयरी विज्ञान और प्रौद्योगिकी, डेयरी रसायन विज्ञान, डेयरी इंजीनियरिंग, डेयरी माइक्रोबायोलॉजी, खाद्य स्वच्छता, भोजन और चारा प्रौद्योगिकी , स्टैटिक्स और पशु रोग, सूक्ष्म जीव विज्ञान, मांस विज्ञान और प्रौद्योगिकी, पोषण, पशु फारेंसिक विज्ञान पैथोलॉजी, फिजियोलॉजी, परजीवी, कुक्कुट विज्ञान और प्रौद्योगिकी, सूअर पालन, औषध विज्ञान, निवारक चिकित्सा, शल्य चिकित्सा, सांख्यिकी और विष विज्ञान शामिल है। बैचलर ऑफ वेटरनरी साइंस मॉड्यूल में शरीर रचना विज्ञान, पशु व्यवहार, पशुपालन, कोशिका जीव विज्ञान, पोषण, शरीर विज्ञान, आनुवांशिकी, महामारी विज्ञान, औषध विज्ञान, संक्रामक रोग, विकृति विज्ञान, परजीवी विज्ञान और सार्वजनिक स्वास्थ्य शामिल हैं।

कोर्स

पशु चिकित्सा विज्ञान के तहत दिए जाने वाले कोर्स इस प्रकार हैं - स्नातक पाठ्यक्रमः

- पशु चिकित्सा विज्ञान में स्नातक- पांच वर्ष
- पशु चिकित्सा विज्ञान और पशुपालन स्नातक में स्नातक (BVSc-AH)-पांच वर्ष
- पशु आनुवंशिकी और प्रजनन में बीवीएससी
- पशु उत्पादन और प्रबंधन में बीवीएससी
- पशु चिकित्सा सर्जरी और रेडियोलॉजी में बी वी एससी
- पशु चिकित्सा, सार्वजनिक स्वास्थ्य और स्वच्छता में बीवीएससी

मास्टर पाठ्यक्रम-

- पशु चिकित्सा विज्ञान के मास्टर (MVSc) - तीन साल
- पशु चिकित्सा में एमवीएससी
- पशु चिकित्सा फार्माकोलॉजी और विष विज्ञान में एमवीएससी
- पशु चिकित्सा सर्जरी और रेडियोलॉजी में एमवीएससी

डॉक्टरेट पाठ्यक्रम-

- पशु चिकित्सा में डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी (पीएचडी)
- वेटरनरी पैथोलॉजी में डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी (पीएचडी)
- वेटरनरी फार्माकोलॉजी एंड टॉक्सिकोलॉजी में डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी (पीएचडी)

पारिश्रमिक

पशुचिकित्सकों का पारिश्रमिक उसकी प्रैक्टिस तथा उसके इलाज के अधीन पशुओं के आधार पर भिन्न-भिन्न होता हैं। सरकारी पशुचिकित्सा केंद्रों/ अस्पतालों में नव-स्नातकों को आकर्षक वेतन पर नियुक्त किया जाता हैं और बहुत कुछ उसकी लोकप्रियता व अनुभव पर भी निर्भर करता हैं। इनके लिए मुख्यत रोजगार के अवसर विमानन, रक्षा, मेडिकल व फार्मास्युटिकल कंपनी, एग्रीकल्चर सेक्टर, प्राइवेट और सरकारी रिसर्च और डेवलपमेंट सेंटर में होते हैं। विदेशों में पशु चिकित्सा विज्ञान में डिग्री धारक उम्मीदवार के लिए (BVSc) पशु चिकित्सक और वैज्ञानिक की हमेशा मांग हैं।

मुख्य संस्थान

- पशु विज्ञान एवं मात्स्यिकी विज्ञान विश्वविद्यालय, नागपुर, महाराष्ट्र
- भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, बैंगलोर कर्नाटक
- भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, बरेली
- भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, भोपाल, मध्य प्रदेश
- भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, मुक्तसर, पंजाब
- भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, श्रीनगर जम्मू और कश्मीर
- आचार्य ए.जी. रंगा कृषि विश्वविद्यालय, (ए.एन.जी.आर.ए.यू.), हैदराबाद, आंध्र प्रदेश
- आणन्द कृषि विश्वविद्यालय, आणन्द, गुजरात
- अपोलो पशुचिकित्सा औषधि कॉलेज, आगरा रोड, जयपुर
- पशुचिकित्सा कॉलेज एवं अनुसंधान संस्थान, नमक्कल (तमिलनाडु)
- अरावली पशुचिकित्सा कॉलेज, बजोरी गांव, जयपुर रोड, सीकर
- केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय (सी.ए.यू.), इम्फाल, मणिपुर
- डॉ. पंजाब राव देशमुख कृषि विश्वविद्यालय (पी.के.वी.), अकोला, महाराष्ट्र
- पश्चिम बंगाल पशु एवं मात्स्यिकी विज्ञान विश्वविद्यालय, कोलकाता
- चंद्रशेखर आजाद युनिवर्सिटी ऑफ एग्रीकल्चर एंड टेक्नॉलॉजी, कानपुर, उत्तर प्रदेश
- महात्मा ज्योति फुले पशुचिकित्सा एवं पशु विज्ञान कॉलेज, रिंगस रोड, चोमू, जयपुर
- बी.एस. पशु चिकित्सा औषधि कॉलेज एवं अनुसंधान केन्द्र, गोरीवाड़ा कला, मुकुन्दगढ़, झुनझुनू
- श्री गंगानगर पशुचिकित्सा कॉलेज हनुमानगढ़, श्रीगंगानगर
- बिरसा कृषि विश्वविद्यालय (बी.ए.यू.) रांची, झारखंड
- पशुचिकित्सा एवं पशुविज्ञान कॉलेज, नवानिया, वल्लभनगर, उदयपुर
- मद्रासवेटरिनरी कॉलेज, चेन्नई
- खालसा कॉलेज ऑफ वेटरिनरी एंड एनिमल साइंसेज, पंजाब
- इंडियन वेटरिनरी रिसर्च इंस्टीट्यूट, कोलकाता
- आनंद एग्रीकल्चरल यूनिवर्सिटी, आनंद, गुजरात

goswamisanjay80@yahoo.in

❒❒❒

डॉ. जाकिर अली 'रजनीश' का जन्म 1 जनवरी 1975 को लखनऊ में हुआ। हिन्दी में स्नात्कोत्तर, पी.एच-डी. उपाधि प्राप्त की और इन दिनों राज्य कृषि उत्पादन मंडी परिसर उत्तरप्रदेश में कार्यरत हैं। आपने दूरदर्शन तथा आकाशवाणी के लिये भी लेखन किया। वैज्ञानिक उपन्यास, विज्ञान कथा संग्रह, पटकथा लेखन पुस्तक, वैज्ञानिकों की जीवनी सहित आपने अनेक वैज्ञानिक पुस्तकों का सृजन किया। आपको जर्मनी सहित देश-विदेश दो दर्जन संस्थाओं से सम्मानित - पुरस्कृत किया गया है। पुस्तक में नौ बाल विज्ञान कथाएँ एवं ह्यूमन ट्रांसमिशन नामक एक लधु बाल उपन्यास सम्मिलित हैं। विज्ञान कथाओं के माध्यम से समाज में व्याप्त अंधविश्वासों का खुलासा बड़े रोचक तरीके से किया गया है जबकि उपन्यास में एक वैज्ञानिक के स्थानांतरित होने का सजीव चित्रण किया गया है।

महेन्द्र कुमार माथुर का जन्म 20 जुलाई 1940 को हुआ। वे बीएचईएल भोपाल के सेवानिवृत्त उपमहाप्रबंधक हैं। अनेक प्रशासन अकादमी और इंस्टीट्यूट और विज्ञान सेन्टर के संकाय सदस्य होने के साथ आपने प्रबंध की विषयों पर दर्जनों लेख लिखे। हिन्दी अंग्रेजी अनुवाद पर आपका वृहद काम है। इस पुस्तक में ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति पर प्राचीन भारतीय एवं आधुनिक अवधारणाओं का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। साँख्य दर्शन ब्रह्माण्ड के रहस्यों को समझने की दिशा में 'मील का पत्थर' है। आइंस्टीन के सिद्धांत, स्टीफन हाकिंग के विचार एवं बिग बैंग थ्योरी का समुचित समावेश किया गया है।

विज्ञान इस माह

धूमकेतु स्विफ्ट से बरसेंगी उल्काएं

इरफान ह्यूमन
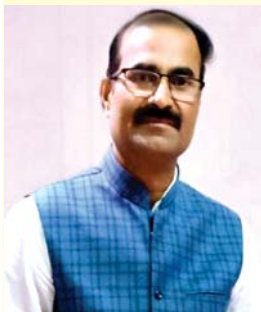
डॉ. इरफान ह्यूमन विगत पच्चीस वर्षों से 'साइंस न्यूज एण्ड व्यूज़' मासिक विज्ञान पत्रिका का संपादन व प्रकाशन कर रहे हैं। आप विज्ञान लोकप्रियकरण कार्यक्रमों के माध्यम से देशभर में वैज्ञानिक जागरुकता के लिए प्रयासरत हैं। आपके एक हजार से अधिक लेख प्रकाशित हुए हैं, आकाशवाणी से अनेक विज्ञानवार्ताओं का प्रसारण हुआ है, विज्ञान धारावाहिक लेखन तथा विज्ञान डाक्यूमेंट्री फिल्मों के निर्माण में आपका बड़ा योगदान है। मुंबई में साइंस फिल्म फेस्टिवल आपकी फिल्में प्रदर्शित हुई हैं। विज्ञान लेखन तथा विज्ञान लोकप्रियकरण के लिए आपको कई सम्मान प्राप्त हैं तथा कई वैज्ञानिक संस्थाओं के मानद हैं। वर्तमान में आप शाहजहाँपुर उ.प्र. में निवासरत हैं।

9 अगस्त को बुद्ध (Mercury) ग्रह अपने वृहद्तम पश्चिमी बढ़ाव (Greatest western elongation) पर होगा। बुध ग्रह सूर्य से 19.0 डिग्री की सबसे उच्च पश्चिमी बढ़ाव पर पहुँचेगा। बुध को देखने का यह सबसे अच्छा समय होगा क्योंकि यह सुबह के आकाश में क्षितिज के ऊपर अपने उच्चतम बिंदु पर दिखाई देगा। सूर्योदय से ठीक पहले इस ग्रह को पूर्वी आकाश में नीचे देखा जा सकता है। 12 व 13 अगस्त को रात के आकाश में पेर्सीड्स उल्का वर्षा का नज़ारा लिया जा सकता है। उल्का वर्षा का अवलोकन करने के लिए यह सबसे अच्छा समय है, जो अपने चरम पर प्रति घंटे 60 उल्काओं का उत्पादन करती प्रतीत होगी। यह उल्का वर्षा धूमकेतु स्विफ्ट-टटल (Comet Swift-Tuttle) द्वारा निर्मित है, जिसे वर्ष 1862 में खोजा गया था। पर्सिड्स बड़ी संख्या में उज्ज्वल उल्काओं के उत्पादन के लिए प्रसिद्ध हैं। यह बौछार 17 जुलाई से 24 अगस्त तक प्रतिवर्ष चलती है। यह इस वर्ष 12 अगस्त की रात को और 13 अगस्त की सुबह को अधिक स्पष्ट दिखाई देगी। इसका सर्वश्रेष्ठ दृश्य आधी रात के बाद एक अंधेरे स्थान से अधिक स्पष्ट रहेगा। ये उल्काएं पिंडस (Constellation Perseus) नक्षत्र से विकिरित होती दिखाई देंगी, लेकिन ये आकाश में कहीं भी दिखाई दे सकती हैं।

किण्वन से मद्य तक

प्राचीन काल में मनुष्य ने जब पहली बार किसी फल या अनाज का किण्वन (Fermentation) किया होगा, तो उसे पता नहीं होगा कि उसे इससे बदमस्त कर देने वाला पेय पदार्थ प्राप्त होगा! बात करते हैं बियर की, जो संसार का सबसे पुराना और सर्वाधिक व्यापक रूप से खुलकर सेवन किया जाने वाला मादक पेय है। सभी पेयों में यह चाय के बाद सर्वाधिक लोकप्रिय पेय है, क्योंकि बियर अधिकतर जौ के किण्वन से बनती है, इसलिए इसे भारतीय उपमहाद्वीप में जौ की शराब या आब-जौ के नाम से पुकारा जाता है। अगस्त के पहले शुक्रवार को अन्तर्राष्ट्रीय बियर दिवस (International beer day) मनाया जाता है। इस दिवस को मनाने की शुरूआत जेस अवशालोमोव (Jesse Avshalomov) द्वारा सांताक्रूज, कैलिफोर्निया में 2007 में की गई थी। इसके बाद अंतर्राष्ट्रीय बियर दिवस पश्चिमी संयुक्त राज्य अमेरिका में एक छोटे से स्थानीय आयोजन से 207 शहरों, 80 देशों और 6 महाद्वीपों में फैले विश्वव्यापी उत्सव में मनाया जाता है। अंतर्राष्ट्रीय बियर दिवस के तीन घोषित उद्देश्य हैं-पहला, दोस्तों को एक साथ इकट्ठा करने और बियर के स्वाद का आनंद लेने के लिए। दूसरा, बियर बनाने व सेवा करने के लिए ज़िम्मेदार लोगों का जश्न मनाने के लिए और तीसरा बीयर के बैनर के तहत दुनिया को एकजुट करने के लिए।

ज्ञात रहे जौ के अतिरिक्त बियर बनाने के लिए गेहूं, मक्का और चावल का भी व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। अधिकतर बियर को राजक से सुवासित एवं स्वादिष्ट (Flavored and tasty) कर दिया जाता है, जिसमें कड़वाहट बढ़ जाती है और जो प्राकृतिक संरक्षक के रूप में भी कार्य करता है। हॉप बेल के फूल का इस्तेमाल आजकल लगभग सभी बियर को सुस्वाद बनाने तथा उसके संरक्षक एजेंट के रूप में किया जाता है। बियर का स्वाद बढ़ाने के लिए दूसरी सुवासित जड़ी बूटियां अथवा फल भी यदाकदा मिला दिए जाते हैं। बियर बनाने के लिए उपयुक्त ख़मीर वास्तव में एक सूक्ष्मजीव है जो बियर में किण्वन के लिए अतिआवश्यक है। ख़मीर अनाज के दानों से निकली शर्करा का चयापचय (Metabolism) करता है, जिससे अल्कोहल और कार्बन डाइऑक्साइड पैदा होती हैं और इस तरह बियर में रूपांतरित कर देते हैं। बियर के किण्वन के

अतिरिक्त, ख़मीर बियर की विशेषताओं और स्वाद-गंध को भी प्रभावित करता है। यदि इतिहास पर नज़र डालें तो पाएंगे कि संभवतः आरंभिक पाषण युग अथवा 9000 वर्ष ईसापूर्व तक बियर का उल्लेख मिलता है, प्राचीन यूनान और मेसोपोटामिया के लिखित इतिहास में भी बियर का उल्लेख मिलता है। सुमेरियन सभ्यता के साहित्य में एक विशेष प्रकार के बियर का उल्लेख है। चावल से बना बियर की ख़मीर बनाने की प्रक्रिया का प्रयोग चीन में 7000 वर्ष ईसा पूर्व के आसपास किया जाता था। बियर के बारे में विदित प्राचीनतम रासायनिक प्रमाण लगभग 3500-3100 ईसापूर्व पश्चिमी ईरान से भी मिलते हैं।

जैव ईंधन के फायदे

फसलों, पेड़ों, पौधों, गोबर, मानव-मल आदि जैविक वस्तुओं (बायोमास) में निहित जैव ऊर्जा हमें इनके जैव ईंधन से मिलती है। इस ऊर्जा का प्रयोग करके उष्मा, विद्युत या गतिज ऊर्जा उत्पन्न की जा सकती है। जैव ईंधन ऊर्जा का एक महत्वपूर्ण स्रोत है जिसका देश के कुल ईंधन उपयोग में एक-तिहाई का योगदान है और ग्रामीण परिवारों में इसकी खपत लगभग नब्बे प्रतिशत है। जैव ईंधन का व्यापक उपयोग खाना बनाने और उष्णता प्राप्त करने में किया जाता है। 10 अगस्त को विश्व बायोफ्यूल दिवस (World bio-fuel day) मनाया जाता है।

जैव ईंधन को लेकर हमारे देश के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी का मानना है कि जैव ईंधन से 21 वीं सदी में भारत को एक नयी गति मिल सकती है। फसलों से बनाया जाने वाला जैव ईंधन गांवों और शहरों दोनों स्थानों में रहने वाले लोगों के जीवन में बड़ा बदलाव ला सकता है। जैव ईंधन से एथनॉल बनाने की पहल स्व. अटल बिहार वाजपेयी के प्रधानमंत्री रहने के दौरान हुयी थी। एथनॉल ब्लेंडिंग कार्यक्रम की रूप रेखा वर्ष 2014 के बाद तैयार की गयी। इस पहल से न केवल किसानों को फायदा हुआ बल्कि इससे बीते साल 4 हजार करोड़ रूपए की विदेशी मुद्रा की भी बचत हुयी। अगले चार वर्षों में इसे 12 हजार करोड़ रूपए तक पहुंचाने का लक्ष्य रखा गया है।

बायोमास को जैव ईंधन में बदलने के लिए केन्द्र सरकार बड़े स्तर पर निवेश कर रही है। देशभर में बारह आधुनिक रिफाइनरी बनाने की योजना है। इससे बड़ी संख्या में रोजगार के अवसर उपलब्ध होंगे। आज जनधन, वनधन और गोबरधन जैसी योजनायों से गरीबों, किसानों, आदिवासियों के जीवन में व्यापक बदलाव के लाने में मदद मिल रही है। जैव ईंधन की बड़े बदलाव लाने की क्षमता का सदुपयोग इसमें छात्रों, शिक्षकों, वैज्ञानिकों, उद्यमियों और आम जन की भागीदारी से ही संभव है। प्रधानमंत्री ने इस अवसर पर ''राष्ट्रीय जैव ईंधन नीति 2018'' की पुस्तिका का विमोचन किया। साथ ही उन्होंने पर्यावरण मंत्रालय के डिजिटल प्लेटफार्म ''परिवेश'' का भी शुभारंभ किया है। जैव ईंधन यानी बायोफ्यूल सिर्फ विज्ञान नहीं है बल्कि वो मंत्र है जो 21वीं सदी के भारत को नई ऊर्जा देने वाला है। बायोफ्यूल यानि फसलों से निकला ईंधन, कूड़े-कचरे से निकला ईंधन। ये गांव से लेकर शहर तक के जीवन को बदलने वाला है। आम के आम, गुठली के दाम की जो पुरानी कहावत है, उसका ये आधुनिक रूप है। प्रधानमंत्री ने उपस्थित लोगों से जैव ईंधन के फायदे ग्रामीण क्षेत्रों तक पहुंचाने में मदद करने की अपील की।
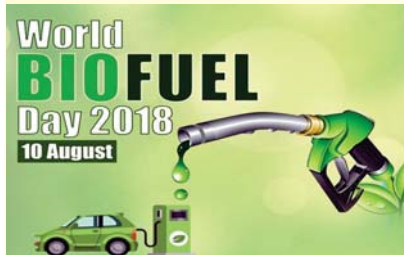
अंगदान महादान

एक दिन हम सभी को इस दुनिया को अलविदा कह कर चले जाना है, लेकिन जाते-जाते अगर हम किसी दूसरे को जिंदगी दे जाएं तो इससे बड़ा पुण्य का काम कोई हो नहीं सकता। जी हां, किसी दूसरे को ज़िन्दगी देने से तात्पर्य है अंगदान का। 13 अगस्त को विश्वभर में अंगदान दिवस (Organ donation day) मनाया जा रहा है। अंगदान का मतलब है किसी शख़्स से स्वस्थ अंगो और ऊतक को लेकर इन्हें किसी दूसरे जरूरतमंद व्यक्ति में प्रत्यारोपित कर दिया जाना। अंगदान मृत्यु के बाद और कभी-कभी जीवित भी होता है। अंगदान, दूसरों की जिंदगी के लिए कितना महत्वपूर्ण हो सकता है इसका अंदाज़ा हम इन आकड़ों से लगा सकते हैं कि देश में हर साल लगभग 1.5 लाख गुर्दों (kidney) की ज़रूरत पड़ती है, जबकि इसमें तीन हज़ार ही मुहैया हो पाती हैं। यकृत (Liver) को 25 हजार नए लीवर की आवश्यकता होती है, जिसमें सिर्फ 800 ही हासिल हो पाते है। 3.60 लाख नेत्रहीनों लोगों को आंखों की जरूरत होती है, लेकिन 22,384 लोगों को ही आंखें उलब्ध हो पाती हैं। यदि देखा जाए तो अंगदान के मामले हमारे देश में आज भी जागरूकता की कमी है।

कोयंबतूर में एक मिसाल बने ब्रेन डेड घोषित 36 वर्षीय इरोड जिले के कुमालनकुट्टई गांव के रहने वाले बस ड्राइवर नटराजन, जिनकी वजह से सात लोगों को नई जिंदगी मिली। कोयंबतूर मेडिकल कॉलेज हॉस्पिटल और केएमसीएच ने नटराजन के हृदय, यकृत, गुर्दे, आंखें और स्किन को सुरक्षित निकाला। लीवर और किडनी को केएमसीएच में मरीजों को प्रतिरोपित किया गया, जबकि हृदय को चेन्नई के एक निजी अस्पताल को भेज दिया गया। स्किन और आंखों को भी निजी अस्पताल भेज दिया गया। हमें भी आगे आकर अंगदान जैसे पुनीत कार्य का हिस्सा और मिसाल बनना चाहिए।

फोटोग्राफी का महत्व

स्मृतियों और खूबसूरत पलों को संजोने का दूसरा नाम है फोटोग्राफी। इंसान ने चित्र बनाना हजारों साल पहले शुरू कर दिया था। प्राचीन काल की गुफाओं में मानव द्वारा बनाए गए भित्ति चित्र इस बात के गवाह हैं। दरअसल चित्र बनाना इन्सान के लिए अपनी रचनात्मकता की

अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम रहा है। बाद में जब कैमरे का आविष्कार हुआ, तो फोटोग्राफी भी इंसान के लिए अपनी क्रिएटिविटी का प्रदर्शन करने का एक जरिया बन गया। कैमरे के कृत्रिम लैंस से चित्र बनाने में मनुष्य को मिली सफलता का जश्न अब सारी दुनिया में विश्व फोटोग्राफी दिवस के रूप में मनाया जाता है। दुनिया के तमाम फोटोग्राफरों ने फोटोग्राफी की दुनिया में अपना एक अलग मुक़ाम बनाया है और उन्हें इसके लिए धन और शोहरत दोनों खूब मिले।

वर्ष 1839 में सर्वप्रथम फ्रांसीसी वैज्ञानिक लुईस जेकस तथा मेंडे डाग्युरे ने फोटो तत्व को खोजने का दावा किया था। ब्रिटिश वैज्ञानिक विलियम हेनरी फॉक्सटेल बोट ने नेगेटिव-पॉजीटिव प्रोसेस ढूंढ लिया था। इसके बाद वर्ष 1834 में टेल बॉट ने लाइट सेंसेटिव पेपर का आविष्कार किया जिससे खींचे चित्र को स्थायी रूप में रखने की सुविधा प्राप्त हुई। फ्रांसीसी वैज्ञानिक आर्गो ने 7 जनवरी, 1839 को फ्रेंच अकादमी ऑफ साइंस के लिए एक रिपोर्ट तैयार की। फ्रांस सरकार ने यह प्रोसेस रिपोर्ट ख़रीदकर उसे आम लोगों के लिए 19 अगस्त, 1939 को फ्री घोषित किया। यही कारण है कि 19 अगस्त को विश्व फोटोग्राफी दिवस (World photography day) मनाया जाता है।

अक्षय ऊर्जा की ओर

जीवाश्म ऊर्जा संकट के दौर में यदि आज देखा जाए तो अक्षय ऊर्जा या नवीकरणीय ऊर्जा हमारे लिए भावी विकल्प नज़र आता है, जिसके विकास के लिए असीम सम्भावनाएं भी हैं। परंपरागत ऊर्जा के साधन जैसे कोयला, गैस, पेट्रोलियम सीमित हैं, ऐसे में हमें सौर, पवन, जल-विद्युत, बायोमास, जैव ईंधन जैसे अक्षय ऊर्जा के स्त्रोतों का उपयोग करना चाहिए और याद रखना चाहिए कि अक्षय ऊर्जा भविष्य की ज़रूरत है, इससे सतत् विकास को गति मिलेगी। देश की राज्य सरकारें इस क्षेत्र में निवेश को लेकर प्रोत्साहन दे रही हैं, इसी का परिणाम है कि आज कई प्रदेश सौर ऊर्जा के क्षेत्र में कीर्तिमान बना रहे हैं। अक्षय उर्जा में वे सारी उर्जा शामिल हैं जो प्रदूषणकारक नहीं हैं तथा जिनके स्रोत का क्षय नहीं होता, या जिनके स्रोत का पुनः-भरण होता रहता है। सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, जलविद्युत उर्जा, ज्वार-भाटा से प्राप्त उर्जा, बायोमास, जैव इंधन आदि नवीनीकरणीय उर्जा इसके कुछ उदाहरण हैं। 20 अगस्त को भारत में अक्षय ऊर्जा दिवस (Renewable energy day) मनाया जाता है।

आज भारत उन गिने-चुने देशों में शामिल हो गया है, जिन्होंने वर्ष 1973 से ही नए तथा पुर्नोपयोगी ऊर्जा स्रोतों का उपयोग करने के लिए अनुसंधान और विकास कार्य आरंभ कर दिए थे। परन्तु, एक स्थायी ऊर्जा आधार के निर्माण में पुर्नोपयोगी ऊर्जा या गैर-परंपरागत ऊर्जा स्रोतों के उपयोग के उत्तरोत्तर बढ़ते महत्व को तेल संकट के तत्काल बाद 1970 के दशक के आरंभ में पहचाना जा सका। देश का अपारम्परिक ऊर्जा कार्यक्रम विश्व के इस प्रकार के विशालतम कार्यक्रमों में से एक है। इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रौद्योगिकी, बायोगैस, समुन्नत चूल्हे, बायोमास बमचपा गैसीफायर, शीघ्र बढ़ने वाली वृक्ष-प्रजातियां, जैवीय पदार्थ का दहन, पवन-चक्कियों द्वारा जल निकासी, वायु टर्बाइनों द्वारा शक्ति का उत्पादन, सौर तापीय व फोटो वोल्टायिक प्रणालियाँ, नागरीय घरेलू तथा औद्योगिक अवजल व कचरे से ऊर्जा उत्पादन, हाइड्रोजन ऊर्जा, समुद्री ऊर्जा, विद्युत चालित वाहन व परिवहन के लिए वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों पर कार्य हो रहा है।

जहां अक्षय ऊर्जा की बात होती है वहां सबसे पहले नज़र जाती है सौर ऊर्जा की ओर। सूर्य ऊर्जा का सर्वाधिक व्यापक एवं अपरिमित स्रोत है, जो वातावरण में फोटॉन के रूप में विकिरण से ऊर्जा का संचार करता है और सूर्य से फ़िलहाल हमें हमेशा ऊर्जा मिलती रहेगी। भारत को प्रतिवर्ष पांच हजार ट्रिलियन किलोवाट/घंटा के बराबर ऊर्जा मिलती है। प्रतिदिन का औसत भौगोलिक स्थिति के अनुसार 4-7 किलोवाट घंटा प्रति वर्ग मीटर है। वैश्विक सौर रेडिएशन का वार्षिक प्रतिशत भारत में प्रतिदिन 5.5 किलोवाट घंटा प्रति वर्ग मीटर है। गौरतलब है कि उच्चतम वार्षिक रेडिएशन लद्दाख, पश्चिमी राजस्थान एवं गुजरात में और निम्नतम रेडिएशन पूर्वोत्तर क्षेत्रों में प्राप्त होता है। चूंकि मानव सौर ऊर्जा का उपयोग अनेक कार्यों में करता है इसलिए इसका व्यावहारिक उपयोग करने के लिए सौर ऊर्जा को अधिकाधिक क्षेत्र से एकत्र करने या दोनों की प्राप्ति हेतु उचित साधन आवश्यक होते हैं। इसलिए इसके दोहन हेतु कुछ युक्तियां उपयोग में लाई जाती प्रकाश-वोल्टीय सेल या सौर सेल।

भारत सरकार के ऊर्जा मंत्रालय ने छोटे स्थल पर उपयोग के लिए 25 एवं 100 किलोवाट की दो सौर फोटोवोल्टाइक ऊर्जा परियोजनाओं की स्थापना की है। जो बड़े शहरी केन्द्रों में व्यस्त समय में भार की बचत करने के प्रदर्शन के लिए सार्वजनिक भवनों की छतों पर लगायी जाने वाली और दूरस्थ ग्रामीण क्षेत्रों में ग्रिड के अन्तिम सिरों वाले हिस्सों में वितरित ग्रिड टी एवं डी प्रणालियां थीं। इसके अतिरिक्त, 25 किलोवाट की दो अन्य परियोजनाएं कोयम्बटूर के-एस.एन. पलायम और एस.जी. पलायम गांवों में शुरू की गई हैं। पश्चिम बंगाल के सागर द्वीप में सौर फोटोवोल्टाइक ऊर्जा प्रणालियों के उपयोग से सौर ऊर्जा उपयोग में लायी जा रही है। सौर फोटोवोल्टाइक ऊर्जा संयंत्र की 26 किलोवाट की क्षमता का एक संयंत्र लक्षद्वीप में लगाया गया है। इसी तारतम्य में भाप पैदा करने के लिए सौर ऊर्जा संकेद्रण संग्राहक लगाए गए हैं।

उल्लेखनीय है कि खाना बनाने के लिए विश्व की सबसे बड़ी सौर वाष्प प्रणाली आंध्र प्रदेश में तिरूमला में स्थापित की गई। गांवों में डिश और कूकर को भी बढ़ावा दिया जा रहा है। सौर ऊर्जा से हवा को गर्म कर उससे कृषि एवं औद्योगिक उत्पादों को सुखाने की प्रणाली भी इस्तेमाल की जा रही है। इससे पारम्परिक ईंधन की काफ़ी बचत हुई है। फोटोवोल्टाइक प्रदर्शन और उपयोग कार्यक्रम के अंतर्गत देशभर में दुर्गम स्थानों में स्थित गांवों और बस्तियों में भी बिजली उपलब्ध कराई गई है। खाना पकाने, सुखाने और ऊर्जा को परिष्कृत करने के लिए उद्योगों और संस्थानों में सौर एयर हीटिंगस्टीम

जनरेटिंग प्रणाली को बढ़ावा दिया जा रहा है। सौर ऊर्जा प्रणाली को अनिवार्य बनाने के लिए इमारत उपनियमों में संशोधन किया गया है एवं प्रावधान किया गया है कि ऐसी इमारतें और हाउसिंग परिसर बनाए जाएं जहां पानी गर्म करने के लिए सौर ऊर्जा का इस्तेमाल हो। परंपरागत बिजली संरक्षण के साथ सर्दियों और गर्मियों में आरामदायक और बेहतर जीवन-स्तर के लिए ऐसी इमारतों के निर्माण को बढ़ावा दिया जा रहा है जिनमें सौर ऊर्जा से जुड़ी प्रणालियों को लगाया जा सके। आने वाले कुछ हज़ार वर्षों में ही हमारे परम्परागत ऊर्जा स्रोत समाप्त हो जायेंगे। हमें इन ऊर्जा स्रोतों की बचत करना चाहिए और सोचना चाहिए कि जिसे बनाने में प्रकृति ने लाखों वर्ष लगाएं है उसे हम कुछ ही मिनटों में समाप्त कर देते हैं। यह तभी सम्भव है जब हम बख़ूबी अक्षय ऊर्जा के उपयोग करना सीख लें।

विश्व मच्छर दिवस

मच्छर एक हानिकारक कीट है, जो संसार के प्राय सभी भागों में पाया जाता है। मच्छर एकलिंगी जन्तु हैं यानी नर और मादा मच्छर अलग-अलग होते हैं। सिर्फ मादा मच्छर ही मनुष्य या अन्य जन्तुओं के रक्त चूसती है, जबकि नर मच्छर पेड़-पौधों का रस चूसते हैं। मच्छर गड्ढ़े, तालाबों, नहरों तथा स्थिर जल के जलाशयों के निकट अंधेरी और नम जगहों पर रहते हैं। सम्पूर्ण विश्व में 20 अगस्त को विश्व मच्छर दिवस (World Mosquito Day) मनाया जाता है। यह दिवस सर रोनाल्ड रोस के मलेरिया रोग के कारक को खोजने पर मनाया जाता है। रोनाल्ड रोस ने ही सबसे पहले बताया था कि मादा मच्छर के कारण मलेरिया रोग होता है। रोनाल्ड रोस की यह खोज मानव समाज के लिए बहुत ही बड़ी खोज साबित हुई और इस खोज की घोषणा के दिन को विश्व मच्छर दिवस के रूप में मनाया जाने लगा।

विश्व मच्छर दिवस सुनने में बड़ा अजीब लगता है कि भला इस दिवस को मनाने की क्या आवश्यकता है, लेकिन कई ख़तरनाक रोगों के वाहक मच्छर चिंता का विशय हैं और इनके प्रति जागरूकता की ज़रूरत है। मच्छर के कारण सिर्फ मलेरिया ही नहीं बल्कि और भी कई जानलेवा रोग फैलते है, जिनकी जानकारी होना और जिनसे बचना बहुत आवश्यक है। भारत में मलेरिया के अतिरिक्त डेंगू, जापानी इंसेफ़िलाइटिस और चिकगुनिया जैसे कई रोग है जिनके वाहक मच्छर हैं। यदि देखा जाए तो मलेरिया सबसे प्रचलित संक्रामक रोगों में से एक है तथा भंयकर जन स्वास्थ्य समस्या है, जो प्रत्येक वर्ष यह 51.5 करोड़ लोगों को प्रभावित करता है। यह रोग लगभग तीस लाख लोगों की मृत्यु का कारण बनता है। यह मुख्य रूप से अमेरिका, एशिया और अफ्रीका महाद्वीपों के उष्ण तथा उपोष्ण कटिबंधी क्षेत्रों के लोगों को अपना शिकार बनाता है। यह रोग प्लास्मोडियम (Plasmodium) गण के प्रोटोज़ोआ परजीवी के माध्यम से फैलता है।

केवल चार प्रकार के प्लास्मोडियम परजीवी मनुष्य को प्रभावित करते है जिनमें से सर्वाधिक ख़तरनाक प्लास्मोडियम फैल्सीपैरम (Plasmodium falciparum) तथा प्लास्मोडियम विवैक्स (Plasmodium vivax) माने जाते हैं, साथ ही प्लास्मोडियम ओवेल (Plasmodium ovale) तथा प्लास्मोडियम मलेरिये (Plasmodium malariae) भी मानव को प्रभावित करते हैं। मलेरिया के परजीवी का वाहक मादा एनोफ़िलेज़ (Anopheles) मच्छर है। इसके काटने पर मलेरिया के परजीवी लाल रक्त कोशिकाओं में प्रवेश कर के बहुगुणित होते हैं जिससे रक्तहीनता (एनीमिया) के लक्षण उभरते हैं। इसके अलावा अविशिष्ट लक्षण जैसे कि बुखार, सर्दी, उबकाई और जुखाम जैसे लक्षण भी देखे जाते हैं। गंभीर मामलों में मरीज बेहोशी में जा सकता है और इलाज न होने पर मृत्यु भी हो सकती है।

मच्छर से फैलने वाला दूसरा रोग है डेंगू, जिससे ख़तरनाक रूप से निम्न रक्तचाप होता है। डेंगू रक्तस्रावी बुख़ार है, जिसके कारण रक्त वाहिकाओं में रक्तस्राव या रिसाव होता है तथा रक्त प्लेटलेट्स, जिनके कारण रक्त जमता है, का स्तर कम होता है। पिछले कुछ वर्षों से डेंगू के संक्रमण उग्र होते जा रहे हैं। डेंगू का इलाज समय पर करना बहुत ज़रुरी होता हैं, मच्छर डेंगू विषाणु को संचरित करते हैं। डेंगू बुख़ार को हड्डीतोड़ बुख़ार के नाम से भी जाना जाता है, क्योंकि इससे पीड़ित लोगों को इतना अधिक दर्द हो सकता है कि जैसे उनकी हड्डियां टूट रही हों। डेंगू बुख़ार के कुछ लक्षणों में बुख़ार सिरदर्द, त्वचा पर चेचक जैसे लाल चकत्ते तथा मांसपेशियों और जोड़ों में दर्द शामिल हैं। कुछ लोगों में, डेंगू बुख़ार एक या दो ऐसे रूपों में हो सकता है जो जीवन के लिये ख़तरा हो सकते हैं।

चिकनगुनिया तीसरा ख़तरनाक रोग है, जो लम्बें समय तक चलने वाला जोड़ों का रोग है जिसमें जोड़ों में भारी दर्द होता है। इस रोग का उग्र चरण तो मात्र दो से पांच दिन के लिये चलता है किंतु जोडों का दर्द महीनों तक बना रह सकता है, जो कि व्यक्ति की उम्र पर निर्भर करता है। चिकनगुनिया विषाणु एक अर्बोविषाणु है जिसे अल्फाविषाणु परिवार का माना जाता है। यह मानव में एडीज़ मच्छर के काटने से प्रवेश करता है। यह विषाणु ठीक उसी लक्षण वाली बीमारी पैदा करता है जिस प्रकार की स्थिति डेंगू रोग मे होती है। रोग के लक्षणों में 39 डिग्री तक का बुख़ार, धड़ और फिर हाथों एवं पैरों पे चकते दिखाई देना, शरीर के विभिन्न जोडों मे पीड़ा होना शामिल हैं। इसके अतिरिक्त सिरदर्द, प्रकाश से भय लगने के साथ आँखों मे पीड़ा भी होती है। संक्रमण के दौरान अनिद्रा तथा निर्बलता भी शामिल रहती है। इस रोग से नेत्र संक्रमण भी हो सकता है। पैरों की सूजन भी देखी जाती है जिसका कारण दिल, गुर्दे तथा यकृत रोग से नहीं होता है। विषाणु अल्फाविषाणु ओन्योगोंग विषाणु से निकटवर्ती रूप से संबंध रखता है, जो रिवर बुखार तथा इनसेप्टाइलिस फैलाता है। यह रोग सामान्य रूप से एडीज़ एजेपटी नामक मच्छर से फैलता है किंतु पास्चर संस्थान ने अध्ययन से बताया है कि 2005-06 मे इसने उत्परिवर्तन (Mutation) करके एडीज़ एल्फोपिक्टस जिसे टाइगर मच्छर भी कहते हैं, के माध्यम से फैलने की क्षमता प्राप्त कर ली है। इस उत्परिवर्तन से रोग के प्रसार का ख़तरा और भी बढ़ गया है।

research.org@rediffmail.com

❑❑❑